राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक–पद्मश्री जिनविजय मुनि, पुरातत्त्वाचार्य

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

ग्रन्थाङ्क ५४

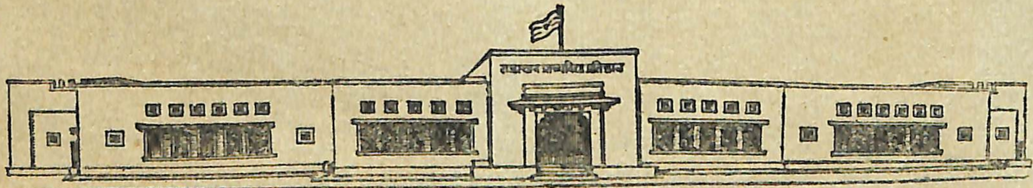
सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितबालप्रबोधिनीसद्युक्तिदीपिकावृत्तिविभूषितम्

तथा

रुद्रयामलीयभुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग-भकारादिसहस्रनाम-अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी-क्रमचन्द्रिका-पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्कलितम्



राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

जोधपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

प्रधान सम्पादक—पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर]

सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितबालप्रबोधिनीसद्युक्तिदीपिकावृतिविभूषितम्

तथा

रुद्रयामलीयभुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग-भकरादिसहस्रनाम-अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी-क्रमचन्द्रिका-पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्कलितम्

प्रकाशक

राजस्थान-राज्य-संस्थापित

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

RAJASTHAN ORIENTAL RESEARCH INSTITUTE, JODHPUR

जोधपुर (राजस्थान)

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

राजस्थान राज्य द्वारा प्रकाशित

सामान्यतः अखिल भारतीय विशेषतः राजस्थानदेशीय पुरातनकालीन
संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषानिबद्ध
विविध वाङ्मयप्रकाशिनी विशिष्ट ग्रन्थावलि

प्रधान सम्पादक

पुरातत्त्वाचार्य जिनविजय मुनि

[ऑनरेरी मेम्बर ऑफ जर्मन ओरिएन्टल सोसाइटी, जर्मनी]

सम्मान्य सदस्य

भाण्डारकर प्राच्यविद्या संशोधन मन्दिर, पूना; गुजरात साहित्य-सभा, अहमदाबाद;
विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध-संस्थान, होशियारपुर; निवृत्त सम्मान्य नियामक-
(आनरेरी डायरेक्टर) भारतीय विद्याभवन, बम्बई.

ग्रन्थाङ्क ५४

सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्री पृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितबालप्रबोधिनीसद्युक्तिदीपिकावृत्तिविभूषितम्

तत्र

रुद्रयामलीयभुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग—भकारादिसहस्रनाम—अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी—
क्रमचन्द्रिका—पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्कलितम्

प्रकाशक

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

ग्रन्थाङ्क ५४

सकलागमाचार्यचक्रवर्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं

श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितबालप्रबोधिनीसद्युक्तिदीपिकावृत्तिविभूषितम्

तच्च

रुद्रयामलीयभुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग-भकारादिसहस्रनाम-अनन्तदेवकृतभुवनेश्वरी-क्रमचन्द्रिका पृथ्वीधराचार्यकृतलघुसप्तशतीस्तोत्रप्रभृतिभिरनुसङ्कलितम्

सम्पादक,

श्रीगोपालनारायण बहुरा, एम० ए०

उपसञ्चालक,

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

प्रकाशनकर्त्ता

राजस्थान राज्याज्ञानुसार

सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

जोधपुर (राजस्थान)

विक्रमाब्द २०१७
प्रथमावृत्ति १०००

भारतराष्ट्रीय शकाब्द १८८२

खिस्ताब्द १९६०
मूल्य ३.७५ न०पै०

मुद्रक—वैदिक यन्त्रालय, अजमेर (राजस्थान)

Rajasthan Puratana Granthmala

Published by the Government of Rajasthan

A series devoted to the publication of Sanskrit, Prakrit, Apabhramsa, Old Rajasthani-Gujrati and Old Hindi works pertaining to India in general and Rajasthan in particular.

General Editor

Acharya Jinavijaya Muni, Puratattvacharya

Honorary Member of the German Oriental Society (Germany); Bhandarkar Oriental Research Institute, Poona; Vishveshvarananda Vaidic Research Institute, Hoshiyarpur, (Punjab); Gujrat Sahitya Sabha, Ahmedabad, Retired Honorary Director, Bharatiya Vidya Bhavan, Bombay; General Editor, Gujrat Puratattva Mandira Granthavali, Bharatiya Vidya Series, Singhi Jain Series, etc. etc.

54.

Shri Bhuwaneshwari Mahastotram

by

PRITHVIDHARACHARYA

with

Commentary by Kavi Padmanabha

Published

Under the orders of the Government of Rajasthan

By

The Director, Rajasthan Prachya Vidya Pratisthana

(Rajasthan Oriental Research Institute)

JODHPUR (Rajasthan)

V. S. 2017] *[1960 A. D.*

All Rights Reserved

SHRI BHUWANESHWARI MAHASTOTRAM

By

Prithvidharacharya

with

Commentary by Kavi Padmanabha

Edited

With Introduction, Notes and Appendixes

by

Shri Gopal Narayan Bahura, M. A.

Dy. Director,

Rajasthan Oriental Research Institute, Jodhpur.

Published

Under the orders of the Government of Rajasthan

By

The Director, Rajasthan Oriental Research Institute,

Jodhpur (Rajasthan.)

V. S. 2017]   [*1960 A. D.*

राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला

❀ ❀
❀

प्रधान सम्पादक

पुरातत्त्वाचार्य मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित कतिपय ग्रन्थ

१–त्रिपुराभारती लघुस्तव – महाकवि लघुपण्डितकृत

२–शकुनप्रदीप – पं० लावण्यशर्मकृत

३–करुणामृतप्रपा – कवि सोमेश्वरठक्कुरकृत

४–बालशिक्षा व्याकरण – ठक्कुरसंग्रामसिंहकृत

५–पदार्थरत्नमंजूषा – पं० कृष्णमिश्रकृत

६–मुग्धावबोधादि औक्तिक संग्रह – अनेकविद्वत्कृतिरूप

७–प्राकृतानन्द – पं० रघुनाथकृत

८–ठक्कुरफेरुरचित ग्रन्थावली (प्राकृत)

९–उक्तिरत्नाकर – पं० साधुसुन्दरगणिकृत

१०–राठोड़ांरी वंशावली – राजस्थानी भाषा ऐतिहासिक रचना

११–राजस्थानी सुभाषित-संग्रह

१२–हमीर महाकाव्य – नयचन्द्रसूरिकृत

१३–मणिरत्नादि परीक्षा ग्रन्थ संग्रह

सञ्चालकीय वक्तव्य

प्रस्तुत श्रीभुवनेश्वरी महास्तोत्र सकलागमाचार्यचक्रवर्ती श्रीपृथ्वीधराचार्य-कृत मन्त्रगर्भित स्तोत्र है और ओजःपूर्ण पदावली एवं स्वयं स्तोत्रकर्ता द्वारा व्याहृत फलश्रुति से इसके महत्त्वशील होने का पर्याप्त परिचय मिलता है। इस स्तोत्र का साङ्गोपाङ्ग प्रकाशन अद्यावधि कहीं नहीं हुआ था इसीलिए जब इस विभाग के उप-सञ्चालक श्रीबहुराजी ने प्रस्तुत ग्रन्थ के प्रकाशन-सम्पादन के लिए अपना मनोरथ प्रकट किया तो मैंने उत्साह के साथ इसकी स्वीकृति दे कार्य आरम्भ करने की प्रेरणा की।

श्रीबहुराजी ने इस ग्रन्थ का सम्पादन अत्यन्त लगन और परिश्रम के साथ किया है। विषय से सम्बद्ध अध्ययनात्मक विस्तृत भूमिका से पुस्तक और भी उपयोगी बन गई है। आरम्भ में मुझे पुस्तक के इतने बड़े कलेवर की आशा नहीं थी परन्तु जैसे जैसे सम्बद्ध उपादेय सामग्री मिलती गई इसका आकार प्रकार बढ़ता गया और यह उचित ही हुआ कि भगवती भुवनेश्वरीविषयक इस प्रकार की विपुल सामग्री का एकत्र सङ्कलन कर दिया गया। जैसा कि सम्पादकीय से व्यक्त है इसके पूर्व इस स्तोत्र का सभाष्य अथवा इतना प्रौढ़ संस्करण कहीं नहीं निकला है। इस प्रकार के अप्रकाशित और महत्त्व-शील प्राचीन ग्रन्थरत्नों को प्रकाश में लाना ही प्रस्तुत ग्रन्थमाला का मुख्य ध्येय है। मैं आशा करता हूं कि ग्रन्थ-माला के अनेकानेक पूर्व प्रकाशित ग्रन्थरत्नों की तरह प्रस्तुत रत्न भी विद्वानों को समादरणीय होगा।

निष्ठा एवं विद्वत्तापूर्ण सम्पादन के लिए मैं श्रीबहुराजी का अभिनन्दन करता हूं और आशा करता हूं कि इन का परिश्रम पाठकों की रुचि और एतद्विषयक उत्साह को बढ़ाएगा।

१४ दिसम्बर, १९६०
जोधपुर।

मुनि जिनविजय

विषयानुक्रम



राजस्थान प्राच्यविद्याप्रतिष्ठान, जोधपुर के हस्तलिखितग्रन्थसंग्रहान्तर्गत चित्र की प्रतिकृति

श्रीभुवनेश्वर्यै नमः

चञ्चन्मौक्तिकहेममण्डनयुता माताऽतिरक्ताम्बरा
तन्वङ्गी नयनत्रयातिरुचिरा बालार्कवद्भासुरा ।
या दिव्याङ्कुशपाशभूषितकरा देवी सदा भीतिहा
चित्तस्था भुवनेश्वरी भवतु नः सेयं मुदे सर्वदा ॥

॥ श्रीः ॥

प्रास्ताविक परिचय

श्रीभुवनेश्वरी[1] महास्तोत्र भगवती आद्याशक्ति का स्तवन है। यह समस्त विश्वप्रपंच भुवनों[2] से व्याप्त है। भुवनों की अधिष्ठात्री आद्याशक्ति ही भुवनेश्वरी है जो अव्यय, अक्षर और क्षर के त्रिपुर की आधारशक्ति है। त्रिपुर में ब्रह्मा, विष्णु, इन्द्र, अग्नि और सोम इन पांचों की समष्टि होने के कारण इसे पञ्चपत्नी भी कहते हैं।

शब्दावच्छिन्न ज्ञान का नाम वेद है और विषयावच्छिन्न ज्ञान ब्रह्म कहलाता है। शब्द और विषय दोनों सामान्य ज्ञान करा कर लीन हो जाते हैं। यही सामान्य ज्ञान अनुभूति द्वारा विशेष भाव को प्राप्त होता है और आत्मा में खचित हो जाता है। वैज्ञानिक परिभाषा में इस ज्ञान को विद्या कहते हैं। इस अनुभवजन्य ज्ञान की सम्प्राप्ति और विकास की आधारभूत शक्ति ही भुवनेश्वरी महाविद्या है।

भुवनेश्वरी ही सरस्वती हैं। सरस्वती को वाणी और वाक् कहते हैं।[3] वाक्तत्व से प्रादुर्भूत शब्दप्रपञ्च से कोई भी स्थान खाली नहीं है। इसीलिए ये सब भुवन और त्रिलोकी वाङ्मय कहलाते हैं।[4]

वाक् का अर्थ प्रायः बोली अथवा वाणी होता है। परन्तु यह शब्द, आवाज़ अथवा ध्वनि का भी द्योतक है। अचेतन पदार्थों से उत्पन्न होने वाला शब्द भी इसी के अन्तर्गत ग्रहण किया जाता है। अर्थ विषय अथवा वस्तु को कहेंगे, समझे हुए अर्थ को प्रत्यय कहते हैं।

---

१. शिवाविनाभूतशक्तिः स्वतन्त्रा निरुपप्लवा। समस्तं व्याप्य भुवनमीष्टे तेनेश्वरी मता॥

२. भवतीति भुवनं चराचरं जगत्। अथवा, भवत्यस्मादिति भुवनम्।

३. वाग् वै सरस्वती। शतपथ ब्रा० २।५।४।६, ३।६।१।७

४. क. अथो वागेवेदं सर्वम्। ऐतरेय आरण्यक ३।१।६

ख. वाचं देवा उपजीवन्ति विश्वे
वाचं गन्धर्वाः पशवो मनुष्याः।
वाचीमा विश्वा भुवनान्यर्पिता
सा नो हवं जुषतामिन्द्रपत्नी॥ तैत्ति० ब्रा० २।८।८।४।५॥

ग. अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
आदौ वेदमयी दिव्या यतः सर्वाः प्रवृत्तयः॥ महा० भा०शा० प० ३१वाँ अध्याय।

वाक् के चार भेद हैं।[1] वैदिकों के मत से भू, भुवः, स्वः और ओंकाररूप (प्रणव) इन चारों के अन्तर्गत समस्त वाङ्मय परिमित है। वैयाकरणों का कहना है कि नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात इन चारों से समस्त शब्दजाल परिच्छिन्न है। नाम द्रव्यप्रधान है, आख्यात क्रियाप्रधान है, आख्यात पद से पूर्व प्रयुक्त होने वाला पद उपसर्गसंज्ञक है और ऊंचे नीचे अर्थों में पतनशील शब्द निपात कहलाते हैं। इस प्रकार अखण्ड (समस्त) वाक् की व्याकृति होने से उसके चार प्रकार हुए।

पहले वाक् अथवा वाणी का स्वरूप अव्याकृत था। इन्द्र ने बीच में अवक्रमण कर इसे व्याकृत किया।[2] इसीलिए इसे व्याकृतवाक् कहते हैं। ज्ञानमूर्ति प्रकाशात्मक तत्व ही इन्द्र है जिसके आलोक में शब्द के तत्तदर्थ भासित होते हैं। इसीलिए इन्द्र को वाक् भी कहते हैं।[3] वाक् का व्याकरण ही जगत् का विकास है।[4]

यह समस्त शब्दप्रपञ्च वाक्तत्वात्मक है। इन्द्र इस तत्व का संग्राहक है। आकाश अथवा शून्य में जब संचरणशील वायु का आघट्टन अथवा संघर्षण होता है तब शब्द उत्पन्न होता है। आरम्भ में इस शब्द की अव्याकृत अवस्था ही रहती है। ज्ञानमूर्ति इन्द्र के आलोक में इसका विभक्तीकरण होता है।

याज्ञिकों का मत है कि मन्त्र, कल्प, ब्राह्मण और लौकिकी नाम से वाक् के चार भेद हैं। अनुष्ठेय अर्थ का प्रकाशक वेदभाग मन्त्र कहलाता है, अर्थात् हमारे इष्ट को प्रकाश में लाने वाली वैदिक ऋचाएं मन्त्र हैं। मन्त्रविधान के प्रति-

---

१. क. चत्वारि वाक्परिमिता पदानि तानि विदुर्ब्राह्मणा ये मनीषिणः।
गुहा त्रीणि निहिता नेङ्गयन्ति तुरीयं वाचो मनुष्या वदन्ति ॥ ऋग्वेदः ॥

ख. वैखरी शब्दनिष्पत्तिर्मध्यमा श्रुतिगोचरा।
उद्यतार्था च पश्यन्ती सूक्ष्मा वागनपायिनी ॥

सैवोरः कण्ठतालुस्था शिरोघ्राणहृदि स्थिता।
जिह्वामूलोष्ठनिस्यूता सर्ववर्णपरिग्रहा ॥
शब्दप्रपञ्चजननी श्रोत्रग्राह्या तु वैखरी ॥ वाचस्पत्यम् ॥

२. क. वाग् वै पराची अव्याकृतावदत्। तामिन्द्रो मध्यतोऽवक्रम्य व्याकरोत्।
तस्मादियं व्याकृता वागुच्यते ॥

ख. अव्याकृता हि परमा प्रकृतिस्त्वमाद्या। मार्कण्डेय पु०।

३. क. इन्द्रो वागित्याहुः। शतपथ ब्रा० १।४।५।४

ख. अथ य इन्द्रस्सा वाक्। जैमिनीय उप० १।३३।२

ग. वाग् वा इन्द्रः। कौषी० उप० २।७।१३।५

४. व्याकरणं शास्त्रभेदे, नामरूपे, जगतो विकासने च। वाचस्पत्यम्, पृष्ठ ४६८६।

पादक वेदभाग को कल्प कहते हैं। मन्त्रों के तात्पर्यार्थ को प्रकाशित करने वाला वेदभाग ब्राह्मण है और व्यवहार में अथवा लोक में प्रयुक्त होने वाली वाक लौकिकी है।

इसी प्रकार ऋग्, यजुः, साम और व्यावहारिकी नाम से नैरुक्त नियमानुसार समस्त वाङ्मय नियमित है।

ऐतिहासिकों का कहना है कि सर्पों, पक्षियों, छोटे छोटे रेंगने वाले जानवरों और व्यावहारिकी वाणी के भेद से वाक् चतुर्धा विभक्त है।

आत्मवादी कहते हैं कि यह वाक् पशु, तूणव, मृग और आत्मा में निहित होने से चार प्रकार की है।

मातृकाविज्ञान के आचार्यों का मत इनसे भिन्न है। वे परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी नाम से चार प्रकार की वाक् का प्रतिपादन करते हैं।

मूलाधार से उदित होने वाली, एकमात्र प्राण और अपान के अन्तराल में रहने वाली वाक् सूक्ष्म और दुर्निरूप्य होने से परा कहलाती है। वह सामान्य जन के ज्ञान से परे है, आविर्भाव और तिरोभाव से रहित है तथा सम्यक् मनन एवं प्रयोग परि-शीलन से ही गम्य है। यह अमृतकला[1] के नाम से भी अभिहित होती है। वही वाक् जब हृदयगामिनी होती है अर्थात् नाभि-मूल से उद्गत होती है तब योगियों द्वारा द्रष्टव्य होने से पश्यन्ती कहलाती है। अथवा ब्रह्म की अनादि अविद्या से जो परिणाम उपस्थित होता है वह पश्यन्ती वाक् है। इसका कोई वर्णविभागादि क्रम नहीं है यह स्वयंप्रकाश है। यह अपने पूर्व और अपर अर्थात् परा और मध्यमा को देखती है इसलिए भी पश्यन्ती वाक् कहलाती है।

जब पश्यन्ती वाक् का बुद्धि से संयोग हो जाता है तब विवक्षा की दशा में पहुंच कर हृदय अथवा मध्य से उदित होने के कारण यह वाक् मध्यमा कहलाती है। श्रोत्रग्राह्य वर्णों की अभिव्यक्ति से रहित यह वाक् अन्तःसङ्कल्पक्रम से युक्त होती है। यह वाक् का तीसरा रूप है। इसके पश्चात् वही वाक् मुख में आकर तालु, ओष्ठ, जिह्वा, दन्त आदि के व्यापार से बाहर निकलती है, बिखर जाती है, तब वैखरी हो जाती है।[2] विशिष्ट रूप से ख अर्थात् आकाश में यह रम जाती है अथवा फैल जाती

---

१. सेयमाकीर्यमाणापि नित्यमागन्तुकैर्मलैः।
अन्त्या कला हि सोमस्य नात्यन्तमभिभूयते ॥
तस्यां विज्ञातमान्नायामधिकारो निवर्तते ॥
पुरुषे षोडशकले तामाहुरमृतां कलाम् ॥ सर० कण्ठा० रत्नेश्वरव्याख्यायाम् ॥

२. सा प्रसूते कुण्डलिनी शब्दब्रह्ममयी विभुः।
शक्तिं ततो ध्वनिस्तस्मान्नादस्तस्मान्निरोधिका ॥
ततोऽर्द्धेन्दुस्ततो बिन्दुस्तस्मादासीत् परा ततः ॥
पश्यन्ती मध्यमा वाचि वैखरी शब्दजन्मभूः। शा० तिलकम् प्र० प०

है। आकाश की शब्दगुणकसंज्ञा इसी कारण है। परा, पश्यन्ती और मध्यमा ये नित्या और अतीन्द्रिया वाक् हैं। वैखरी इन्द्रियग्राह्या और अनित्या है।[1]

परमशान्त ब्रह्म (परमात्मा अथवा परमशिव) में न शब्द है, न अर्थ है और न प्रत्यय है। अर्थात् वह अशब्द, निर्विषय और निष्प्रत्यय है, अवाङ्मनसगोचर है। उस में नाम रूप भी नहीं हैं। यह पारमार्थिकी सत्ता आत्यन्तिक साम्यस्वरूप है। उसी परमशान्त परब्रह्म में क्रमानुसार विश्वप्रादुर्भाव के लिए साम्यावस्था का भङ्ग हो कर बिन्दुरूपा घनीभूत शक्ति का उद्भव होता है और वही विभिन्न रूपों में प्रसार करती है।[2] यही शक्ति जगत् में द्वैतानुभव का कारण बनती है। शक्ति का यह विलास चिदाकाश में घटित होता है। परन्तु इससे परम शिव परमात्मा में कोई विकार उत्पन्न नहीं होता। वह साक्षी रूप में स्थित रहता है।[3] उसमें कोई परिणाम उपस्थित नहीं होता क्योंकि वह तो निरपेक्ष द्रष्टामात्र है। केन्द्रस्थ साक्षी एवं

---

१. स्थानेषु विवृते वायौ कृतवर्णपरिग्रहा।
वैखरी वाक् प्रयोक्तृणां प्राणवृत्तिनिबन्धना।
केवलं बुद्ध्युपादानक्रमरूपानुपातिनी।
प्राणवृत्तिमतिक्रम्य मध्यमा वाक् प्रवर्तते॥
अविभागात्तु पश्यन्ती सर्वतः संहृतक्रमा।
स्वरूपज्योतिरेवान्तःसूक्ष्मा सा चानपायिनी॥
सर० कण्ठा० रत्नदर्पणाख्यव्याख्यायाम्।

२. क. सच्चिदानन्दविभवात् सकलात् परमेश्वरात्।
आसीच्छक्तिस्ततो नादो नादाद् बिन्दुसमुद्भवः॥ शा० ति० १।७॥

ख. "John Woodroffe" ने अपनी 'The Garland of Letters' नामक पुस्तक के पृ० १२२ पर एक अज्ञातकर्तृक तान्त्रिक ग्रन्थ का उद्धरण दिया है। यह ग्रन्थ 'French Protestants of the Desert' ने 'Le Mystere de la croix' नाम से १८वीं शताब्दी में प्रकाशित किया गया था। इसके ६ वें पृष्ठपर लिखा है "Ante Omnia Punctum exstitit; non to atomon, aut Mathematicum sed diffusivum. Monas eart explicite; inplicite Myrias. Lux erat, erant et Tenebrae Principrium et Finis Principii. Omnia et nihil; Est et non."

"सब वस्तुओं (सृष्टि) से पूर्व एक बिन्दु (Punctum) था जो अणु अथवा Mathematical (गणितीय कल्पित) बिन्दु से भी सूक्ष्म था। विस्तार अथवा माप न होने पर भी उसकी स्थिति अवश्य थी। उस एक में अनेक (Myrias) की स्थिति थी। उसमें प्रकाश था, अन्धकार था, आदि था, अन्त था, सत् था, असत् था, सब कुछ था, कुछ नहीं था।"

३. द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वाद्वत्ति अनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति॥ मुण्डकोप० ३।१॥

मूलशक्ति एक भावापन्न होकर रहते हैं। किन्तु, परिणामस्वरूपा शक्ति भिन्न भिन्न स्तरों में प्रसृत होती है। उस का प्रसार और संकोच ही सृजन और संहार है। यह, प्रसार और संकोच इस सृष्टि का अनपायी धर्म है।

शब्दब्रह्म का उद्भव शक्तिसमन्वित शिव के उल्लासरूप में होता है और जलाशय में प्रस्तरनिक्षेप के परिणामस्वरूप उत्पन्न हुई गोलाकार लहरों के समान उसका प्रसार एवं लय होता है। इसी ब्रह्म से वाक् का प्रादुर्भाव होता है। श्रुति भगवती कहती है कि "प्रजापतिर्वै इदमासीत्" आदि में ब्रह्म ही था। "तस्य वाग् द्वितीया आसीत्" वाक् उसकी द्वितीया थी। अर्थात् वह पहले उसमें एकभावापन्न थी और फिर शक्तिरूप में उसी से प्रादुर्भूत हुई। "वाग् वै परमं ब्रह्म" वाक् ही परमब्रह्म है। इस प्रकार वाक् ब्रह्म की शक्ति है जिसका उसके साथ ऐक्यभाव है। इस शक्ति के द्वारा ही ब्रह्म जगत् का स्थूल कारण बनता है। परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि मूलशक्ति तो ब्रह्म के साथ अथवा ब्रह्म में एकभाव से विद्यमान रहती है। उसका त्रिमूर्त्ति ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र में भी पृथक् स्वरूप नहीं है। वह इस त्रिमूर्ति की जननी है।[1]

आदिपुरुष की इच्छा हुई कि मैं अकेला हूं, अनेक हो जाऊं, मैं सृजन करूं। तब उसने श्रम किया, तप किया और सर्वप्रथम उससे उसी की वाक् (यह वाणी) उत्पन्न हुई। वाक् का प्रादुर्भाव होने पर उसके साथ उस आदिपुरुष का मानस संयोग हुआ और वह उससे सगर्भा हुई। कठोपनिषत् में भी इसी प्रकरण को इसी प्रकार कहा है। ताण्ड्य-महाब्राह्मण में लिखा है कि वाक् ने प्रजापति से गर्भ धारण किया। वह उससे पृथक् हुई और उसने प्रजाओं को उत्पन्न किया। वह पुनः प्रजापति में ही प्रविष्ट हो गई।[2]

---

१. क. शब्दानां जननी त्वमत्र भुवने वाग्वादिनीत्युच्यसे
त्वत्तः केशववासवप्रभृतयोऽप्याविर्भवन्ति स्फुटम्।
लीयन्ते खलु यत्र कल्पविरतौ ब्रह्मादयस्तेऽप्यमी
सा त्वं काचिदचिन्त्यरूपमहिमा शक्तिःपरा गीयसे॥ त्रि० भा० ल० स्तवः, १५॥

ख. सगुण ब्रह्म का नाम ही काम है, जिसकी त्रिगुणात्मिका शक्ति से त्रिदेव का आविर्भाव होता है। क+अ+म=काम। क=ब्रह्मा, अ=विष्णु, म=महादेव।

ग. सृष्टिस्थित्यन्तकरिणीं ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाम्।
स संज्ञां याति भगवानेक एव जनार्दनः॥ वि० पु० १।२।६६॥

२. क. पंचविंश ब्राह्मण। २०।१४।२।

ख. सोऽश्राम्यत। सोऽतप्यत। वागेवास्य सासृज्यत। सा गर्भी अभवत्। प्रजापतिर्वै इदमासीत्। तस्य वाक् द्वितीयासीत्। तया स मिथुनमभवत्। सा गर्भमधत्त। सा अस्मादपाक्रामत्। सा इमाः प्रजा असृजत। सा प्रजापतिमेव पुनः प्राविशत्। ताण्ड्य ब्रा० २०।१४।२।

पहले यह विश्व प्रजापति ही था । उसकी वाक् ही उसकी द्वितीया थी। प्रजापति ने सोचा मैं इस वाक् का प्रसार करूं । अर्थात् ब्रह्म अथवा शिव ने एक से अनेक होने की इच्छा की और उसकी शक्ति जो उसी में विद्यमान थी, वाक् रूप में आविर्भूत हुई । यह इच्छा और शब्दब्रह्म का संयोग ही जगत् की जननी शक्तिरूपा अम्बिका की महायोनि में अपृथक् रूप में पुंजीभूत दृश्यजगत् की सृष्टि का सबल कारण है । यही महाशक्ति पुनः उस चिद्ब्रह्म में प्रविष्ट हो जाती है, लीन हो जाती है । यही विश्व का संहार है, प्रलय है । सृष्टि और संहार के मध्यवर्ती काल में शक्ति का विश्वात्मक रूप प्रस्तुत होता है । जड़ और चेतन उसके ऐहिक रूप हैं। वैदिक परिभाषा में इन्हें रयि और प्राण कहते हैं । उसी वाक् और आत्मा के संयोग से वह सभी वस्तुओं, वेदों, यज्ञों, छन्दों, प्रजाओं और पशुओं का सृजन करता है ।[1]

वाक् का प्रादुर्भाव जीवरूप से किसी एक ही महापुरुष में नहीं हुआ अपितु वह तो सभी मनुष्यों, प्राणियों और स्थूल वस्तुओं में आविर्भूत हुई और होती रहती है । सभी प्राणी इस वाक् से ब्रह्मसायुज्य प्राप्त कर सकते हैं । वाक् का प्रादुर्भाव प्रत्येक मनुष्य में होता है अत एव वह उसके स्वरूप को जान सकता है, उसका अनुभव कर सकता है । वाक् का ब्रह्म के साथ ऐक्यभाव है, अतः वागनुभूति द्वारा ही ब्रह्मानुभूति भी सुलभ है ।

यह विश्व विश्वम्भर की इच्छा अथवा काम का परिणाम है । भौतिक स्तर पर काम का अन्य अर्थों के साथ साथ यौनसंसर्गेच्छा अर्थ भी है । मूलरूप में यह परमपुरुष की आदिम सिसृक्षा (सृजनेच्छा) है । प्राणिमात्र में व्याप्त यह भौतिक सिसृक्षा उसी आदिम इच्छा का परिणाम है । और यह ईश्वरीय काम ही जगत् का मूल कारण है । वाक् काम की पुत्री है । काम ही सब देवताओं में प्रमुख है, शक्तिशाली है । काम की पुत्री का नाम गौ है ।[2] जिसको ऋषियों ने वाग्विराट् कहा है ।[3]

---

१. स तया वाचा तेन आत्मना इदं सर्वमसृजत ।
यत् इदं किञ्च ऋचो यजूंषि सामानि छन्दांसि यज्ञं प्रजाः पशुम् । बृहदारण्यकोपनिषत् ।

२. क. अथर्ववेद ६।१ ।

ख. शतपथ ब्राह्मण ६।१।१।८, ६।१।२

ग. कठोपनिषद् १।२।१, २७।१

घ. चतुर्मुखी जगद्योनिः प्रकृतिर्गौः प्रकीर्तिता । वायु० पु० २३।५५

३. वाग् वै विराट् । शतपथ ब्रा० ३।२।१।३४ ।

शब्दब्रह्म से सर्वप्रथम वैदिकविज्ञान की सृष्टि हुई।[1] सरस्वती ही वेदों की जननी है।[2] उसी में सब भुवन निवास करते हैं। अच्युत ने सरस्वती और वेदों को अपने मन से उत्पन्न किया। गायत्री[3] ही वेदमाता कही जाती है। वाक् वेदों और समस्त शब्दजाल की जननी है इसीलिए वह वेदात्मिका कहलाती है। शब्दप्रभव (शब्दब्रह्म से प्रादुर्भूत) होने के कारण यह विश्व भी वाङ्मय है।

वाक् जिस पर प्रसन्न होती है वह महान् हो जाता है, ब्राह्मण हो जाता है, ऋषि बन जाता है।[4]

वाक् ऋषियों में प्रविष्ट हो कर मनुष्यों में प्रकट हुई। यज्ञ के द्वारा मनुष्यों ने ऋषियों[5] में प्रविष्ट वाक् के दर्शन किये। ऋषियों ने अपनी ऋचाओं को वाक् भी कहा है क्योंकि वे वाक् से प्रकट हुई हैं। वाक् से ब्रह्म का ज्ञान होता है, वाक् ही परब्रह्म है।[6] वेदों की माता सरस्वती परब्रह्म में निवास करती हैं।[7] इस प्रकार यह महाशक्ति और महेश्वर एक ही हैं। वेद महेश्वर के निःश्वसित हैं। वेदों से ही उसने अखिल जगत् का निर्माण किया है। वाक् अक्षर (नष्ट न होने वाली) है। ऋत से सर्वप्रथम उसकी उत्पत्ति हुई है और वह अमृत का केन्द्रबिन्दु है।[8] वाक् से प्रजापति ने समस्त प्रजाओं को उत्पन्न किया है।[9]

वाक् समुद्र है, मोद की जननी है, क्षयरहित है। लौकिक अर्थ में न वाक् का क्षय होता है न समुद्र का।[10]

---

१ शतपथ ब्रा० ६०।१।१।८

२. महाभारत शान्तिपर्व ५।१२।१२०
तैत्तिरीय ब्राह्मण २०८।८।५

३. भीष्म पर्व ३०।१६ वां पद्य।

४. ऋग्वेद १०।१२५।५, १०७१।८
ऋषि शब्द का अर्थ प्राण भी है। प्राणा वा ऋषयः।
ते यत् पुरा अस्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तःश्रमेण तपसारिषंस्तस्माद् ऋषयः। श० ब्रा०
ऋषीत्येष गतौ धातुःश्रुतौ सत्ये तपस्यथ।
एतत् संनियतस्तस्माद् ब्रह्मणा स ऋषिःस्मृतः। वायु० पु० ५६ अध्याये ८० श्लो०

५. वाचैव सम्राड् ब्रह्म ज्ञायते वाग् वै परमं ब्रह्म। बृ० आर० उपनिषत्

६. वेदानां मातरं मत्स्थां पश्य देवीं सरस्वतीम्। महा भा० शा० पर्व।

७. यस्य निःश्वसितं वेदा यो वेदेभ्योऽखिलं जगत्।
निर्ममे तमहं वन्दे विद्यातीर्थम् महेश्वरम्। ऋक्संहिता, सायणभाष्य।

८. वागक्षरं प्रथमजा ऋतस्य वेदानां माता अमृतस्य नाभिः। तै० ब्रा० ३।३६।१।

९. वाग् वै अजो वाचो वै प्रजा विश्वकर्मा जजान। शत० ब्रा० ७।५।२।२१।

१०. वाग् वै समुद्रो। ऋक् ४।५८।१
न वाक् क्षीयते न समुद्रः क्षीयते। ऐतरेय० ५।१६।

शब्द का (वाक् का) प्रादुर्भाव सृष्टि से पूर्व हुआ और उसी के साथ मानस संयोग करके ब्रह्मा ने समस्त देवताओं और चराचर जगत् का सृजन किया।[1]

जब हम किसी विषय में प्रवृत्त होते हैं तो पहले उस विषय के बोधक शब्दों की मानसिक सृष्टि करते हैं और फिर कर्म में प्रवृत्त होते हैं। इसी उदाहरण को लेकर कहा जाता है कि पहले ब्रह्म-मानस में वेदवाक् का उद्भव हुआ और फिर उसके परिणामस्वरूप पदार्थों की सृष्टि हुई। "भूरसि" वाक्य कह कर भू को (पृथ्वी को) उत्पन्न किया और इसी प्रकार जगत् के समस्त पदार्थों का सृजन हुआ।

परन्तु, यह पूर्व और पर के भेद व्यावहारिक हैं। मानव ईश्वर के समक्ष सदैव अपूर्ण हैं। वास्तव में प्रत्यय, शब्द और अर्थमय ईश्वर का कारणविग्रह एक है। वह अभिन्न है, किन्तु भिन्न भी प्रतीत होता है। हम केवल समझने-समझाने के लिये कहते हैं कि उसकी सृष्टिकल्पना प्रत्ययरूपी आनन्दमय कारणविग्रह का अंशमात्र है और उसी में स्थूल एवं सूक्ष्म सभी पदार्थों की स्थिति है। उसके 'पर' शब्द से ही परिणाम में समस्त 'अपर' शब्दों की सापेक्ष सत्ता स्वयंसिद्ध है और उसके अर्थों से ही जो प्राकृत शक्ति का प्रथमोद्भूत स्वरूप है, समस्त विकृति और तज्जन्य पदार्थों की अनुभूति होती है। इन्हीं तीनों से ईश्वर के हिरण्यगर्भ और विराट्शरीर जाने जाते हैं। प्रत्यय और अर्थ से हिरण्यगर्भ और शब्द से विराट्। इसलिए परा वाक् ही उसका पर शब्द है और मध्यमा एवं वैखरी केवल शब्द अथवा वाक्। मातृका और वर्ण वाक् के सूक्ष्म एवं स्थूल रूप हैं।

अतः वाक् और विश्व के समस्त पदार्थों का एक ही कारण है और वह है प्रत्यय अर्थात् पदार्थ की ओर मानस की गति।

सरस्वती वेदों और नामरूपात्मक विश्व की जननी है। वही सर्वोपरि शक्ति है। उसी से उद्भूत वाक् शक्ति के द्वारा सरस्वती नाम से उस का चिन्तन और स्तवन किया जाता है। वीणा उसका प्रिय वाद्य है जो नाद अथवा शब्द का सूचक है। उसके श्वेत वस्त्र शब्दगुणप्रधान आकाश और निर्मल बुद्धि के प्रतीक हैं। उसका नाम "सरस्" गति अथवा प्रवाह का सूचक है। वह निस्पन्द शिव अथवा ब्रह्म की परात्मिका शक्ति है और व्यक्त जगत् में क्रियात्मिका रूप से सृष्टिकाल में "हं" इस गर्जन शब्द के द्वारा उद्भूत होती है और फिर शान्त हो जाती है। यही गति अथवा प्रवाह सदा चलता है। इसी का नाम "सरस्" है और इसी से वह शक्ति सरस्वती है।

वैज्ञानिकों का मत है कि परमाकाश में जड़ पदार्थों के समान जीर्णता और नाश-रूपी विकार अथवा परिवर्तन नहीं होते। यह अपरिवर्तनीय दृढ़ और शाश्वत परम-

---

१. मनसस्तु समुद्भूता महाभूता नराधिप। म० भा० शा० पर्व। ३१०।१६।

व्योम ही वज्र[1] कहलाता है जो शाश्वत त्रिवृत्[2] ब्रह्म का प्रतीक है। इसी का क्रियात्मक रूप प्रजापति है जिसकी शक्ति सरस्वतीनाम से गतिशालिनी हो कर सृष्टिक्रम में प्रवाहित हो रही है।

सरस्वती हंसवाहिनी है। वह पार्थिव हंस पर नहीं, अपितु प्राणिमात्र में श्वास अर्थात् प्राणबीज के अन्तर्बहिर्गमनक्रियारूप "हं" और "स" पर विराजमान है।[3]

वेदों की जननी होने के कारण वाक् अथवा सरस्वती विद्या और बुद्धि की देवता है। बुद्धि अथवा प्रज्ञा ही मनुष्य में सर्वोपरि है। ज्ञान, बल, क्रिया ये तीनों परमात्मा की विशिष्ट शक्तियां हैं। यों तो भौतिक शक्ति (बल) और कर्म (क्रिया) का भी बहुत महत्व है परन्तु बुद्धि अथवा ज्ञानशक्ति इन सब में विशिष्ट है। इस शक्ति का मन अथवा मानस से सम्बन्ध है और मन ही मनुष्य है। जितने मनुष्य हैं, उतने ही मन हैं। उतने ही बुद्धि के भेद भी हैं। परन्तु उन सब का मूल ब्रह्ममानस में है। वही ब्रह्मसर है और उसी ब्रह्मसर में उत्पन्न होनेवाली वाक् का नाम सरस्वती है जो मानव-मात्र की बुद्धि की अधिष्ठात्री है। उसी के प्रसादरूप में प्रत्येक मानस उस मानस सरोवर में से अपना अपना मानसपात्र भरता है और अपनी भौतिक शक्ति एवं क्रिया का विकास करता है।

अपने मानसपात्र में आये हुए ज्ञान अथवा बुद्धिरूपी सहज स्वच्छ जल (प्रकाश) को निर्मल बनाये रखना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। अविद्याजन्य राग-द्वेषादि इसको आविल करते रहते हैं। उस समष्टिभूत अनन्त ज्ञान-भण्डार एवं विद्या की अधिष्ठात्री देवी सरस्वती का निरन्तर चिन्तन और स्तवन करके ही वह अपने निर्मल ज्ञान को सुरक्षित रख सकता है। अत एव भगवती सरस्वती का आराधन और स्तवन अकारण नहीं है।

श्रीभुवनेश्वरी-महास्तोत्र मन्त्रगर्भित स्तोत्रपाठ है। मन्त्रजाप और स्तोत्रपाठ से अभीष्टसम्प्राप्ति होती है। मन्त्र द्वारा जीव त्रिविध तापों का शमन करने में समर्थ होता है। वह इस से स्वर्गसुखों को पा सकता है। चतुरशीति-लक्ष जीवयोनियों के भवचंक्रमण से मुक्ति भी वह इसी मन्त्र-साधना के बल पर प्राप्त कर सकता है।

---

१. क ऋग्वेद में सरस्वती को "पावीरवी" अर्थात् वज्र की पुत्री बताया गया है। यहाँ वज्र से अपरिवर्तनीय ब्रह्म और उसकी पुत्री से वाक्शक्ति समझना चाहिए।

ख. वाग् वै सरस्वती पावीरवी। ऐतरेय० ३।३७।

२. वज्रो वै त्रिवृत्। षड्विंश ब्राह्मण। ३।३३४।
ब्रह्म वै त्रिवृत्। ताण्ड्यब्राह्मण २।१६।४।

३. हकारेण बहिर्यान्तं विशन्तं च सकारतः।

मन्त्र[1] शब्द का पूर्वार्द्ध मन अथवा मनन से सम्बद्ध है और उत्तरार्द्ध "त्र" का अर्थ है त्राण। तात्पर्य यह है कि मन्त्र मनन के द्वारा संसार अथवा भौतिक जगत् से जीव की रक्षा करता है, उसे मुक्त करता है और जीवन के समस्त सिद्धिभूत चतुर्वर्ग का आमन्त्रण करता है।

मन्त्र अक्षरों से बनते हैं। अक्षर, उनके तत्तत् समुदाय और शब्द सभी ब्रह्म के व्यक्त रूप हैं, क्रियात्मिका शक्ति के विविध स्वरूप हैं। मुख से उच्चारित, कानों से श्रुत और मस्तिष्क से समझे हुए सभी शब्द इसके रूप हैं। परन्तु जो मन्त्र पूजा और साधना में प्रयुक्त होते हैं, वे विशिष्ट ध्वनियाँ हैं जो सम्बद्ध देवता के स्वरूप को व्यक्त

---

१. क. मननं विश्वविज्ञानं त्राणं संसारबन्धनात्।
यतः करोति संसिद्धो मन्त्र इत्युच्यते ततः ॥ पिङ्गलामते ॥

ख. मननात् त्राणनाच्चैव मद्रूपस्यावबोधनात्।
मन्त्र इत्युच्यते सम्यङ् मदधिष्ठानतः प्रिये ॥ रुद्रयामले ॥

ग. वर्णात्मकाः शब्दा नित्याः। मन्त्राणामचिन्त्यशक्तिता। तन्त्रमते।

घ. मननात् तत्वरूपस्य देवस्यामिततेजसः।
त्रायते सर्वभयतः तस्मान् मन्त्र इतीरितः ॥ कुलार्णवतन्त्रे १७ ॥

ङ. मन्त्रि गुप्तभाषणे घञ् अच् वा। वेदभेदः। "प्रनूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थम्।" ऋग्वेदः ६७।४।७४।

च. गायत्रीतन्त्रे।

छ. "Words are not mere sounds as they ordinarily seem to be. They have a subtle and intellectual form within. The internal source from which they evolve is calm and serene, eternal and imperishable. The real form of Vak, as opposed to external sound, lies far beyond the range of ordinary perception. It requires a great deal of साधना to have a glimpse of the purest form of speech. The ऋक् to which पतञ्जलि has refered bears strong evidence to this fact. वाक् is said to reveal her divine self only to those who are so trained as to undestand the real nature..........."

Spiritual Outlook of Sanskrit Grammar by P. C. Chakravarti. (Journal of the Department of Letters, Calcutta, 1934.)

करते हैं और मन्त्रगत अक्षरावलि के मात्रा, बिन्दु, विसर्ग, पद और पदांश एवं वाक्य सम्बद्ध होकर मन्त्ररूप में विविध देवताओं के स्वरूप को अभिहित करते हैं। विभिन्न वर्णों में विभिन्न देवताओं की विभूतिमत्ता सन्निहित होती है। अमुक देवता का मन्त्र वह अक्षर अथवा अक्षरों का समूह है जो साधनशक्ति के द्वारा उसको (अभिधेय को) साधक की चेतना में अवतीर्ण करता है। यों मन्त्रविशेष के द्वारा उस के अधिष्ठातृदेवता का साक्षात्कार होता है। मन्त्र में स्वर, वर्ण और नादविशेष का एक क्रमिक रूढ़ संगठन होता है।[1] अतः उसका अनुवाद अथवा व्युत्क्रम नहीं हो सकता। क्योंकि उस अनुवाद में उस स्वर, वर्ण, नाद और पदसंघटना की आवृत्ति नहीं होती जो उस मन्त्र अथवा देवता के अवयवीभूत हैं। नित्यप्रति के व्यवहार में भी देखा जाता है कि जिस व्यक्ति का जो नाम रख दिया जाता है वह उन्हीं अक्षरों, वर्णों और स्वरों का उच्चारण होने पर हमारे अभिमुख होता है, नाम में आये हुए शब्दों के अनुवाद में अथवा विपर्यास में वह अभिव्यक्ति नहीं हो सकती। यथा—किसी का नाम रामलाल है तो वह इन्हीं चार अक्षरों के क्रमोच्चारित होने पर ही बोलेगा, अनुवाद करके 'दाशरथिरक्त' कहने पर नहीं। अतः मन्त्र किसी व्यक्तिविशेष की विचार-सामग्री नहीं है, प्रत्युत वह चैतन्य का ध्वनिविग्रह है।

यद्यपि सभी शब्दसमूह शक्ति के विभिन्न स्वरूप हैं परन्तु मन्त्र और बीजाक्षर सम्बद्ध देवता के स्वरूप हैं, स्वयं देवता हैं, साधक के लिए प्रकाशमान तेजः-पुञ्ज हैं। उस से अलौकिक शक्ति जागृत होती है। साधारण शब्दों का जीव के समान उत्पत्ति और लय होता है परन्तु मन्त्र शाश्वत और अपरिवर्तनशील ब्रह्म है।

मन्त्र ही देवता हैं अर्थात् परा चित्शक्ति मन्त्ररूप में व्यक्त होती है। मन्त्री साधनशक्ति द्वारा मन्त्र को जागृत करता है। मूल में साधनशक्ति ही मन्त्रशक्ति के रूप में अधिक शक्तिशालिनी होकर व्यक्त होती है। साधना के द्वारा साधक का निर्मल और प्रकाशयुक्त चित्त मन्त्र के साथ एकाकार हो जाता है और इस प्रकार मन्त्र के अर्थस्वरूप देवता का उसको साक्षात्कार होता है। साधक की जीवशक्ति मन्त्रशक्ति के प्रभाव से उसी प्रकार उद्दीप्त होती है जैसे वायुलहरियों के सम्पर्क से अग्नि प्रज्वलित होती है। मन्त्रशक्ति से उपचित हुई जीवशक्ति के द्वारा ऐसे कार्य भी सम्पन्न किये जा सकते हैं जो प्रत्यक्ष में असम्भव प्रतीत होते हैं। या, यों कहें कि मन्त्रशक्ति के द्वारा जीवशक्ति को दैवी शक्ति प्राप्त हो जाती है और उस शक्ति के द्वारा दैवीकार्य सम्पन्न होते हैं, साधक दैवीसम्पत् प्राप्त करता है।

---

१. क. मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति,
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

ख. एकःशब्दः सम्यग् ज्ञातः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके च कामधुग् भवति। महाभाष्ये।

आधुनिक मनोविज्ञान का भी यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि विचार, चिन्तन अथवा मनन ही शक्ति है और इसके द्वारा बाह्य भौतिक साधनों के बिना भी दूसरों के विचारों को प्रभावित किया जा सकता है तथा परिस्थितियों में परिवर्तन लाया जा सकता है। इसी प्रकार मनन अथवा मन्त्र के सम्प्रयोग द्वारा देवसाक्षात्कार, चतुवर्गसम्प्राप्ति एवं ब्रह्मसायुज्य भी साध्य हैं।

मन का अर्थ है चिन्तन। जिसके द्वारा मनन होता है वही मन है। मननशील ही मनु है। मनु ही मन्त्र है। मनन एवं मन्त्रसाधन ही मानव की इतरजीवों से विशिष्टता है।

स्तोत्र में देवता का गुणानुवाद, आत्मनिवेदन और वाञ्छासम्प्राप्ति के लिए प्रार्थना होती है। वह प्रार्थी की अपनी भाषा में हो सकती है। उसका अनुवाद भी अन्यान्य भाषाओं में किया जा सकता है। परन्तु, विशिष्ट प्रतिभावान् विद्वद्वरिष्ठों ने कतिपय ऐसे स्तोत्रों की रचनाएं की हैं जिन में प्रार्थना के साथ साथ तत्तद् देवता-सम्बन्धी बीजाक्षरमन्त्र भी निगुम्फित रहते हैं और वारंवार स्तोत्रपाठ के साथ उन उन मन्त्रों का भी जाप होता रहता है। इस सरस प्रक्रिया के द्वारा सामान्य साधकों को भी इष्टसम्प्राप्ति सुलभ हो जाती है।

स्तोत्रपाठ से श्रद्धा जागृत होती है और आत्मविश्वास में दृढ़ता आती है।[1] जब श्रद्धा को आत्मविश्वास पर आधारित बुद्धि और विनिश्चय का बल मिलता है तब मानसिक शक्ति का अपूर्व विकास होता है और एतद्द्वारा अन्यथा असम्भव कार्यों का भी साधन सम्भव हो जाता है। श्रद्धावान् के अन्तर में यह विश्वास दृढ़मूल हो जाता है कि दूसरे लोग यद्यपि उसकी अपेक्षा अधिक योग्यता एवं बुद्धि रखते हैं तथापि उसे देवप्रसाद का ऐसा अलौकिक बल सम्प्राप्त है जिस से वह उन से पीछे नहीं है। उन्हें जो कुछ प्राप्त होने वाला है वह और उस से भी अधिक उसे मिल सकता है।[2] श्रद्धावान् में हीनभावना को अवसर नहीं है। श्रद्धा और विश्वास का समन्वय ही विशुद्ध विज्ञान की प्राप्ति का साधन है और उसकी सम्पादिका कुञ्जी देवस्तुति ही है।

---

१. क; श्रद्धादेवो वै मनुः। ऋग्वेद
ख. यो यच्छ्रद्धः स एव सः।
ग. यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम् ॥ गीता ॥

१. त्वदन्यस्मादिच्छाविषयफललाभे न नियमः
त्वमर्थानामिच्छाधिकमपि समर्था वितरणे।
इति प्राहुः प्राञ्चः कमलभवनाद्यास्त्वयि मन-
स्त्वदासक्तं नक्तन्दिवमुचितमीशानि, कुरु तत् ॥ आनन्दलहरी ॥

सकलागमाचार्यचक्रवर्ती श्री पृथ्वीधराचार्य कृत प्रस्तुत स्तोत्र भी ऐसा ही मन्त्र-गर्भित स्तोत्र है। इस में सब मिला कर ४६ पद्य हैं जिनमें से पूर्व ३६ शार्दूलविक्रीडित पद्यों में आद्याशक्ति भगवती भुवनेश्वरी की स्तुति की गई है और ३७वें तथा ३८वें पद्यों में स्तोत्रकर्ता ने अपने गुरु परमकारुणिक श्रीसिद्धिनाथ अपरनाम श्रीशम्भुनाथ का स्मरण करते हुए उनके कृपाबाहुल्य का वर्णन किया है। ३९वें पद्य में भगवती से प्रार्थना की गई है कि वाग्विमुखों (जड़ों) से उनका सम्पर्क न हो। ४०वें पद्य में पुनः गुरु की अभ्यर्थना की गई है और ४१ वें में इष्टदेवतासाक्षात्कार और उसके स्वहृदयपीठाधिष्ठान का वर्णन किया गया है। पद्य ४२वें में गुरुप्रसादसम्प्राप्ति का उल्लेख है। ४३ और ४४वें पद्यों में पूजा और जपविधान के साथ साथ अचिन्त्य-प्रभावा फलश्रुति का निर्देश किया गया है। स्तोत्र के अन्तिम श्लोक में इस स्तोत्र की रचना में भगवान् शम्भुनाथ की आज्ञाप्राप्ति का निर्देश करते हुए इसे अलौकिक, प्रभविष्णु और सम्पूर्ण सिद्धियों का अधिष्ठान बताया गया है।

मोह और महाभ्रम की उद्दामलहरियों से अभिभूत इस संसारमहोदधि से परपार उतरने के लिए दृढ़पोत के रूप में इस महास्तोत्र की रचना करते हुए आचार्य ने सन्मात्रबिन्दुसमुद्भवा परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी से आरम्भ कर वाग्भवमहिमा, बीजान्तरध्यान, मन्त्रोद्धार, देवतास्वरूप, यजनविधान, आराधन और आराधनफल, अक्षरमातृकानिर्मित भुवनेश्वरीविग्रह, अन्तर्बहिर्यजन, कुंडलिनीजागरण और षट्चक्रभेदन प्रभृति का वर्णन करते हुए आत्मशरणागतिनिवेदन किया है।

श्रीपृथ्वीधराचार्य भगवत्पाद शंकराचार्य के शिष्य और तन्त्र, मन्त्र एवं समस्त शास्त्रों के प्रकाण्ड पंडित थे। बाम्बे ब्रांच आफ दी रायल एसियाटिक सोसायटी के सूचीपत्र में ८५१ संख्या पर अंकित बालार्चनविधि के विवरण में शृंगेरीमठ की गुरु-परम्परा इस प्रकार दी हुई है :—

"गौडपाद, गोविन्द, शंकराचार्य, पृथ्वीधराचार्य, ब्रह्मचैतन्य और आनन्दचैतन्य आदि।"

आफ्रेट ने लिपजिग कैटलाग संख्या १३७४-७७ पर पृथ्वीधराचार्यकृत सात कृतियों का विवरण दिया है, जो इस प्रकार है :—

१ भुवनेश्वरीस्तोत्र २ लघुसप्तशतीस्तोत्र[1] ३ सरस्वतीस्तोत्र ४ कातन्त्रविस्तर-विवरण ५ मृच्छकटिक की व्याख्या ६ वैशेषिक रत्नकोष और ७ भुवनेश्वर्यर्चनपद्धति।

---

१. लघुसप्तशतीस्तोत्र की दो हस्तलिखित प्रतियां श्री रूपनारायणजी "साधक" शास्त्री द्वारा महास्तोत्र के प्रायः मुद्रित हो जाने पर मुझे प्राप्त हुई हैं, अतः इसे भी छपवा दिया गया है। श्री साधकजी इसके लिए धन्यवादार्ह हैं।

(सम्पादक)

श्री शंकराचार्य का समय[1] ईसा की ८ वीं शताब्दी और विक्रम की ९ वीं शताब्दी माना गया है और पृथ्वीधराचार्य शृंगेरीपीठ की गुरुपरम्परा में इनसे दूसरे स्थान पर आते हैं अत: इनका समय इसी के लगभग होना चाहिए। गहन दार्शनिक ग्रन्थों की रचना करने के अतिरिक्त सरस स्तोत्र-रचना करके पारमार्थिक एवं व्यावहारिक पक्षों का समन्वय करते हुए लोककल्याण का सदुद्देश्य भगवान् शंकर ने अपनी परम्परा में निहित किया था। इसी परम्परा का पालन करते हुए श्रीपृथ्वीधराचार्य भी स्तोत्रकार के रूप में हमारे सामने आते हैं।

श्रीपृथ्वीधराचार्य ने अपने गुरु का परिचय स्तोत्र के ३७वें पद्य में इस प्रकार दिया है:—

श्रीसिद्धिनाथ इति कोऽपि युगे चतुर्थे
प्रादुर्बभूव करुणावरुणालयेऽस्मिन् ।
श्रीशम्भुरित्यभिधया स मयि प्रसन्नं
चेतश्चकार सकलागमचक्रवर्ती ॥

उक्त पद्य की व्याख्या करते हुए भाष्यकार पद्मनाभ ने 'करुणया युक्ते वरुणालये ग्रामविशेषे नर्मदातटनिकटवर्तिनि' ऐसा स्थानोल्लेख किया है परन्तु श्रीशंकर भगवत्पाद का जन्मस्थान कालपी बताया जाता है।

श्रीपृथ्वीधराचार्यकृत भुवनेश्वरीमहास्तोत्र एक प्रसिद्ध एवं प्राचीन स्तोत्र है और इसकी हस्तलिखित प्रतियाँ अनेक ग्रन्थ भण्डारों में प्राप्त हैं।[2] इसका निरन्तर पाठ करके श्रेय:सम्प्राप्ति की कथाएं भी सुनी गई हैं। परन्तु इस स्तोत्र का मुद्रण बहुत पूर्व हुआ हो, ऐसा ज्ञात नहीं होता। निर्णयसागर प्रेस, बम्बई से भवानीसहस्रनाम एक छोटी सी नित्यपाठ पुस्तक, के अन्त में यह स्तोत्र प्रकाशित हुआ था। इसके पश्चात् रसशाला, गोंडल से प्रकाशित आयुर्वेदरहस्य में भी कुछ वर्षों पूर्व यह देखने में आया परन्तु इस का सभाष्य संस्करण स्वतन्त्ररूप में कहीं छपा हो, ऐसा देखने में नहीं आया।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के संग्रह में संख्या ८२६ पर पद्मनाभकृत भाष्यसहित श्रीभुवनेश्वरीस्तोत्र की प्रति जब मेरे देखने में आई, तब मैंने विभाग के सम्मान्य सञ्चालक मुनि श्रीजिनविजयजी महाराज को वह प्रति दिखाई और इसके प्रकाशन की प्रर्थना की। उन्हों ने इसे सहर्ष स्वीकार किया और इस के सम्पादन करने की आज्ञा मुझे प्रदान की। जब पुस्तक की प्रतिलिपि हो गई तब इस के पाठ एवं स्थल

---

१. शङ्कराचार्यप्रादुर्भावस्तु विक्रमार्कसमयादतीते ८४५ पञ्चचत्वारिंशदधिकाष्टशतीमिते संवत्सरे केरलदेशे कालपीग्रामे शिवगुरुशर्मणो भार्यायां समभवत्। आर्यविद्यासुधाकरे चतुर्थः प्रकाशः पृ० २२६, २२७।

२. केटलाग्स कैटलागरम् भाग १, ३४५।

कुछ संदिग्ध प्रतीत हुए, अतः अन्य प्रतियों का अन्वेषण आवश्यक हुआ। परन्तु वे सहज ही कहीं उपलब्ध नहीं हुईं। प्रतिष्ठान में हस्तलिखित ग्रन्थों के जो इतरसंग्रहालयों के सूचीपत्र उपलब्ध थे उन में देखने पर भी ऐसी सभाष्य प्रति का उल्लेख नहीं मिला। अन्ततो गत्वा यथोपलब्ध सामग्री पर संतोष कर प्रकाशन का निश्चय करना पड़ा। तभी एक अप्रत्याशित उपलब्धि ने मुझे सूचित कर दिया कि यह प्रकाशन भगवती भुवनेश्वरी को अभीष्ट है और दो प्रतियाँ मुझे प्राप्त हो गईं। इन में से एक प्रति मेरे सुहृत् पण्डित गंगाधरजी द्विवेदी, साहित्याचार्य और दूसरी स्वर्गीय ज्योतिर्वित् पण्डित केदारनाथजी (काव्यमाला-सम्पादक) के संग्रह से प्राप्त हुई। ये दोनों ही प्रतियाँ यद्यपि आदर्शप्रति से अर्वाचीन हैं परन्तु अधिक शुद्ध और प्रामाणिक हैं। प्रथम प्रति पण्डित गंगाधरजी के प्रपितामह श्रीसरयूप्रसादजी द्विवेदी (स्व० महामहोपाध्याय पं० दुर्गाप्रसादजी द्विवेदी के पिता) द्वारा लेखित एवं दूसरी प्रति स्वयं केदारनाथजी के हस्ताक्षरों में लिखित है। इन दोनों प्रतियों का उल्लेख प्रस्तुत पुस्तक में ख. और ग. प्रति के रूप में किया गया है।

जब सम्पादित प्रति प्रेस में दे दी गई और मूल पुस्तक का मुद्रण समाप्त होने को आया तब स्तोत्र के ४३,४४वें पद्यों पर विचार करते हुए मुझे ध्यान आया कि यदि भुवनेश्वरी की पञ्चांगपद्धति भी इसके साथ लगा दी जाए तो इसकी उपादेयता बढ़ जाएगी; क्योंकि पूजा और पाठ दोनों शब्दों का नित्यसम्बन्ध है और इनसे सम्बन्धित क्रियाएं भारतीय जीवनपद्धति के मनोरम पक्ष हैं।

पञ्चांग में पटल, कवच, पूजापद्धति, सहस्रनाम और स्तोत्र सम्मिलित हैं। पटल देवता का गात्र, पद्धति शिर, कवच नेत्र, मुख सहस्रार (सहस्रनाम) और स्तोत्र देवी की रसना है।[1]

यथा वृक्ष में मूल से शिखापर्यन्त एक ही रस व्याप्त रहता है, परन्तु पत्र, शाखा और पुष्पादि नानारूपों में व्यक्त होता है, उसी प्रकार विश्व में एक ही शक्ति नाना वस्तुओं के रूप में प्रकट होती है उसी को महाशक्ति कहते हैं। हम जिन वस्तुओं को देखते हैं और जो हमारे चारों ओर फैली हुई हैं वे सब ही इसी सर्वोच्च शक्ति के विभिन्न रूप हैं। जन्म, विकास और विनाश ये सब उसी महाशक्ति के प्रत्यक्ष विलास हैं। एकमात्र सर्वोच्च सत्ता ने अनेक रूपों में अपने को विभक्त करने की इच्छा की और ऐसा ही किया भी। ये विभक्त वस्तुएं मूल में एक होने के कारण पुनः एक होने

---

१. क. पटलं देवतागात्रं पद्धतिर्देवताशिरः।
कवचं देवतानेत्रे सहस्रारं मुखं स्मृतम्।
स्तोत्रं देवीरसा प्रोक्ता पञ्चांगमिदमीरितम्। प्राचाम्।

ख. पूर्वजन्मानुशमनादपमृत्युनिवारणात्।
सम्पूर्णफलदानाच्च पूजेति कथिता प्रिये॥ कुलार्णवतन्त्रे १७ उल्लासे॥

का प्रयास करती हैं। वस्तुओं के पारस्परिक भौतिक और मानसिक विघटन-संघटन में यही एक से अनेक और अनेक से एक हो जाने की इच्छा मूलकारण है। इसी इच्छा का नाम शक्ति है। एक से अनेक और फिर अनेक से एक होने की इच्छा जिस सर्वोच्च सत्ता की है, उसी के आधार पर यह विश्वव्यापार चल रहा है। उसी सत्ता का सहस्रों नामों से बड़े ज्ञानी, ध्यानी और पण्डित स्तवन करते आये हैं। ऐसे स्तवन से मन धीरे धीरे निर्मल होता है और उस में मूलशक्ति के प्रति प्रीति (आकर्षण) उत्पन्न होती है जिसके द्वारा इस संसार से निस्तार अथवा पुनः उसी सर्वोच्च सत्ता में लय सम्भव है।[1]

पृथक् तत्वों का पारस्परिक सम्बन्ध एवं आकर्षण शक्ति के अनेक रूपों में से कामशक्ति पर आधारित है। इस प्राकृतिक शक्ति का समस्त जीवित प्राणियों में निवास है। इसके द्वारा असीम सुख एवं अधिक से अधिक पीड़ा दोनों ही उत्पन्न हो सकते हैं। प्राचीन महान् ऋषि मुनियों ने इसे पशु प्रकृति कहा है और इस पर नियन्त्रण रखते हुए संयमित जीवन पर बल दिया है। यही इस शक्ति के द्वारा लाभान्वित होने का उपाय बताया गया है। प्रत्येक सामने आने वाले शक्ति के स्वरूप में मनुष्य सर्वसत्तात्मिका देवी का दर्शन करे और उसमें पूज्यभाव को विकसित करे। इस से स्वात्मशक्ति और प्रतिभा दोनों का ही विकास होता है। नारीमात्र में देवीभावना का ग्रहण ही कुत्सित भावनाओं और अनिष्टकारी परिणामों से सुरक्षा प्राप्त करने के लिए दुर्भेद्य कवच है। कवच का यही रहस्य है।[2]

पटल में पूजा, विधि, मन्त्र और बीजाक्षर के समस्त समूहों का रहस्य ग्रथित रहता है, उस के अध्ययन से सभी गूढ़ रहस्य स्वयं प्रकाशित होकर साधक के सामने आ जाते हैं।[3]

पूजापद्धति से मानसिक व्यापार (क्रियाकलाप) में एकाग्रता एवं तन्मयता के साथ साथ एक शुचि व्यवस्थाभाव का उदय होता है जिससे निर्मल हुए मन में देवतानुशासन के साथ आत्मानुशासन की भावना का विकास होता है। इस आत्मशासन की प्रतिष्ठा से जीवनचर्या में एक अलौकिक सफलता की कुञ्जी साधक को प्राप्त होती है। अपमृत्युनिवारण और ऐहिक आमुष्मिक दुरितक्षय तो देवता के सम्प्रसाद से स्वयंसिद्ध हैं ही।[4]

---

१. स्तोकस्तोकेन मनसः परमप्रीतिकारणात्।
स्तोत्रसंतरणाद्देवि स्तोत्रमित्यभिधीयते॥ कुलार्णवतन्त्रे १७ उ० ॥

२. कव ग्रहणे इत्यस्माद्धातोः कवचसम्भवः। कालीतन्त्रटीकायाम् पृ० ११।

३. पाटयति दीप्यते यः सः पटलः ग्रन्थः। पट् कलच्। हलायुधे।

४. पूर्वजन्मानुशमनादपमृत्युनिवारणात्।
सम्पूर्णफलदानाच्च पूजेति कथिता प्रिये! कुलार्णवतन्त्रे १७ उ०

अस्तु, भुवनेश्वरीपञ्चाङ्ग की एक प्रति मेरे मित्र श्री लक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी के पास मिल गई। यद्यपि प्रतिष्ठान के संग्रहालय में भी संख्या ७०५६ पर अङ्कित भुवनेश्वरीपद्धति की एक और प्रति मिल गई थी, परन्तु वह अपूर्ण थी। इन दोनों प्रतियों के आधार पर तथा गोस्वामी श्रीशिवानन्दभट्टरचित सिद्धसिद्धान्तसिन्धु से आवश्यक सन्दर्भ उद्धृत कर प्रेस कापी मुद्रणार्थ प्रेषित कर दी गई। इसी बीच में अलवर संग्रहालय, अलवर से भी एक प्रति प्राप्त हो गई और उस में से भी आवश्यक पाठान्तर टिप्पणी में दे दिये गये। पञ्चाङ्गभाग में प्रतिष्ठान की प्रति को ख. प्रति तथा अलवर वाली प्रति को ग. प्रति के नाम से अभिहित किया गया है और गोस्वामीजी की प्रति को आदर्श क. प्रति माना गया है।

पञ्चाङ्ग भाग का मुद्रण समाप्त हो ही रहा था कि छापरनिवासी श्री लाधूरामजी दूधोड़िया के पास 'भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिका' की प्रति मेरे देखने में आई। यह प्रति श्रीपृथ्वीधराचार्य-पद्धति पर आधारित थी। मिलान करने पर यह पद्धति रुद्रयामलान्तर्गत पूर्वपद्धति से भिन्न पाई गई। अतः मैंने इस को भी संलग्न करना आवश्यक समझा। यह प्रति मातृपुरस्थित दाईदेवसम्प्रदायी अनन्तदेवविरचित है। इस पद्धति की भी किसी अन्य प्रति का उल्लेख अन्यत्र नहीं मिला। प्रस्तुत पद्धति के दूसरे कल्प में दो पत्र (तीसरा और चौथा) किसी अन्य कृति के संलग्न हैं; परन्तु सौभाग्य से इन्हीं अनन्तदेवविरचित 'दक्षिणाकालीपद्धति' प्रतिष्ठान के संग्रह में संख्या २७३५ पर उपलब्ध हो गई जिस के आधार पर यह दो पत्रों का त्रुटित अंश पूर्ण कर लिया गया।[1] इस प्रकार इस पुस्तक को प्रस्तुत रूप प्राप्त हुआ है।

भुवनेश्वरी महास्तोत्र सिद्धसारस्वत स्तोत्र है। श्री पृथ्वीधराचार्य ने फलश्रुति में कहा है कि उनके अश्रुप्लावित नेत्रों के समक्ष स्वयं सरस्वती प्रकट हुई और उन्हें वरदान दिया। भगवती सरस्वती ने उनके हृदयपीठ को आसन के रूप में अलंकृत किया और वह नव नव शास्त्रों की अवतारणा के रूप में उन के मुख में अवतीर्ण हुईं। भगवती के कृपाप्रसाद से ही आचार्य को वाक्सिद्धि की प्राप्ति हुई।

पूजा और साधना का विधान बताते हुए आचार्य ने कहा है कि साधक व्रतस्थ होकर यदि तीन मास पर्यन्त भगवती आद्याशक्ति भुवनेश्वरी की आराधना करता हुआ स्तोत्रपाठ करे तो समस्त विद्याएं गुरुप्रसाद से उसे प्राप्त होती हैं। व्रतादिबन्धन में न रहते हुए भी यदि साधारणतया इस स्तोत्र का नित्य पाठ किया जाए तो एक वर्ष की अवधि में ही उसे कवित्वपूर्ण पाण्डित्य की सम्प्राप्ति होती है, ऐसा इस महास्तोत्र का अचिन्त्य प्रभाव स्वीकार किया गया है।[2]

---

१. देखिये टिप्पणी पृ० १३३.

२. इत्थं प्रतिक्षणमुदश्रुविलोचनस्य
पृथ्वीधरस्य पुरतः स्फुटमाविरासीत्।

महास्तोत्र के भाष्यकार कवि पद्मनाभ' का परिचय कहीं उपलब्ध नहीं हुआ। कृति के अन्तःसाक्ष्य से भी सूत्रानुसन्धान प्राप्त नहीं होता। यद्यपि संस्कृतसाहित्यकारों में कितने ही पद्मनाभ नाम के ग्रंथकर्ता और कवियों का उल्लेख प्राप्त है परन्तु उन में से किसी के साथ भी इन पद्मनाभ की संगति नहीं बैठती। अतः इनके विषय में निश्चयपूर्वक कोई मत व्यक्त नहीं किया जा सकता। अनुसन्धित्सु विद्वानों से एतद्विषयक अभिज्ञा की आशा करता हूं।[1]

दत्वा वरं भगवती हृदयं प्रविष्टा
शास्त्रैःस्वयं नवनवैश्च मुखेऽवतीर्णा ॥ ४१ ॥
वाक्सिद्धिमेवमतुलामवलोक्य नाथः
श्रीशम्भुरस्य महतीमपि तां प्रतिष्ठाम्।
स्वस्मिन् पदे त्रिभुवनागमवन्द्यविद्या–
सिंहासनैकरुचिरे सुचिरं चकार ॥ ४२ ॥
इत्थं मासत्रयमविकलं यो व्रतस्थः प्रभाते
मध्याह्ने वास्तमनसमये कीर्तयेदेकचित्तः।
तस्योल्लासैः सकलभुवनाश्चर्यभूतैः प्रभूतैः
विद्याः सर्वाः सपदि वदने शम्भुनाथप्रसादात् ॥ ४४ ॥
व्रतेन हीनोऽप्यनवाप्तमन्त्रः श्रद्धाविशुद्धोऽनुदिनं पठेद् यः।
तस्यापि वर्षादनवद्यसद्यः-कवित्वहृद्याः प्रभवन्ति विद्याः ॥ ४५ ॥
कोऽप्यचिन्त्यप्रभावोऽस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः।
श्रीशम्भोराज्ञया सर्वाः सिद्धयोऽस्मिन् प्रतिष्ठिताः ॥ ४६ ॥

१. पद्मनाभ नामक निम्नलिखित ग्रन्थकारों का परिचय मिलता है :—

क. रामखेटक काव्य के कर्ता पद्मनाभ, लक्ष्मीनाथ शिष्य। रचनासम्वत् १८३१।
एसियाटिक सोसायटी बंगाल का सूचीपत्र। कैटलागस् कैटलोगरम् १. ५२०

ख. चन्द्रिका जनमेजय के कर्ता पद्मनाभ।
मद्रास लायब्रेरी कैटलाग सं० ५५७०

ग. मदनलीलादर्पण भाण के कर्ता पद्मनाभ लक्ष्मण और वेणकमाम्बापुत्र।
मद्रास लायब्रेरी कैटलाग भाग ३. ३१७५

नोट :—इनके द्वारा रचित त्रिपुरविजयव्यायोग भी संख्या ३४७ पर अङ्कित है। इनका समय १६वीं शताब्दी है।

घ. रुक्माङ्गदीय काव्य के कर्ता पद्मनाभ।
कैटलागस् कैटलोगरम् भाग १। १३२

ङ. वीरभद्रदेवचम्पू के कर्ता पद्मनाभ बलभद्रसुत।
सरस्वतीभवन पुस्तकालय, उदयपुर का सूचीपत्र। सं० ८६०, १५०८

नोट :—ये दोनों प्रतियां क्रमशः सं० १६४८ और १६६१ में लिखित हैं। पीटरसन ने "बम्बई प्रान्त में संस्कृत हस्तलिखित ग्रन्थों की खोज" नामक विवरण में भी इनका उल्लेख किया है।

पुस्तक में यद्यपि उपलब्ध प्रतियों के आधार पर शुद्ध पाठ ग्रहण किये गये हैं तथापि इस की मन्त्रशास्त्रीयता पर ध्यान रखते हुए अधिक साहस से काम नहीं लिया गया है। इस पुस्तक का सम्पादन कार्य मुझे मुनि श्रीजिनविजयजी महाराज ने सौंपा है और समय समय पर आवश्यक निदर्शन भी किये हैं। पुस्तक का यह स्वरूप उन्हीं की कृपा से बन सका है अत एव उन के प्रति हार्दिक कृतज्ञभाव ज्ञापित करता हूँ। पण्डित श्री गंगाधरजी द्विवेदी और श्री लाधूरामजी दूधोड़िया ने अपनी हस्तलिखित प्रतियां देकर मुझे उपकृत किया है, एतदर्थ उन का आभार मानता हूं। सन्दर्भसंकलन, प्रेसकापीलेखन एवं प्रागूरूप संशोधन में मेरे सुहृद् श्रीमल्लक्ष्मीनारायणजी गोस्वामी और श्रीमदन शर्मा "सुधाकर" ने यथेष्ट सहयोग दिया है तदर्थ इन दोनों बन्धुओं को अकृत्रिम धन्यवाद अर्पित करता हूं।

आशा है, यह पुस्तक श्रद्धालुओं एवं साहित्यान्वेषणरसिकों के कुछ काम आएगी।

ऋषिपञ्चमी, २०१७ वि०
राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान,
जोधपुर।

प्रणतिपरायण—
गोपालनारायण

सन्दर्भ-ग्रन्थ-नामावली

संख्या	नाम
१.	अग्निपुराणम्
२.	अथर्ववेदः
३.	अमरकोषः
४.	आर्यविद्यासुधाकरः
५.	आह्निककर्मसूत्रावलिः
६.	ऋग्वेदः
७.	एशियाटिक सोसायटी, बङ्गाल का सूचीपत्र
८.	ऐतरेय आरण्यकम्
९.	कठोपनिषत्
१०.	कालीतन्त्रम्
११.	कुलार्णवतन्त्रम्
१२.	कूर्मपुराणम्
१३.	कैटलागस् कैटलागरम्, भाग १.
१४.	कौषीतकी उपनिषत्
१५.	गायत्रीतन्त्रम्
१६.	जैमिनीय उपनिषत्
१७.	ताण्ड्यब्राह्मणम्
१८.	तैत्तिरीयब्राह्मणम्
१९.	दक्षिणामूर्तिसंहिता
२०.	निघण्टुमातृका
२१.	नीलसरस्वतीतन्त्रम्
२२.	पञ्चविंशब्राह्मणम्
२३.	पिङ्गलामतम्

संख्या	नाम
२४.	बृहदारण्यकोपनिषत्
२५.	भगवद्गीता
२६.	मद्रास लायब्रेरी कैटलाग भाग ३
२७.	महाभारतम्
२८.	महातन्त्रार्णवः
२९.	मार्कण्डेयपुराणम्
३०.	रुद्रयामलतन्त्रम्
३१.	लघुसप्तशतीस्तोत्रम्
३२.	व्याकरणमहाभाष्यम्
३३.	वाचस्पत्यम्
३४.	वायुपुराणम्
३५.	विष्णुपुराणम्
३६.	शतपथब्राह्मणम्
३७.	शारदातिलकम्
३८.	षड्विंशब्राह्मणम्
३९.	सरस्वतीकण्ठाभरणम् रत्नदर्पणव्याख्यायुतम्
४०.	सरस्वतीभवन पुस्तकालय, उदयपुर का सूचीपत्र
४१.	सारसंग्रहः
४२.	सिंहसिद्धान्तसिन्धुः
४३.	सौन्दर्यलहरी
४४.	हलायुधकोषः
४५.	त्रिपुराभारतीलघुस्तवः

॥श्रीगणेशाय नमः॥ ॐ चंचन्मौक्तिकहेमसंकनयुतामालातिरिक्तांबरातन्वंगी नयनत्रयातिरु-
चिरा बालार्कविभ्रासुरा याद्यांकुशपाशभूषितकरा देवी सदा प्रीतिदा चित्रस्था भुवनेश्वरी भव-
जनः सेयं मुदः सर्वदा १ कर्णस्वर्णविलोलकुंडलधरामापीनवृत्तोरुहां मुक्ताहारविभूषणां
परिलसद्धम्मिल्लसन्मल्लिकां लीलालालितलोचनां शशिमुखीमाबद्धकांचीस्रजं दिव्यांगीं भु- (हाशिये में: धम्मिल्लसन्म)
वनेश्वरीमनुदिनं वंदामहे मातरं २ अथ सत्तामुनदन्याहितमहोर्मिविलासलिप्तस्पर्शकज्जे-
डियमकरकुलविडरुणास्पादस्पानवरन्त्वपसूताभवन्मोदमहाभ्रमस्पसंसारवारांनिधेः
प्रतरणकर्णातपिव सकलसंपदाप्रापदंड: [illegible]
गर्द्दौ निखिलनिगमागमोदिताश्चविद्यास्त्वोकस्य चकारांभोजनाभिमिव संभावनो-
द्यतां कल्पवल्लीमिवाभिमितफलदानदक्षां रुचिरचरणसंक्रमतः कस्तगया वसुंधराम-
लिसनाथयंतीमिव चरणरणन्मणिमयमंजिरावररसनोल्लसत्किंकिणिकलक्काणक-
लितां पिचलां नावस्थितोदकबिंबवद्भासमाना मलमुक्ताफलप्रकरहारविभूषितपीनो

'क' प्रतिका आदि पृष्ठ

॥२०॥

नवद्यसद्यःकवित्वहृद्याः प्रभवंति विद्याः ॥४५॥ यः पुमान् भक्तेनद्यानोपि अनवाप्तमंत्रः श्री
जापमंत्रः श्रद्धाविशुद्धो नित्यमहर्दिनं तेरइदंजपेत् तस्यापि पुरुषस्य वर्णितसंवत्सरान्नवि
द्याः प्रभवंति स्फुरंति किंभूताः अनवद्यसद्यःकवित्वहृद्याः । अनवद्येन निर्दोषेण सद्यःकवि
त्वेन तत्कालोदितकाव्येन हृद्याः मनोहराः ॥ इदानीमस्य स्तोत्रस्याचिंत्यमहिमानमाह ॥ श्री
कोप्यचिंत्यः प्रभावोस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः ॥ आह्वानारोपतया सर्वाः सिद्धयोस्मिन्प्रतिष्ठि
ताः ॥४६॥ अस्य स्तोत्रस्य कोप्यचिंत्यः प्रभावः प्रत्ययावहो वर्त्तते प्रतीतिजनको वर्तते यतः कार
णात् आह्वानारोपतया सर्वाः अणिमाद्याः सिद्धयोस्मिन् स्तोत्रे प्रतिष्ठिताः आरोपिताः । अतएव
अचिंत्यमहिमस्तोत्रमित्यर्थः ॥ पद्मनाभेन कविना विपुला विमला कृता ॥ स्वबोधस्य स्तो
त्रवृत्तिः सद्यःकृद्दीपिका ॥ इति श्रीपद्मनाभकविरचितं भुवनेश्वरीस्तोत्रभाष्यं संपूर्णं ॥

॥२०॥

लिखितं ब्राह्मणजो
सेन ॥

'क' प्रतिका अन्तिम पृष्ठ

'ख' प्रतिका आदिपृष्ठ

भुवने० ४६

कोप्यचिंत्यः प्रभावोस्य स्तोत्रस्य प्रस्य यावत्ः श्रीत्रंलोक्यस्य यासर्वाः सिद्धयोस्मिन् प्रतिष्ठिता ४६ कोपीति अस्य स्तोत्रस्य कोप्यचिंत्य प्रभावः प्रस्यया बहो वर्त्तते प्रतीतिजनको भवति यतः कारणात् श्रीत्रंलोक्यस्य सर्वा अणिमाद्याः सिद्धयोऽस्मिन् स्तोत्रे प्रतिष्ठिताः आरोपिताः अतएव अचिंत्यस्तोत्रमित्यर्थः पद्मनाभेन कविनाधि पुलाविमलाकृता पृथ्वीधरकृतातनुश्रुतिः सद्युक्तिदीपिका ४६ इति श्री पद्मनाभविरचितं भुवनेश्वरीस्तोत्रविवरणं संपूर्णं ॥ शुभमस्तु ॥ संवत् १९५० पौषमासीयकृष्णपक्षे द्वितीयनवम्यां भृगौ गंगासहाय शर्मणो लिपिः ॥ श्रीमहाराजाधिराज श्रीमाधवसिंह राज्ये जयपुरे पुस्तकमिदमाधोध्यक्ष सरयूप्रसाद द्विवेदिनः शिवम् ॥ ॥

'ख' प्रतिका अन्तिम पृष्ठ

श्रीः

सकलागमाचार्यचक्रवर्त्तिश्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितम्

भुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्

कविपद्मनाभविरचितभाष्यविभूषितम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ चञ्चन्मौक्तिकहेममण्डनयुता माताऽतिरक्ताम्बरा
तन्वङ्गी नयनत्रयातिरुचिरा बालार्कवद्भासुरा ।
या दिव्याङ्कुशपाशभूषितकरा देवी सदा भीतिहा
चित्तस्था भुवनेश्वरी भवतु नः सेयं मुदः (दे) सर्वदा[1] ॥ १ ॥

कर्णस्वर्णविलोलकुण्डलधरामापीनवक्षोरुहां
मुक्ताहारविभूषणां परिलसद्धम्मिल्लसन्मल्लिकाम् ।
लीलालोलितलोचनां शशिमुखीमाबद्धकाञ्चीस्रजं
दीव्यन्तीं भुवनेश्वरीमनुदिनं वन्दामहे मातरम् ॥ २ ॥

अथ सतामुदन्यादिमहोर्मिवेलाकुलितस्य[2] सकलेन्द्रियमकरकुण्डलवत्[3] दुरवगाह-स्यानवरतप्रभूतीभवन्मोहमहाभ्रमस्य[4] संसारवारांनिधेः प्रतरणाय सत्पोतमिव सकलसम्पदामास्पदमिव यस्याः प्रसादमासाद्य चतुरचतुराननोऽपि सर्गादौ निखिल-निगमागमोदिताश्च विद्याः[5] सद्योऽ[6]ङ्कुरयाञ्चकाराम्भोजनाभिमिव[7] सम्भावनोद्यतां कल्पवल्लीमिवाभिमतफलदानदक्षां रुचिरचरणसङ्क्रमणतः[8] करुणया वसुन्धराम-

---

१. पद्यस्य.स्य ख. ग. प्रत्योर्नोपलब्धिः ।
२. ग. सतां दैन्यादिमोहोर्मिमालाकुलितस्य । ३. ग. मण्डलचटुलदुरवगाहनस्य ।
४. ग. महामोहभ्रमस्य । ५. ख. चतुर्दशविद्याः । ग. निखिलनिगमादिविद्याः ।
६. ग. समङ्कुरयाञ्चकार । ७. ख. ग. तां जननीमिव । ८. ग. संक्रमणया ।

भिसनाथयन्तीमिव[१] चरणरणन्मणिमयमञ्जीरां[२] वररशनोल्लसत्किङ्किणीकुलक्वाण-कलितां पिच्छलां नावस्थितोदकबिम्बवदवभासमाना[३]ममलमुक्ताफलप्रकरहारविभूषित-पीनोन्नतपयोधरां नवमधुककुसुमसुषमातिरस्कारकारिकरचरणकपोलयुगलप्रतिबिम्बित-चारुचामीकरकुण्डलां[४] चञ्चच्चन्द्रकलावतंसितशिरोदेशां स्फुरन्महामौलिमाणिक्यविराज-मानां भुवनेशामभिवन्द्य[५] सकलागमाचार्यचक्रवर्त्तिपृथ्वीधराचार्यविरचितमहास्तोत्रस्य यथाचाहं[६] बालप्रबोधिनीं सकलविमलपददीपिकां टीकां विरचयामीति[७] ॥

ऐंदव्या कलयावतंसितशिरो विस्तारि नादात्मकं
तद्रूपं जननि स्मरामि परमं सन्मात्रमेकं[८] तव ।
यत्रोदेति पराभिधा भगवती भासां हि तासां पदं
पश्यन्तीमनुमध्यमा विहरति स्वैरं च सा वैखरी ॥ १ ॥

ऐंदव्येति—हे जननि तव तत् रूपं स्मरामि अहरहो[९] ध्यायामि, किम्भूतं तव तद्रूपं अवतंसितशिरः अवतंसितं शेखरीकृतं शिरो मूर्द्धा यस्य तत् तथा । कया इन्दोरियं ऐंदवी तया ऐंदव्या[१०] कलया । पुनः किम्भूतं तव रूपं, विस्तारि विस्तारोऽ-स्यास्तीति विस्तारि सर्वव्यापकमित्यर्थः । पुनः किम्भूतं[११] नादात्मकं नादस्वरूपं, उच्चारणकाले नादवत् । पुनः किम्भूतं परमं परा उत्कृष्टा मा शोभा यस्य तत् परमं प्रकृष्टमित्यर्थः[१२] । पुनः किम्भूतं सन्मात्रं सद्भावरूपमिति यावत् । अपरं किम्भूतं एकं अद्वितीयम् । हे विश्वेश्वरि[१३] यत्र यस्मिन् तव रूपे पराभिधा परासंज्ञा[१४] वाणी उदेति उदयं प्राप्नोति किम्भूता वाणी[१५] भगवती षडैश्वर्यज्ञानवती भगोर्कज्ञानमाहात्म्यं[१६]

---

१. ख. संनाथयमानामिव । २. ख. चरणरणन्मणिमयमञ्जीरादिकसकलचरणाभरण-मण्डितां । ग. रणन्मणिमयमञ्जीरादिचरणाभरणमण्डितां ।

३. ख. पिप्पलदलान्तावस्थितोदकबिन्दुवदवभासमानां । ग. पिच्छिल······भासमानां ।

४. ख. नवबन्धूककुसुमसुषमातिरस्करीं कलरवकपोतयुगलप्रतिबिम्बितचारुचामीकरकुण्डलां । ग. नवबन्धूककुसुमनिकुरम्बतिरस्कारकारिवरकपोलयुगलप्रतिबिम्बितचारुचामीकरकुण्डलां ।

५. ख. ग. भुवनेशानीमभिवन्द्य । ६. ख. यथामति ।

७. ख. प्रतिजानीते पद्मनाभपण्डितष्टीकाकारः ।

८. ग. चिन्मात्रं । ९. ख. अहं रहो । १०. ग. इन्दुसम्बन्धिन्या ।

११. ग. सन्मात्रं सत्तामात्रं नादात्मकं उच्चारणकाले नादवत् ।

१२. ग. परमसुत्कृष्टमित्यर्थः । १३. ख. हे जननि । १४. ग. तत् संज्ञा । १५. सा ।

१६. ग. भगोर्कः भगो ज्ञानमित्यनेकार्थदर्शनात् ।

इति चानेकार्थश्रवणात् । पुनः किंविधा पराभिधा भासां हि तासां पदं, हि निश्चितं तत् तासां प्रसिद्धानां भासां दीप्तीनां पदं स्थानं ततः पराभिधायाः पश्यंती वाक् विहरति पुनः पश्यंतीमनु पश्चान्मध्यमा वाग् विहरति ततः स्वैरं स्वेच्छया चाष्टस्थानविशदीकृता सेति[1] सर्वप्रसिद्धा वैखरी वाग् विहरति । अथ च मनोःपक्षे ऐंदव्या कलयावतंसितशिरो इति चन्द्रार्द्धानुकारि[2] लक्ष्यते । ततः विस्तारि प्रपञ्चो माया यस्याऽस्तीति ततः विस्तारि मायाबीजमिति निष्कृष्टार्थः । तदनु नादात्मकं नादशब्देनात्र बिन्दुरनुस्वारोऽभिधीयते तेन सहितमिति सानुस्वारं ह्रीमिति यावत् ।

अथ वैखर्याः सातिशयं महिमानमुन्मीलयन् अपरवृत्तमाह—

आदिक्षान्तविलासलालसतया तासां तुरीया तु[3] या
क्रोडीकृत्य जगत्त्रयं विजयते वेदादिविद्यामयी ।
तां वाचं मयि संप्रसादय सुधाकल्लोलकोलाहल-
क्रीडाकर्णनवर्णनीयकवितासाम्राज्यसिद्धिप्रदाम् ॥ २ ॥

आदीति—हे मातः सकलेश्वरि, तु इति व्यवच्छेदे तासां पूर्वोक्तानां परापश्यन्तीमध्यमावैखरीलक्षणानां वाचां मध्ये तुरीया चतुर्थी वाक् वैखरीलक्षणा सा जगत्त्रयं भुवनत्रितयं[4] क्रोडीकृत्य अभिव्याप्य विजयते सर्वोत्कर्षेण वर्त्तते । कया कृत्वा आदिक्षान्तविलासलालसतया आदयः अकारादयः क्षान्ताः क्षकारान्ताः ये वर्णास्तेषां यो विलासो विलसनं तस्य या लालसता उच्चारणविशेषः तया आदिक्षांतविलासलालसतया विश्वमखिलमभिव्याप्य वर्त्तत इत्यर्थः । किम्भूता सा तुरीया (वैख) री, वेदादिविद्यामयी वेदादयो या विद्याः ताः स्वरूपं यस्याः सा तथा, हे जननि तां तुरीयां वैखरीं[5] वाचं मयि विषये सम्प्रसादय सम्यक् प्रसादं विधाय उत्पादय । किम्भूतां वाचं सुधाकल्लोलकोलाहलक्रीडाकर्णनवर्णनीयकवितासाम्राज्यसिद्धिप्रदां सुधायाः पीयूषस्य ये कल्लोला लहर्यस्तेषां यः कोलाहलः कलरवः तस्य या क्रीडा खेलनं तस्याः यदाकर्णनं तद्वद्वर्णनीया स्तुत्या या कविता तस्याः या साम्राज्यसिद्धिः स्वच्छन्दविहारिणी[6] सिद्धिस्तां प्रकर्षेण ददातीति तथा ताम् ॥२॥

---

१. ख. सती, ग. चेति । २. ख. ग. चन्द्रानुकारि चालिख्यते । ३. ग. च ।
४. ख. भुवनत्रयं । ५. ख. वैखरीलक्षणां । ६. ग. स्वच्छन्दा विहारिणां सिद्धिः ।

अथेदानीं विशिष्टवाग्भवस्य महिमानमाह—

कल्पादौ कमलासनोऽपि कलया विद्धः कयाचित् किल
त्वां ध्यात्वाऽङ्कुरयाञ्चकार चतुरो वेदांश्च विद्याश्च ताः ।
तन्मातर्ललिते प्रसीद सरलं सारस्वतं देहि मे
यस्यामोदमुदीरयन्ति पुलकैरन्तर्गता देवताः ॥ ३ ॥

कल्पादाविति—हे मातः जननि किल इति सत्ये[1] कल्पादौ सृष्टेरादौ कमलासनोपि ब्रह्मापि त्वां ध्यात्वा चतुरो वेदान् पुनश्च ताः विद्याश्चतुर्दश अङ्कुरयाञ्चकार प्रकटीकृतवान् किम्भूतः कमलासनोपि निश्चयेन कयाचित् कलया विद्धः स्यूतः पुनः किम्भूतः वा चतुर इति ब्रह्मणो विशेषणम् । हे मातः ततः कारणात् त्वं प्रसीद प्रसादं कुरु मे मह्यं सरलं सारस्वतं देहि, सश्च रश्च लश्च सर्वो द्वन्द्वो विभाषयैकवदिति एतैर्वर्णैः सहितमिति यावत् अथवा सरलमिति प्राञ्जलं केवलं वाग्भवमेव ऐंकाररूपमित्यर्थः । हे ललिते एतन्महिमानं वाग्भवरूपं मनुं मयि प्रसारयेति प्रार्थना । अपरं, हे विश्वेश्वरि यस्य वाग्भवामोदं[2] यस्यामोदमुदीरयन्ति पुलकैरन्तर्गता देवता यस्य वाग्भवस्य आमोदं महिमान अन्तर्मध्ये स्थिता देवता आत्माप्रभृतय उदीरयन्ति कैः पुलकैः रोमाञ्चैरिति यावत् ॥ ३ ॥

अथ भगवत्या बीजांतरध्याने फलमाह—

मातर्देहभृतामहो धृतिमयी नादैकरेखामयी
सा त्वं प्राणमयी हुताशनमयी बिन्दुप्रतिष्ठामयी ।
तेन त्वां भुवनेश्वरीं विजयिनीं ध्यायामि जायां विभो-
स्त्वत्कारुण्यविकाश (सि) पुण्यमतयः खेलन्तु मे सूक्तयः ।४।

मातरिति—अहो इति सम्बोधने[3] हे मातः सा त्वं देहभृतां शरीरिणां एवंविधा वक्ष्यमाणलक्षणा वर्त्तसे तेन कारणेन विभोर्महादेवस्य[4] जायां कुटुम्बिनीं भुवनेश्वरीं ध्यायामि । किम्भूतां त्वां विजयिनीं विजयनशीलां अत एव मे मम सूक्तयः शोभना वाचः खेलन्तु नवनवगद्यपद्यकरणोद्यमे[5] दीव्यन्तु । किम्भूताः सूक्तयः त्वत्कारुण्य-

---

१. ख. सत्यं । २. ख. मे मह्यं सरलं सारस्वतं देहि सरलं अर्थावगममाधुर्यादिगुणविशिष्टं न तु वैषम्याद्युपहतं । ३. ख. सम्बोधनं । ४. ख. विभोः श्रीमहादेवस्य ।

५. ख. नवनवाः गद्यपद्यमय्यः मे सूक्तयः खेलन्तु विलसन्त्वित्यर्थः, नवनवगद्यपद्यसद्यः-करणोद्यमा ।

विकासिपुण्यमतयः त्वत्कारुण्येन त्वत्करुणया विकाशिनी[1] प्रकाशशीला उन्मीलयन्ती[2] पुण्या पवित्रा मतिर्यासां तास्तथा। किम्भूता त्वं धृतिमयी[3] धृतिरेकार-स्तन्मयी[4], अपरं किम्भूता त्वं नादैकरेखामयी नादशब्देनात्र उकारो गृह्यते[5] तस्य एका रेखा चन्द्रकला तन्मयी, पुनः किम्भूता प्राणमयी प्राणो हकारस्तन्मयी, पुनः किम्भूता हुताशनमयी हुताशनो रेफस्तन्मयी, पुनः किम्भूता बिन्दुप्रतिष्ठामयी बिन्दु-रनुस्वारस्तस्य प्रतिष्ठा आरोपणं तन्मयी ह्रीं इति भवति मनुः। इह धृतिमयीत्यादिषु सर्वविशेषणेषु[6] स्वरूपार्थे मयड्विधार्थाभिधानम् ॥ ४ ॥

अथेदानीं यन्त्रोद्धारमाह[7]—

त्वामश्वत्थदलानुकारमधुरामाधारबद्धोदरां[8]
संसेवे भुवनेश्वरीमनुदिनं वाग्देवतामेव ताम्।
तन्मे शारदकौमुदीपरिचयामोदं सुधासागर-[9]
स्वैरोज्जागरवीचिविभ्रमजितो दीव्यन्तु दिव्या गिरः ॥ ५ ॥

त्वामिति—हे जननि! अनुदिनं दिनं दिनं अनुलक्ष्यीकृत्य[10] तां त्वां वाग्देवतामेव भुवनेश्वरीं संसेवे सम्यगाराधयामि। ततःकारणात् मे मम दिव्या गिरो वाण्यः दीव्यन्तु क्रीडन्तु। किम्भूता गिरः शारदकौमुदीपरिचरामोदं (परिचयोदञ्चत्) सुधासागरस्वैरोज्जागरवीचिविभ्रमजितः शरदि भवा शारदी, शारदी चासौ कौमुदी च शारदकौमुदी इत्यत्र 'स्त्रियाः पुंवद्भाषितपुंस्कादिति पुंवद्भावे पूर्वपदस्य लोपः' तस्यायं परिचयः परिदर्शनं[11] तेन उदञ्चदुद्वेलीभवत्[12] सुधासागरः पीयूषवारि-धिस्तस्य स्वैरं स्वेच्छया या उज्जागराः शब्दायमाना वीचयो लहर्यस्तासां यो विभ्रमो विलासस्तं जयन्तीति तथा किम्भूतां त्वां अश्वत्थदलानुकारमधुरां अश्वत्थदलानुकारेण पिप्पलदलसदृशतया मधुरां त्रिकोणमधुरा[13]मित्यर्थः। आधार-बद्धोदरां आधारे[14] षट्कोणेन बद्धोदरां रचितनिलयां एतावता पूर्वं त्रिकोणमालिख्य

---

१. ख. विकाशी। २. ग. उन्मीलन्ती। ३. ख. धृतिर्धारणावतीबुद्धिस्तन्मयी।
४. ग. धृतिरीकारस्तन्मयी। ५. ख. नादशब्देन अनुस्वारो विधीयते, ग. ओंकारो विधीयते।
६. ख. धृतिमय्यादिविशेषणेषु मयड्विधानं तत्तन्मयत्वज्ञापनार्थम्। ७. ख. यन्त्रोद्धारणमाह।
८. ग. बद्धोदरीं। ९. ख. ग. परिचयोदञ्चत्सुधासागर। १०. ख. दिनंदिनमदुर्लभीकृत्य।
११. ख. तस्या यः परिचयो दर्शनम्। १२. ख. यः। १३. ख. मनोहरा;
ग. त्रिकोणेन मनोहरामित्यर्थः। १४. ख. ग. आधारेण।

ततः षट्कोणं विधाय तस्यानु पश्चाद्दिनं अष्टप्रहरमानतया[१] अष्टदलकमलमिति संकेतितं भवति[२] ततो वाङ्मयं[३] बीजं चन्द्रकलानुस्वारसहितं तन्मध्ये विलिखेदिति यन्त्रोद्धारविधिः ।। ५ ।।

अथेदानीं परमेश्वर्या ध्यानमाह—

लेखप्रस्तुतवेद्यवस्तुसुरभिश्रीपुस्तकोत्तंसितो
मातः स्वस्तिकृदस्तु मे तव करो वामोऽभिरामः श्रिया ।
सद्यो विद्रुमकन्दलीसरलतासन्दोहसान्द्राऽङ्गुलि-[४]
मुद्रां बोधमयीं दधत् तदपरोप्यास्तामपास्तभ्रमः ।। ६ ।।

लेखेति—हे मातः तव वामकरो मे मम स्वस्तिकृदस्तु शुभकरो[५] भवतु । किम्भूतो वामकरः लेखप्रस्तुतवेद्यवस्तुसुरभिश्रीपुस्तकोत्तंसितः लेखेन यत्प्रस्तुतवेद्यं प्रस्तुतज्ञाप्यं[६] वस्तु तत्प्रतिपादकं सुरभिश्रिया[७] मनोहरकान्त्या सहितं यत्पुस्तकं तेनोत्तंसितो मण्डितः[८] । पुनः किम्भूतः, श्रिया अभिरामः शोभया मनोहरः[९] तदपरो दक्षिणकरः सद्यस्तत्कालमेव मे मम अपास्तभ्रमः आस्तां निराकृतभ्रान्तिर्भवतु । किं कुर्वन् बोधमयीं मुद्रां दधत् । पुनः किम्भूतः विद्रुमकन्दलीसन्दोहसान्द्रांगुलिः विद्रुम-कन्दल्याः प्रवाललतायाः सरलतासंदोहः प्राञ्जलता विलासस्तद्वत् सान्द्रा मनोहरा[१०] अंगुलयो यस्य सः तथा इति द्वयोरपि विशेषणम् ।। ६ ।।

अथ भगवत्याः कृपाभववीक्षणेन प्रार्थन्नाह[११]—

मातः पातकजालमूलदलनक्रीडाकठोरा दृशः
कारुण्यामृतकोमलास्तव मयि स्फूर्जन्तु सिद्ध्यूर्जिताः ।
आभिः स्वाभिमतप्रबन्धलहरीसाकूतकौतूहला-
ऽभ्रान्त[१२]स्वान्तचतुर्मुखोचितगुणोद्गारां करिष्ये गिरम् ।।७।।

मातरिति—हे मातः तव दृशो दृष्टयो मयि (मम) विषये स्फूर्जन्तु उल्लसन्तु । किम्भूताः दृशः पातकजालमूलदलनक्रीडाकठोराः पातकानां जालं समूहः तस्य मूलं कन्दः

---

१. ग. अष्टप्रहरमापाततया । २. ख. संभवति । ३. ख. वाग्भवं ।
४. ख. सान्द्राऽङ्गुली । ५. ग. शुभकारको । ६. ख. यत्प्रस्तुतं वेद्यं ज्ञाप्यं ।
७. ख. तेन यत्सुरभिः सौगन्ध्यं तद्रूपा या श्रीस्तया । ८. ग. सहितः ।
९. ख. शोभामनोहरः । १०. ख. प्राञ्जलिविलासस्तेन सान्द्राः संहता अंगुलयो ।
११. ख. ग. कृपाभरवीक्षणं संप्रार्थयन्नाह । १२. ग. कौतूहलाऽक्रान्त··· ।

तस्य दहने विदारणे क्रीडया लीलया कठोराः, पुनः किम्भूताः कारुण्यामृतकोमलाः कारुण्यं करुणा तदेवाऽमृतं[१] तेन कोमलाः[२] । पुनः सिद्ध्यूर्जिताः सिद्ध्या[३] ऊर्जिताः प्रेरिताः[४], किम्भूतां गिरं स्वाभिमतप्रबन्धलहरीसाकूतकौतूहलाश्रान्तस्वान्तचतुर्मुखोचितगुणोद्गारां स्वस्य आत्मन अभिमत अभिलषितो यः प्रबन्धो गद्यपद्यादिः[५] तस्य या लहरी स्फुरणा तस्याः यत् साकूतकौतूहलं साभिप्रायकौतुकं तत्र आश्रान्तं[६] श्लिष्टं शुचि यत् स्वान्तं मनः तेन चतुर्मुखस्येव ब्रह्मण इव उचितः सदृशो गुणानामुद्गारो[७] यस्याः सा तथा ताम् ॥ ७ ॥

इदानीं भगवत्याः यजनविधानमाह—

त्वामाधारचतुर्दलाम्बुजगतां वाग्बीजगर्भे यजे
प्रत्यावृत्तिभिरादिभिः कुसुमितां मायालतामुन्नताम् ।
चूडामूलपवित्रपत्रकमलप्रेङ्खोलखेलत्सुधा-
कल्लोलाकुलचक्रचङ्क्रमचमत्कारैकलोकोत्तराम् ॥ ८ ॥

त्वामिति—हे जननि ! त्वां वाग्बीजगर्भे ऐंकारमध्ये मायालतां ह्रींकारवल्लीं यजे पूजयामि किम्भूतां मायालतां आधारचतुर्दलाम्बुजगतां आधारचक्रमेव चतुर्दलाम्बुजं चतुर्दलकमलं तत्रगतां स्थितां[८], पुनः किम्भूतां उन्नतां[९] पुनः किम्भूतां आदिभिरकारादिभिर्वर्णैः कुसुमितां पुष्पितां अन्यापि लता उन्नता सती पुष्पिता भवति । किम्भूतैः आदिभिः प्रत्यावृत्तिभिः एकं एकं प्रति आसमन्ताद् भावेन वृत्तिर्वर्त्तनं येषां ते प्रत्यावृत्तयस्तैस्तथा । अथवा आदिभिरकारादिभिः क्षपर्यन्तैः प्रत्यावृत्तिभिः लोमप्रतिलोमभिर्वर्णैः कुसुमितां परमशोभान्वितामित्यर्थः । यथा ह्रीं अं ह्रीं आं इत्येवमादयः क्षपर्यन्ता[१०] वर्णाः स्वयमूहनीयाः । प्रतिलोमतो यथा ह्रीं क्षं ह्रीं लं ह्रीं सं इत्यादि, पुनः किम्भूतां मायालतां चूडामूलपवित्रपत्रकमलप्रेङ्खोलखेलत्सुधाकल्लोलाकुलचक्रचङ्क्रमचमत्कारैकलोकोत्तरां चूडामूले ब्रह्मरन्ध्रे यत् पवित्रपत्रकमलं विमलसहस्रदलपङ्कजं तत्र यः प्रेङ्खोलखेलत्सुधाकल्लोलः चपलतरं खेलन्ती

---

१. ख. पीयूषं । २. ख. ग. मृदुलाः । ३. ख. ग. तव आराधनेन ।
४. ख. ग. हे सुरेश्वरि आभिर्द्भिरहं गिरं वाणीं करिष्ये वाचं प्रकटयिष्यामि ।
५. ख. ग. गद्यपद्यादिमयः । ६. ग. आक्रान्तं । ७. ग. उद्वमनं घनप्रकटनं यत्र
८. ख. ग. संस्थितां । ९. ख. ग. उच्चैर्गतां । १०. ख. सपर्यन्ताः ।

पीयूषलहरी तेनाकुलं यत् चक्राकारत्वात् चक्रं पत्रसमूहः तस्य यः चङ्क्रमचमत्कारो विलोकनचमत्करणं[1] तेन लोकोत्तरां अनिर्वचनीयाम् ॥ ८ ॥

इदानीं परमेश्वर्या आराधनेन फलमाह—

सोऽहं त्वत्करुणाकटाक्षशरणः पञ्चाध्वसंचारतः
प्रत्याहृत्य मनो वसामि रसना रङ्गं ममालिङ्गतु ।
श्रीसर्वज्ञविभूषणीकृतकलानिष्यन्दमानामृत-
स्वच्छन्दस्फटिकाद्रिसान्द्रितपयः शोभावती भारती ॥ ६ ॥

सोऽहमिति—हे मातः सोऽहं तव सेवकः त्वत्करुणाकटाक्षशरणः सन् तव दयापाङ्ग[2]-वीक्षणशरणः सन् वसामि तिष्ठामि किं कृत्वा मनः चित्तं प्रत्याहृत्य (निर्वर्त्य) कस्मात् पञ्चाध्वसंचारतः प्राणादीनां पञ्चानामपि वायूनां[3] पञ्चाध्वसंचारणात्[4] पञ्चमार्गसं-क्रमणात् । यत्र च वातसंचरणं तत्र तत्र मनः संचरणमपि श्रूयते अथवा पञ्चानां अध्वनां मार्गाणां गाणपत्य[5]वैष्णवसौरशाक्तिक[6]शाम्भवानां संचारतः संचरणात्[7] मनो निर्वर्त्य यतः त्वयि एव वसामि अतःकारणात् भारती अमररसना[8] रङ्गं आलिङ्गतु आश्रयतु । किम्भूता भारती श्रीसर्वज्ञविभूषणीकृतकलानिष्यन्दमानामृत-स्वच्छन्दस्फटिकाद्रिसान्द्रितपयःशोभावती सकलदेवतावरिष्ठत्वात् श्रीशब्दस्य प्राक् प्रयोगः । श्रीसर्वज्ञो महेशः[9] तस्य या विभूषणीकृतकला[10] ततो निष्यन्दमानं निस्सरत् यदमृतं पीयूषं च स्वच्छन्दो निराश्रयो निर्मलो यः स्फटिकाद्रिः स च ताभ्यां सान्द्रितं बहुलीकृतं यत्पयो दुग्ध एतेषामेकत्रकरणे यादृशी शोभा भा भवति तादृश्येव विद्यते यस्याः सा तथा अथवा श्रीसर्वज्ञस्य महेश्वरस्य विभूषणीकृतकलायाः चन्द्रकलायाः निष्यन्दमानामृतेन स्वच्छन्दस्फटिकाद्रेः निर्मलस्फटिकपर्वतस्य सान्द्रितं बहुलीकृतं यत्पयो नीरं तद्वत् शोभा यस्याः सा तथा, युक्तोऽयमर्थः । यतश्चन्द्र-किरणाः पीयूषं वर्षन्ति[11] तद्दर्शनेन च स्फटिकाद्रिर्द्रवति तदुभयमेकीभूय तद्वत् शोभते तद्वत् सेति पिण्डितार्थः ॥ ६ ॥

---

१. ख. विलोमजं चमत्करणं; ग. विलोपनचमत्करणं । २. ख. ग. दयालुता ।
३. ग. आत्मनां । ४. ख. तस्मात् । ५. ख. गणपति । ६. ख. शाक्त ।
७. ख. मनोनिष्ठवायुः । ८. ख. ग. सरस्वती मम रसना । ९. ख. महेश्वरः
१०. ग. चन्द्रकला । ११. यतश्चन्द्रकिरणानां पीयूषं वर्तते ।

इदानीं भगवत्या बीजजपस्य प्रकारान्तरमाह—

मातर्मातृकया विदर्भितमिदं गर्भीकृतानाहत-
स्वच्छन्दध्वनिपेयमध्वनि रतं चन्द्रार्कनिद्रागिरौ ।
संसेवे विपरीतरीतिरचनोच्चारादकारावधि
स्वाधीनामृतसिन्धुबन्धुरमहो मायामयं ते महः ॥ १० ॥

मातरिति—अहो इति सम्बोधने हे मातः ते तव इदं मायामयं महो ज्योतिः संसेवे सम्यगाराधयामि[1] । किम्भूतं मायामयं महः गर्भीकृतानाहतस्वच्छन्दध्वनिपेयं गर्भीकृत इति अगर्भो गर्भः कृतः इति गर्भीकृतः यः अनाहतध्वनिः[2] अनाहतः स्वेच्छयोत्पन्नोऽनाहतः[3] तेन पेयं, दृश्यं पुनः किम्भूतं मायामयं चन्द्रार्कनिद्रागिरौ अध्वनि रतं चन्द्रार्कयोः श्वासोच्छ्वासयोर्निद्राविगतव्यापारः तस्यागिरिरिव गिरिः तस्मिन् चन्द्रार्कनिद्रागिरौ एव अध्वनि स्वाधिष्ठानचक्रे रतं आश्रितं पुनः किम्भूतं मायामयं महः मातृकया विदर्भितं मातृकया च गुम्फितं[4] यथा ऐं ह्रीं अं ऐं ह्रीं आं इत्यादि[5] क्षपर्यन्तं ज्ञेयं, अपरं किम्भूतं मायामयं महः स्वाधीनामृतसिंधुबंधुरं स्वाधीनः स्वस्य वश्यः यः अमृतसिन्धुः सागरः तद्वत् बन्धुरं मनोहरं अभिमतफलदमित्यर्थः । पुनः किंविशिष्टं विपरीतरीतिरचनोच्चारादकारवधि विपरीते रीतिरचनाया[6] मातृकाया उच्चारणात् अकारावधि यथा ऐं ह्रीं दं ऐं ह्रीं हं ऐं ह्रीं यं[7] इत्यकारावधि स्वयमूहनीयम् ॥१०॥

अथेदानीं परमेश्वर्या बीजाराधनेन यत्फलं भवति तदाह—

तस्मान्नन्दनचारुचन्दनतरुच्छायासु पुष्पासव-
स्वैरास्वादनमोदमानमनसामुद्दामवामभ्रुवाम् ।
वीणाभङ्गितरङ्गितस्वरचमत्कारोपि सारोज्झितो
येन स्यादिह देहि मे तदभितः संचारि सारस्वतम् ॥ ११ ॥

तस्मादिति—हे मातः तस्मात् तव महसः[8] सेवनात्[9] इह अस्मिन् लोके मह्यं सारस्वतं[10] देहि समर्पय । किम्भूतं अभितः संचारि सर्वतः प्रसरणशीलं अपि निश्चितं

---

१. ग. ध्यायामि । २. ख. ग. स्वच्छन्दध्वनिः । ३. ख. ग. अनाहतः स्वेच्छयोत्पन्नो नादः । ४. ग. मातृकयाऽवगुम्फितं । ५. ख. ऐं ह्रीं इं ऐं ह्रीं ईं इत्यादि ।

६. ख. विपरीतरीतिरचनायाम्, ग. विपरीतिरिति रचनाया मातृकायाः ।

७. ख. ऐं ह्रीं चं ऐं ह्रीं हं ऐं ह्रीं सं ऐं ह्रीं षं ऐं ह्रीं शं इत्यकारावधि स्वयमूहनीयम् ।

८. ख. महः । ९. ख. संसेवनात्; ग. सेवनाविहारि सल्लोके । १०. ख. महासारस्वतम् ।

येन सारस्वतेन सारोज्झितः स्यात् गतसत्त्वो भवेत् नीरसः स्यात्, कोऽसौ, वीणा-भङ्गितरङ्गितस्वरचमत्कारः वीणा प्रसिद्धा तस्याः या भङ्गिः तन्त्रीरचनाविशेषः तया तरङ्गितः उन्नादितोऽभित उत्पादितो[1] यः स्वराणां निषादादीनां चमत्कारः चमत्करणं स नीरस इति सम्बन्धः, कासां उद्दामवामभ्रुवां अमरवरसुन्दरीणां किंलक्षणानां वामभ्रुवां नन्दनचारुचन्दनतरुच्छायासु पुष्पासवस्वैरास्वादनमोदमानमनसां नन्दने वने ये चारुचन्दनतरवः मनोहरचन्दनवृक्षाः तेषां छायासु विषये पुष्पाणामासवस्य[2] मकरन्दस्य स्वैरं स्वेच्छया यदास्वादनं तेन मोदमानानि सहर्षाणि मनांसि यासां तास्तथा तासाम् ॥ ११ ॥

इदानीं भगवत्या वक्ष्यमाणश्लोकेन बीजत्रयस्य स्थानान्याह[3]—

आधारे हृदये शिखापरिसरे संधाय मेधामयीं
त्रेधा बीजतनूमनूनकरुणापीयूषकल्लोलिनीम् ।
त्वां मातर्जपतो निरङ्कुशनिजाद्वैतामृतास्वादन-
प्रज्ञाम्भश्चुलुकैः स्फुरन्तु पुलकैरङ्गानि तुङ्गानि मे ॥ १२ ॥

आधार इति—हे मातः त्वां बीजतत्त्वं[4] जपतो मे मम अङ्गानि शरीरावयवाः तुङ्गानि उच्छ्वसितानि स्फुरन्तु उल्लसन्तु कैः पुलकैः रोमहर्षणैः किं कृत्वा उत्तरश्लोके वक्ष्यमाणं बीजत्रयं एषु त्रिषु स्थानेषु त्रेधा संधाय त्रिप्रकारमनुबध्य अनुबधनं विधाय, केषु केषु स्थानेषु आधारे आधारचक्रे, हृदये मानसे, शिखापरिसरे ब्रह्मरन्ध्रे ।[5] किम्भूतैः पुलकैः निरंकुशनिजाद्वैतामृतास्वादनप्रज्ञाम्भश्चुलुकैः निरंकुशं मर्यादारहितं निजस्य स्वस्य यत् अद्वैतामृतास्वादनं तत्र यत् प्रज्ञाम्भो ज्ञानजलं तस्य चुलुकैः किम्भूतां त्वां मेधामयीं मेधास्वरूपां पुनः किम्भूतां अनूनकरुणापीयूषकल्लोलिनीं अनूनमनवरतं[6] यत् करुणापीयूषं दयाऽमृतं तस्य कल्लोला लहर्यो विद्यन्ते यस्यां सा तथा ताम्[7] ॥ १२ ॥

अथेदानीं बीजत्रयस्य ध्यानफलमाह—

वाणीबीजमिदं जपामि परमं तत्कामराजाभिधं
मातः सान्तपरं विसर्गसहितौकारोत्तरं तेन मे ।

---

१. ख. उत्थापितो । २. ख. आसवस्तस्य । ३. ख. ध्यानमाह; ग. बीजत्रयध्यानस्य स्थानान्याह । ४. ख. ग. बीजतनूं । ५. 'संधाय सन्निधीकृत्य' इति 'ख' पुस्तके विशेषः । ६. ख. ग. अनूनं घनतरं । ७. ख. यत् करुणापीयूषं तेन कल्लोलिनीं तरङ्गवतीमित्यर्थः ।

दीर्घान्दोलितमौलिकीलितमणिप्रारब्धनीराजनै-
धीरैः पीतरसा निरन्तरमसौ वाग्जृम्भतामद्भुता ।। १३ ।।

वाणीति—हे मातः सर्वेश्वरि[1] तेन कारणेन मे मम असौ अद्भुता वाक् निरन्तरं सततं उज्जृम्भतां प्रसरतु, कथं येन कारणेन इदं वाणीबीजं ऐंकाररूपं आधारचक्रे अहं जपामि । ततोऽपि कामराजं क्लींकाररूपं हृदये जपामि । ततः सान्तपरं स एव अन्तः अन्तभूतः पर उत्कृष्टो यस्य तत् सान्तपरं । पुनः किम्भूतं विसर्गसहितौकारोत्तरं विसर्गेण सहितं औकारोत्तरो यस्य तत् विसर्गसहितौकारोत्तरं सौं इति[2] शक्तिबीजं ब्रह्मरन्ध्रे णैव जपामि अथवा सान्तपरमित्यत्र बीजविशेषाधाने[3] क्रियमाणे हि एवं[4] समासघटना । अन्तःशब्देनात्र हकारो लभ्यते सकारानुषङ्गित्वात् अत्र तावत् हकारात् परः सकारः अन्तात् हकारान्तात् परोऽग्रे यस्य बीजस्य तत्सान्तपरं विसर्गसहितौ-कारोत्तरं । ह्सौंरिति रूपं शक्तिबीजं वा । किं विशिष्टा वाक् धीरैः पीतरसा बुधैरास्वादितरसा किम्भूतैः धीरैः दीर्घान्दोलितमौलिकीलितमणिप्रारब्धनीराजनैः दीर्घं यथा भवति तथा आन्दोलितेषु मौलिषु कीलिताः आरोपिताः मणयः तैरेव प्रारब्धा नीराजना यैः ते तथा तैः । किम्भूतं बीजत्रयं परमं उत्कृष्टा[5] मा शोभा यस्य तत्परमं अथवा परायाः पराभिधायाः वाण्याः मा शोभा यस्य तत्परममिति वाणी-बीजविशेषणमेव ।। १३ ।।

अथ भगवत्याः सफलं दक्षिणभुजध्यानमाह—

चूडाचन्द्रकलानिरन्तरगलत्पीयूषबिन्दुश्रिया
सन्देहोचितमक्षसूत्रवलयं या बिभ्रती निर्भरम् ।
अन्तर्मन्त्रमयं स्वमेव जपसि प्रत्यक्षवृत्त्यक्षरं
सा त्वं दक्षिणपाणिनाम्ब वितर श्रेयांसि भूयांसि मे ।।१४।।

चूडेति—हे अम्ब ! सा त्वं उक्तरूपा दक्षिणपाणिना[6] भूयांसि श्रेयांसि वितर उत्पा-दय[7] । या त्वं निर्भरं सुन्दरं स्फटिकमणिसंभूतं[8] सूत्रवलयं बिभ्रती सती अन्तर्मध्ये स्वमेव आत्मीयमेव मन्त्रमयं अक्षरं जपसि, किं लक्षणमक्षरं[9] प्रत्यक्षवृत्ति अक्षं अक्षं प्रति

---

१. ग. सकलेश्वरि । २. ख. यथा सौरिति । ३. ग. बीजविशेषोपधाने ।
४. ख. सा एव समासघटना । ५. ख. ग. परोत्कृष्टा । ६. ख. मे मह्यं इति विशेषः ।
७. ख. देहीत्यर्थः । ८. ख. स्फटिकमणिसदृशं धृतं । ९. ख. किम्भूतमक्षरं ।

वृत्तिर्वर्त्तनं यस्य तत् तथा। अथवा प्रत्यक्षा वृत्तिर्यस्य तत् प्रत्यक्षवृत्ति[1] किम्भूतमक्ष-सूत्रवलयं चूडाचन्द्रकलानिरन्तरगलत्पीयूषबिन्दुश्रिया सन्देहोचितं चूडाचन्द्रकला शेखरीभूता या चन्द्रकला तस्याः सकाशात् निरन्तरं अविच्छिन्नं यथा भवति तथा गलन्तो ये पीयूषबिन्दवः तेषां या श्रीः शोभा तया सन्देहोचितं अतिशुभ्रत्त्वात् तदनुरूपं तत्सदृशाकारमित्यर्थः[2] ॥ १४ ॥

अथेदानीं भगवत्या वामभुजध्यानमाह—

बद्ध्वा स्वस्तिकमासनं सितरुचिच्छेदावदातच्छवि-
श्रेणीश्रीसुभगं भविष्णु सततं व्याजृम्भमाणेऽम्बुजे[3]।
दीव्यन्तीमधिवामजानुरुचिरं न्यस्तेन हस्तेन तां
नित्यं पुस्तकधारणप्रणयिनीं सेवे गिरामीश्वरीम् ॥ १५ ॥

बध्द्वेति—अहं नित्यं निरंतरं गिरामीश्वरीं[4] सेवे समाराधयामि[5], किम्भूतां गिरामीश्वरीं हस्तेन पुस्तकधारणप्रणयिनीं हस्तेन पाणिना पुस्तकधारणे प्रणयः स्नेहो यस्याः सा तथा ताम्। किम्भूतेन हस्तेन (अधि) वामजानु रुचिरं न्यस्तेन आरोपितेन किं कृत्वा स्वस्तिकं स्वस्तिकसंज्ञं आसनं बद्ध्वा, किम्भूतमासनं सितरुचिच्छेदावदातच्छविश्रीसुभगं सितरुचेः स्फटिकादेः यः छेदः भङ्गः तस्य या अवदातच्छविः[6] उज्ज्वलता[7] तस्याः या श्रेणी तस्याः या श्रीः शोभा तया सुभगं मनोहरं, पुनः किम्भूतं भविष्णु भवनशीलं पुनः किम्भूतां गिरामीश्वरीं सततं व्याजृम्भमाणेऽम्बुजे अधिदीव्यन्तीं[8] अधिकशोभायुक्ताम्[9] ॥ १५ ॥

अथेदानीं भगवत्या[10] ध्यानस्य विशिष्टफलमाह—

तन्मे विश्वपथीनपीनविलसन्निःसीमसारस्वत-
स्रोतोवीचिविचित्रभङ्गिसुभगा विभ्राजतां भारती।
यामाकर्ण्य विघूर्णमानमनसः प्रेङ्खोलितैर्मौलिभि-
र्मीलद्भिर्नयनाञ्चलैः सुमनसो निन्देयुरिन्दोःकलाम्[11] ॥१६॥

---

१. ख. तत् तथा। २. ख. तत् सदृशमित्यर्थः। ३. ख. व्याजृम्भमाणे भुजे।
४. ग. वाचामधिदेवतां वागीश्वरीं। ५. ख. सम्यक् आराधयामि। ६. ख. श्रेणी।
७. ख. उज्ज्वलतरकान्तिः ग. उज्ज्वलतरकान्तिपंक्तिः। ८. ख. दीव्यंतीं।
९. ख. तद् युक्तां। १०. ख. ग. परमेश्वर्याः। ११. ग. कलाः।

तन्म इति—हे मातः तत् एवंविधात् तत्र ध्यानात्[1] मे मम भारती विभ्राजतां शोभतां, किम्भूता भारती विश्वपथीनपीनविलसन्निस्सीमसारस्वतस्रोतोवीचिविचित्रभङ्गिसुभगा विश्वपथं व्याप्नोतीति विश्वपथीनं यत् सर्वव्यापकं पीनं प्रौढं विलसत् क्रीड़ायुक्तं निस्सीमं सीमारहितं यत् सरस्वत्याः इदं सारस्वतं स्रोतः प्रवाहः तस्य वीचीनां याश्चित्रा[2] भङ्ग्यः शोभाः तद्वत् सुभगा मनोहरा। यां भारतीमाकर्ण्य सुमनसो देवाः विद्वांसो वा[3] इन्दोश्चन्द्रस्य कलां निन्देयुः। किम्भूताः सुमनसः विघूर्णमानमनसः विघूर्णमानानि मनांसि येषां ते[4] तथा, कैः[5] नयनाञ्चलैः मीलद्भिः अपरं कैः कृत्वा मौलिभिर्मस्तकैः किम्भूतैः तैः प्रेङ्खोलितैः चापलितैः[6] अवधूनितैरित्यर्थः ॥ १६ ॥

अथेदानीं परमेश्वर्या[7] बीजत्रयस्य प्रकारान्तरेण जपविधानमाह—

आदौ वाग्भवमिन्दुबिन्दुमधुरं झान्ते च कामात्मकं
योगान्ते कषयोस्तृतीयमिति ते बीजत्रयं ध्यायता।
सार्द्धं मातृकया विलोमविषमं[8] संधाय बन्धच्छिदा
वाचान्तर्गतया महेश्वरि मया मात्राशतं जप्यते ॥ १७ ॥

आदाविति—हे जननि ! हे महेश्वरि ! अन्तर्गतया वाचा मया मात्राशतं जप्यते। किम्भूतेन मया इति अमुना प्रकारेण बीजत्रयं विलोमविषमं[9] यथा भवति तथा मातृकया सह सन्धाय अनुबध्य ध्यायता चिन्तयता, इतीति किं आदौ अकारादौ इन्दुबिन्दुमधुरं इन्दुश्चन्द्रकला बिन्दुरनुस्वारस्ताभ्यां मनोहरं ताभ्यां सहितं वाग्भवं बीजं ऐं इत्यर्थः, च पुनः झान्ते झकारान्ते कामात्मकं क्लींकारं[10] तदनु कषयोर्योगान्ते क्षकारस्यान्ते तृतीयं शक्तिबीजं सौरिति तद्यथा ऐं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः कं खं गं घं ङं चं छं जं झं क्लीं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सौः। प्रतिलोमतो यथा सौः क्षं ळं हं सं षं शं वं लं रं यं मं भं बं फं पं नं धं दं थं तं णं ढं डं ठं टं ञं क्लीं झं जं छं चं ङं घं गं खं कं अः अं औं ओं ऐं एं ॡं लृं ॠं ऋं ऊं उं ईं इं आं अं ऐं। पुनः किं भूतेन मया बन्धच्छिदा बन्धः संसारः तं छिनत्तीति बन्धच्छित् तेन तत् तथा ॥ १७ ॥

---

१. ख. एवं विधोक्तमध्यानात्। २. ख. विचित्रा। ३. 'ख' पुस्तके नास्ति। ४. आल्हादकराणि हर्षकराणि इति 'ग' पुस्तके विशेषः। ५. ख. तैः। ६. ग. चालितैः, ७. ख. ग. भगवत्याः। ८. ख. ग. विषयं। ९. ख. विषयं। १०. ख. क्लींकाररूपं।

इदानीं भगवत्याराधनफलमाह—

तत्सारस्वतसार्वभौमपदवी सद्यो मम द्योततां
यत्राज्ञाविहितैर्महाकविशतैः स्फीतां गिरं चुम्बताम् ।
चैत्रोन्मीलितकेलिकोकिलकुहूकारावताराञ्चित-
श्लाघासिञ्चित[1]पञ्चमश्रुतिसमाहारोपि भारोपमः ॥ १८ ॥

तदिति—हे जननि ! तत् कारणात् सद्यः तत्कालं मम सारस्वतसार्वभौमपदवी द्योततां अपीति निश्चितं यत्र यस्यां सार्वभौमपदव्यां[2] गिरं चुम्बतां वाणीं शृण्वतां[3] पुरुषाणां एवं विधः श्रुतिसमाहारोपि भारोपमः स्यात्, एवमिति किं चैत्रोन्मीलितकेलिकोकिल-कुहूकारावताराञ्चितश्लाघासिञ्चितपञ्चमश्रुतिसमाहारः चैत्रे वसन्ते उन्मीलितकेलयो ये कोकिलाः[4] तेषां ये कुहूकारावताराः तैः अञ्चिता प्राप्ता या श्लाघा स्तुतिः तया सिंचितो[5] वर्द्धितो यः पञ्चमश्रुतिसमाहारः सोपि भाररूपो[6] भवति । किम्भूतां गिरं महाकविशतैः स्फीतां प्रौढीकृतां किम्भूतैर्महाकविशतैः आज्ञाविहितैः महाप्रबन्धे आर्यादिच्छन्दसि यत्र गुरुर्विलोक्यते तत्र गुरुरेव यत्र लघुर्विलोक्यते तत्र लघुरेवेति या आज्ञा तया विहिताः प्रेरिताः[7] तैः ॥ १८ ॥

इदानीं भगवत्या मन्त्रगर्भितं[8] ध्यानान्तरमाह—

वाग्बीजं भुवनेश्वरीं वद वदेत्युच्चार्य वाग्वादिनीं[9]
स्वाहा वर्णविशीर्णपातकभरां ध्यायामि नित्यां गिरम् ।
वीणा[10] पुस्तकमक्षसूत्रवलयं व्याजृम्भमम्भोरुहं
बिभ्राणामरुणांशुभिः करतलैराविर्भवद्विभ्रमाम् ॥ १९ ॥

वागिति—अहं नित्यां[11] वागीश्वरीं ध्यायामि किं कृत्वा इति उच्चार्य इतीति किं वाग्बीजं ऐंकारं भुवनेश्वरीं[12] ह्रींकारं वद वद वाग्वादिनि[13] स्वाहा इति । किम्भूतां गिरं वर्णविशीर्णपातकभरां वर्णैरिति मन्त्राक्षरैर्विशीर्णो दूरीकृतः पातकभरो यया सा तथा ताम् । पुनः किम्भूतां गिरं करतलैश्चतुर्भिः पाणितलैः वीणां पुस्तकं अक्षसूत्रवलयं

१. ख. ग. सञ्चित । २. ग. सारस्वतसार्वभौमपदव्यां । ३. ख. शृणुतां ।
४. ग. पुंस्कोकिलाः । ५. ख. ग. सञ्चितो । ६. ख. भारोपमो ।
७. ख. विहितैः प्रेरितैः । ८. ग. मन्त्रान्तर्गर्भितं । ९. ख. वाग्वादिनि । १०. ख. वीणां ।
११. ख. नित्यां गिरं । १२. 'मायाबीजं' इति 'ख' प्रतौ विशेषः । १३. ख. वाग्वादिनि ।

अम्भोरुहं च बिभ्राणां दक्षिणाधःकरक्रमेणात्र मन्तव्यम् । अधोदक्षिणकरेण वीणां वामाधः करेण पुस्तकं दक्षिणोर्द्ध्वकरेण अक्षसूत्रं वामोर्ध्वकरेणाम्भोरुहं दधानां, किम्भूतमम्भोरुहं व्याजृम्भं उत्फुल्लमित्यर्थः । किं विशिष्टैः करतलैः अरुणांशुभिः रक्तकान्तिभिः[1] पुनः किम्भूतां गिरं आविर्भवद्विभ्रमां अविर्भवन् प्रकटीभवन् विभ्रमो विलासो यस्याः सा तथा ताम् । सुकरतया मन्त्रो यथा ऐं ह्रीं वद वद वाग्वादिनी[2] स्वाहा ॥ १९ ॥

इदानीं भगवत्या जपध्यानतः[3] फलमाह—

तन्मातः कृपया तरङ्गयतरां विद्याधिपत्यं मयि
ज्योत्स्नासौरभचौरकीर्तिकवितासेव्यैकसिंहासनम् ।
कालाज्ञादि[4]शिवावसानभवन[5]प्राग्भारकुक्षिंभरि-
प्रज्ञाम्भःपरिपाकपीवरपराऽनन्दप्रतिष्ठास्पदम् ॥ २० ॥

तन्मातरिति—हे मातः तत् तस्मात् कारणात् त्वज्जपध्यानतः मयि विषये विद्यानामाधिपत्यं[6] तरङ्गयतरां अत्यर्थं प्रकटय[7] कया कृपया अनुकम्पया किम्भूतं विद्याधिपत्यं ज्योत्स्नासौरभचौरकीर्त्तिकवितासेव्यैकसिंहासनं ज्योत्स्ना चन्द्रिका तस्याः यत्सौरभं मनोहरत्त्वं तस्य या चौरवत् कीर्तिरेवंविधा या कविता एतावता चन्द्रिकासौन्दर्यसदृशा[8] या कविता तया सेव्यं एकसिंहासनं यस्य तत् तथा[9] पुनः किम्भूतं विद्याधिपत्यं कालाज्ञादिशिवावसानभवनप्राग्भारकुक्षिंभरिप्रज्ञाम्भःपरिपाकपीवरपराऽनन्दप्रतिष्ठास्पदं[10] कालस्य ईश्वरस्य यदाज्ञाप्रारम्भः अभ्यासः ज्ञानं चेति आदिशब्देनोपलभ्यते, शिवावसानमिति तत्त्वज्ञानप्राप्तिः कालाज्ञादि तदेव शिवावसानं तस्य यद्भवनं उत्पत्तिः[11] तस्य यः प्राग्भारः पूर्वस्थितिः तस्य यत् कुक्षिंभरिप्रज्ञाम्भः प्रज्ञाबहुलतरं ज्ञानोदकं तस्य यः परिपाकः परिणामः तस्य यः पीवरपराऽनन्दः पीनपराऽनन्दः तस्य या प्रतिष्ठा संस्था तस्याः आस्पदं स्थानम् ॥ २० ॥

---

१. 'ख' पुस्तके अयं न । २. ख. वाग्वादिनि । ३. ख. ग. मन्त्रजपध्यानतः ।
४. ख. कालाग्न्यादि । ५. ख. भुवन । ६. ख. ग. विद्यानामधिपतित्वं ।
७. ग. घटय । ८. ख. ग. सदृशी । ९. यद्वा कीर्तिकवितयोर्द्वन्द्वः इति 'ग' पुस्तके विशेषः । १०. ख. कालाग्निः प्रलयरुद्रः स आदिर्यस्य तथा शिवः अवसानं विरामस्थानं यस्य भुवनस्य अनेन शिवस्य पञ्चकृत्यता कथिता एवंविधस्य भुवनस्य यः प्राग्भारः भरणरूपा या प्राक्स्थितिः विष्णुधर्मः पालनतेत्यर्थः तस्य प्राग्भर्तुः विष्णोर्या कुक्षिंभरिता प्रज्ञा सैवाम्भः उदकं तस्य यः परिपाकः परिणामावस्था तस्य यः पीवरानन्दः तस्य या प्रतिष्ठा तस्याः आस्पदं स्थानम् । ११. ग. उपपत्तिः ।

इदानीं भगवत्या बीजस्थानान्तरफलञ्च[1] वृत्तयुगलेनाह—

लेखाभिस्तुहिनद्युतेरिव कृतं वाग्बीजमुच्चैः स्फुरत्
तारकारकरालबिन्दुपरितो मायात्रिधा वेष्टितम् ।
पूर्णेन्दोरुदरे तदेतदखिलं पीयूषगौरात्तरं
स्रोतः संभ्रमसंभृतं स्मरति यो जिह्वाञ्चले निश्चलः ॥ २१ ॥

तस्य त्वत्करुणाकटाक्षकणिकासंक्रान्तिमात्रादपि
स्वान्ते शान्तिमुपैति दीर्घजडता जाग्रद्विकाराग्रणीः ।
तस्मादाशु जगत्त्रयादद्भुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदं[2]
सौरभ्यं परमभ्युदेति वदनाम्भोजे गिरां विभ्रमैः ॥ २२ ॥

लेखेति—हे मातः यः पुमान् वाग्बीजं ऐंकारं तुहिनद्युतेश्चन्द्रमसो लेखाभिः कृतमिव पुनः उच्चैरुपरि स्फुरत् यः तारायाः आकारवत् करालो मनोहरो यो बिन्दुः अनुस्वारो यस्य तत् तथा ततः परितो मायात्रिधावेष्टितं परितः समन्ताद्भावेन मायया मायाबीजेन लोमप्रतिलोमतो हि त्रिधा त्रिप्रकारं[3] वेष्टितं ततस्तदेतत् अखिलं समग्रं पूर्णेन्दोरुदरे सम्पूर्णचन्द्रमध्ये[4] पीयूषगौरात्तरं अमृतधवलवर्णं अपरं स्रोतःसंभ्रमसंभृतं स्रोतः प्रवाहः तस्य संभ्रमो विलासः तेन संभृतं व्याप्तं स्तिमितो निश्चलः सन् जिह्वाञ्चले रसनाग्रे स्मरति ध्यायति तस्य पुरुषस्य अपि निश्चितं स्वान्ते मानसे दीर्घजडता शान्तिं नाशं उपैति कस्मात् तस्य त्वत्करुणाकटाक्षकणिकासंक्रांतिमात्रात् त्वत्करुणा-कटाक्षवीक्षणमात्रात्, किम्भूता दीर्घजडता जाग्रद्विकाराग्रणीः जाग्रतोऽपि उद्बोधरूपा ये विकाराः विकृतयः[5] तेषां मध्ये अग्रणीः अग्रेसरः इत्यर्थः । तस्मादित्युपसंहारे । आशु शीघ्रं वदनाम्भोजे मुखकमले परं उत्कृष्टं सौरभ्यं[6] अभ्युदेति उदयं प्राप्नोति । किं[7] गिरां विभ्रमैः वाचां विलासैः किम्भूतं सौरभ्यं जगत्त्रयादद्भुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदं जगत्त्रयस्य अद्भुतरसः तस्य अद्वैतप्रतीतिः अद्वितीयज्ञानं तां[8] प्रददातीति तत् तथा अथवा जगत्त्रयादद्भुतरसाद्वैतप्रतीतिप्रदैरिति वा पाठान्तरे गिरां विभ्रमैरित्यस्य पदस्य विशेषणं[9] भवितुमर्हति ॥ २२ ॥

---

१. ख. बीजस्थानं तत् फलं च । २. ग. प्रदैः । ३. ख. त्रिःप्रकारेण ।
४. ख. ग. पूर्णचन्द्रमध्ये । ५. अनाचाराः, इति 'ग' प्रतौ विशेषः ।
६. सुन्दरत्वमिति ग. प्रतौ विशेषः । ७. ख. ग. कैः । ८. ख. तत् । ९. ख. विशेषणी ।

अथेदानीं भगवत्या वृत्तद्वयेन मातृकामयं शरीरावयवमाह[1]—

आद्यो मौलिरथापरो मुखमिई नेत्रे च कर्णावुऊ
नासा वंशपुटे ऋॠ तदनुजौ वर्णौ कपोलद्वयम् ।
दन्ताश्चोर्ध्वमधस्तथौष्ठयुगलं सन्ध्यक्षराणि क्रमात्
जिह्वामूलमुदग्रबिन्दुरपि च ग्रीवा विसर्गी स्वरः ॥ २३ ॥

कादिर्दक्षिणतो भुजस्तादितरो वर्गश्च[2] वामो भुज-
ष्टादिस्तादिरनुक्रमेण चरणौ कुक्षिद्वयं ते पफौ ।
वंशः पृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये बादित्रयं धातवो
याद्याः[3] सप्तसमीरणश्च सपरः क्षः क्रोध इत्यम्बिके ॥ २४ ॥

आद्य इति—हे अम्बिके ! ते तव आद्यः अकारः मौलिः शिरः अथ अपर : आकारः मुखम् । च पुनः इई नेत्रे नेत्रद्वयम् । उऊ कर्णौ ऋॠ नासावंशपुटे इति नासावंशपुट-द्वयम् । तदनुजौ तयोरनुजौ[4] ऌकारॡकारौ[5] कपोलद्वयम् । ऊर्ध्वमथो दन्तास्त-थोर्ध्वाधोष्ठयुगलं क्रमात् सन्ध्यक्षराणि एकारादीनि एऐ ऊर्ध्वाधो दन्ताः उऊ[6] ऊर्ध्वाधः ओष्ठयुगलं तदग्रबिन्दुः[7] अंकारः जिह्वामूलम् । अपरः विसर्गो स्वरः[8] तव ग्रीवा ॥ २३ ॥

कादिः क ख ग घ ङ इत्येवं रूपं तव दक्षिणो[9] भुजः दक्षिणत इत्यत्र तसः[10] सार्वविभक्तिकत्वात् प्रथमायां निर्देशः । तदितरो वर्गः चवर्गः च छ ज झ ञ इत्येवं-रूपो वामो भुजः, टादिष्टवर्गः तादिस्तवर्गः इत्यनुक्रमेण ते तव दक्षिणवामचरणौ ट ठ ड ढ ण इत्येवंरूपो दक्षिणः चरणः त थ द ध न इत्येवंरूपो वामचरणः । हे मातः ते तव कुक्षिद्वयं पफौ पकारफकारौ दक्षिणकुक्षिः पकारः वामकुक्षिः फकारः । अथ बादित्रयं ब भ म इतित्रयं पृष्ठभवो वंशः नाभिहृदये वंशः पृष्ठभवः बकारः नाभिर्भकारः हृदयं मकारः, धातवो याद्याः सप्त याद्या इति य र ल व श ष स इत्येवंरूपास्तव सप्तधातवो भवन्ति । त्वगसृङ्[11]मांसमेदअस्थिमज्जाशुक्राणि । आधारलिङ्गनाभिहृदयमुखभ्रूमध्यशिरः इति[12] सप्त, च पुनः सपरो हकारः समीरणः प्राणः तालुः[13] । हे जननि क्षः क्षकारः तव क्रोधो ब्रह्मरन्ध्रमिति ॥ २४ ॥

---

१. ख. शरीरमाह । २. ख. वर्गस्तु । ३. याद्यः । ४. ख. तयोरनुजातौ । ५. ख. ऌॡकारौ । ६. ख. ओऔ । ७. ग. उदग्रबिन्दुः । ८. ख. अः । ९. ख. दक्षिणतो । १०. ख. तस् । ११. क. रस । १२. ख. याद्याः । १३. ख. तालु च ।

अथ[1] भगवत्या वर्णमयशरीरस्य भजनफलमाह[2]—

एवं वर्णमयं वपुस्तव शिवे लोकत्रय[3]व्यापकं
यो ऽहंभावनया भजत्यवयवेष्वारोपितैरक्षरैः ।
मूर्तीभूय दिवावसान[4]कमलाकारैः शिरः शायिभि-[5]
स्तं विद्याः समुपासते करतलैर्दृष्टिप्रसादोत्सुकाः ॥ २५ ॥

एवमिति–हे शिवे ! एवं अमुना प्रकारेण यः पुमान् तव वर्णमयं वपुर्लोकत्रयव्यापकं भजति आश्रयति कया कृत्वा अवयवेषु शरीरावयवेषु आरोपितैः अक्षरैः अहंभावनया अहमेव वर्णमय इति मत्वा तं पुरुषं विद्याश्चतुर्दशविद्याः मूर्तीभूय मूर्तिरूपा भूत्वा करतलैः समुपासते, किम्भूताः विद्याः दृष्टिप्रसादोत्सुकाः इयमस्मासु[6] दृष्ट्या प्रसादं करिष्यतीत्युत्सुकाः । शिरःशायिभिः शिरःसन्निविष्टैः, पुनः किम्भूतैः दिवावसानकमलाकारैः दिवावसाने सायं समये कमलाकारा इव आकाराः आकृतयो येषां ते तथा तैः मुकुलाकृतैरित्यर्थः[7] ॥ २५ ॥

अथ[8] भगवत्या ध्याने[9] फलान्तरमाह–

ये जानन्ति जपन्ति सन्ततमभिध्यायन्ति गायन्ति वा
तेषामास्यमुपास्यते मृदुपदन्यासैर्विलासैर्गिराम् ।
किं च क्रीडति भूर्भुवःस्वरभितः श्रीचन्दनस्यन्दिनी
कीर्त्तिः कार्त्तिकरात्रिकैरवसभासौभाग्यशोभाकरी ॥२६॥

य इति–हे जननि ये पुरुषाः एवंविधं ते तव वर्णमयं वपुर्जानन्ति अथवा यजन्ति[10] सततमभिध्यायन्ति वा अथवा गायन्ति वा तेषामास्यं तेषां पुरुषाणां आस्यं मुखं गिरां विलासैः वाचां विलसनैः उपास्यते किम्भूतैः गिरां विलासैः मृदुपदन्यासैः कोमलपदविरचनैः न केवलं तदेव भवति किं च तेषां पुरुषाणां भूर्भुवः स्वरभितः भूर्लोक[11]मभिव्याप्य कीर्तिः क्रीडति किम्भूता कीर्तिः कार्तिकरात्रिकैरवसभासौभाग्यशोभाकरी कार्तिकस्य रात्रौ यः कैरवसमुदायः तस्य सौभाग्यशोभा सुन्दरकान्तिः तां करोतीति तथा, पुनः किम्भूता श्रीचन्दनस्यन्दिनी श्रीचन्दनं अमृतं इव स्यंदनमिति[12] ॥ २६ ॥

---

१. ख. इति । २ ख. भजनमाह । ३. ग. लोकत्रये ।
४. ग. दिनावसान । ५. ग. स्थायिभिः । ६. ख. अयमस्मासु ।
७. ख. मुकुलाकृतिभिरित्यर्थः । ८. ख. इदानीं । ९. ख. ध्यानेन । १०. ख. जपन्ति ।
११. ख. भूर्लोकादि; ग. भूर्लोकं भुवर्लोकं स्वर्लोकमभिव्याप्य । १२. ख. स्यंदत इति; ग. श्रीचन्दनममृतद्रवं स्यन्दते स्रवति सा तथा ।

इदानीं[1] विशिष्टवर्णमयवपु[2]र्ध्यानान्तरेण फलान्तरमाह—

मायाबीजविदर्भितं पुनरिदं श्रीकूर्मचक्रोदितं
दीपाम्नायविदो जपन्ति खलु ये तेषां नरेन्द्राः सदा ।
सेवन्ते चरणौ किरीटवलभीविश्रान्तरत्नाङ्कुर-
ज्योत्स्नामेदुरमेदिनीतलरजोमिश्राङ्गरागश्रियः ॥ २७ ॥

मायेति–हे जननि ! पुनरिदं तव वर्णमयं वपुः मायाबीजविदर्भितं मायाबीजेन गुम्फितं तत्[3] पुनश्च श्रीकूर्मचक्रोदितं[4] ये जनाः दीपाम्नायविदः सततं[5] जपन्ति खलु निश्चयेन तेषां पुरुषाणां सदा नित्यं नरेन्द्राः राजानः चरणौ सेवन्ते, किम्भूताः नरेन्द्राः किरीटवलभीविश्रान्तरत्नाङ्कुरज्योत्स्नामेदुरमेदिनीतलरजोमिश्राङ्गरागश्रियः किरीटानां मुकुटानां वलभ्यः किञ्चिदुच्चैरंकुराकृतयः तत्र विश्रान्तानि निविष्टानि[6] यानि रत्नानि तेषां अंकुराः ज्योत्स्नाकिरणकान्तिः तया मेदुरं सुस्निग्धं दीप्तिसंयुक्तं यत् मेदिनीतलरजः महीतलरेणुः तेन मिश्रा अङ्गरागश्रीर्येषां ते तथा । दीपाम्नाय इति अष्टकोष्ठानालिख्य सृष्टिक्रमेणैव कोष्ठे कोष्ठे[7] स्वराणां अकारादीनां द्वन्द्वमालिख्य[8] ततः कादीन् समुदायरूपान् वर्णानालिख्य च यत्र कोष्ठे स्थानाधिपतेर्ग्रामाधिष्ठातृ-[9] देवतायाः नाम्नः प्रथमाक्षरं यत्र भवति तत्र तत्र देशे भूत्वा मायाबीजविदर्भितं माया-बीजेन ह्रींकारेण[10] गुम्फितं मातृकामयं[11] वपुः शरीरं जपन्ति ते दीपाम्नायविद उच्यन्ते, तथा चोक्तम्—

द्वन्द्वं स्वराणां विलिखेच्च पूर्वं, कादींस्तथा वर्णसमूहरूपान् ।
स्थानाधिपस्याक्षरमस्ति यत्र, तं दीपदेशं मुनयो वदन्ति ॥

इदानीं भगवत्याः पुनर्वर्णमयशरीरस्य प्रकारान्तरतो ध्यानान्तरेण फलान्तरमाह—

श्रीबीजं सकलाक्षरादिषु पुनः क्रोधाक्षरान्ते भवे-
द्वं यो भजते च ते[12] तनुमिमां तस्याऽग्रतो जाग्रती ।

---

१. ख. अथ । २. ख. वपुषो । ३. ख. सत् । ४. ख. ग. श्रीकूर्मचक्रे उदितं ।
५. ख. सन्तो । ६. ख. सन्निविष्टानि । ७. ख. कोष्ठेषु । ८. ख. स्वरानकारादीनालिख्य ।
९. ख. ग. ग्रामाधिष्ठानदेवतायाः । १०. ख. विदर्भक्रमेण युतं । ११. ख. मायामयं ।
१२. ख. ग. भजतेऽम्ब ! ते ।

लक्ष्मीः सिन्धुरदानगन्धलहरीलोभान्धपुष्पन्धय-
श्रेणीबन्धुरशृङ्खलानियमितेवापैति नैव क्वचित् ॥ २८ ॥

श्रीबीजमिति—हे अम्ब ! सकलाक्षराणां अकारादीनां वर्णानामादिषु प्रथमं श्रीबीजं श्रीं इति रूपं पुनश्च क्रोधाक्षरान्ते[1] श्रीबीजं भवेत् एवं अमुना प्रकारेण यः पुमान् ते तव इमां तनुं श्रीं अं श्रीं आं श्रीं इं श्रीं ईं श्रीं इति क्षपर्यन्तं[2] श्रीबीजेन गुम्फितं मातृकामयं शरीरं यो भजते तस्य पुरुषस्याग्रतः लक्ष्मीः पद्मालया जाग्रती विनिद्रा सती क्वचिदपि अन्यप्रदेशे[3] नैवापयाति[4] । किम्भूता लक्ष्मीः उत्प्रेक्ष्यते[5] सिन्धुरदानगन्ध-लहरी···नियमिता इव[6] परिमलस्फुरणं तत्र यो लोभो ग्रहणमतिः[7] तेन अन्धाः व्याकुलाः विलोला या पुष्पन्धयश्रेणी भ्रमरपंक्तिः सैव बन्धुरा मनोहरा शृङ्खला तया नियमिता इव बद्धा इव[8] ॥ २८ ॥

अथेदानीं भगवत्या ध्यानान्तरेण पुनश्च फलान्तरमाह—

यस्त्वां विद्रुमपल्लवद्रवमयीं लेखामिवालोहिता-
मात्मानं परितः स्फुरत्त्रिवलयां मायामभिध्यायति ।
तस्मै निन्दितचन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारस्रजो
निश्वासभ्रमबाष्पदाहगहना मूर्च्छन्ति तास्ताः स्त्रियः ॥२९॥

य इति—हे जननि ! आत्मानं परितः आत्मनः समीपे त्वां विद्रुमपल्लवद्रवमयीं प्रवालाङ्कुरप्रसरणस्वरूपां[9] आसमन्तात् लोहितां रक्तां लेखामिव स्फुरत्त्रिवलयां मायां ह्रींकाररूपां उल्लसत्त्रिकोणगतां[10] अभिध्यायति तस्मै तस्य पुरुषस्यार्थे तास्ताः सकलगुणलक्षणसम्पन्नाः स्त्रियो मूर्च्छन्ति मोहं प्राप्नुवन्ति, किम्भूताः स्त्रियः

---

१. ख. ग. क्षकारान्ते । २. श्रीं अं श्रीं आं श्रीं इं श्रीं ईं श्रीं उं श्रीं ऊं श्रीं ऋं श्रीं ॠं श्रीं ऌं श्रीं ॡं श्रीं एं श्रीं ऐं श्रीं ओं श्रीं औं श्रीं अं श्रीं अः श्रीं कं श्रीं खं श्रीं गं श्रीं घं श्रीं ङं श्रीं चं श्रीं छं श्रीं जं श्रीं झं श्रीं ञं श्रीं टं श्रीं ठं श्रीं डं श्रीं ढं श्रीं णं श्रीं तं श्रीं थं श्रीं दं श्रीं धं श्रीं नं श्रीं पं श्रीं फं श्रीं बं श्रीं भं श्रीं मं श्रीं यं श्रीं रं श्रीं लं श्रीं वं श्रीं शं श्रीं षं श्रीं सं श्रीं हं श्रीं ळँ श्रीं क्षं श्रीं । ३. ख. प्रदेशं । ४. ख. नैवापैति ।
५. ख. उत्प्रेक्षते । ६. ख. सिन्धुराणां गजेन्द्राणां यद्दानं मदं तस्य या गन्धलहरी ।
७. ख. ग्रहणमिति । ८. यथा अन्योऽपि कश्चित् बद्धः सन् नान्यत्र अपैति तद्वत् इति 'ग' पुस्तके विशेषः । ९. यद्वा प्रवालाङ्कुराणां द्रवो रसः तन्निर्मितमिति 'ग' पुस्तके विशेषः । १०. ख. त्रिकोणमध्यगां यः ।

निन्दितचन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारस्रजः[१] निन्दिताः चन्दनेन्दुकदलीकान्तारहारस्रजो याभिस्ताः तथा । अपरं किम्भूताः स्त्रियः निश्वासभ्रमबाष्पदाहगहनाः निश्वासभ्रमेण निश्वासचलनेन मोचनेन यो बाष्पः ऊष्मा स एव दाहः तेन गहनाः व्याकुलाः[२] ॥२६॥

इदानीं भगवत्याः पुनर्ध्यानान्तरेण फलान्तरमाह—

मातः श्रीभगमालिनीत्यभिधया दिव्यागमोत्तंसितां
त्वामानन्दमयीमनुस्मरति यस्तं नाम वामभ्रुवः ।
बाहुस्वस्तिकपीडितैःस्तनतटैर्दैन्याञ्चितैश्चाटुभि-
र्नीरन्ध्रैः पुलकांकुलै[३]र्मुकुलितैर्ध्यायन्ति नेत्राञ्चलैः ॥ ३० ॥

मातरिति—नाम इति सम्बोधने[४] हे मातः ! यः पुमान् भगमालिनी[५]त्यभिधया ऐं ह्रीं आनन्दमयी[६] भगमालिनि स्वाहेति त्वां दिव्यागमोत्तंसितां दिव्यागमे[७] उत्तंसितां शेखरीकृतां त्वां आनन्दमयीमानन्दस्वरूपां अनुस्मरति अनुचिन्तयति तं पुरुषं वामभ्रुवो वरवर्णिन्यः ध्यायन्ति, कैः स्तनतटैः किम्भूतैः बाहुस्वस्तिकपीडितैः बाहुस्व-स्तिकेन दोर्द्दण्डमण्डलेन[८] पीडितैः, पुनः किम्भूतैः स्तनतटैः पुलकांकुरैः,[९] अपरं कैः चाटुभिः प्रियवचनैः किम्भूतैश्चाटुभिः दैन्याञ्चितैः अहं तव दासी भवामीति दैन्यसहितैः, पुनः कैः नेत्राञ्चलैः[१०] नियमितैः तदवलोकनादि[ना]न्यनिरीक्षणे[११] विषयीकृतैः[१२] तदवलोकनतत्परैरित्यर्थः ॥ ३० ॥

अथ पुनरिदानीं ध्यानान्तरेण फलान्तरमाह वृत्तयुगलेन[१३]—

यस्त्वां ध्यायति रागसागरतरत्सिन्दूरनौकान्तर-
स्वैरोज्जागरपद्मरागनलिनीपुष्पासनाध्यासिनीम् ।
बालादित्यसपत्नरत्नरुचिर[१४]प्रत्यङ्गभूषारुचि-
श्रेणीसम्मिलिताङ्ग[१५]रागवसनास्तस्य स्मरन्त्यङ्गनाः ॥३१॥

---

१. चन्दनश्च इन्दुश्च कदलीकान्तारं कदलीवनञ्च हारस्रजश्च, इति 'ग' प्रतौ विशेषः ।

२. यद् वा निश्वासानां भ्रम आवर्तः बाष्पान्यश्रूणि दाहोन्तर्बहिस्सन्तापश्च तैर्गहनाः व्याकुलाः इति 'ग' प्रतौ विशेषः । ३. ख. ग. पुलकांकुरैः । ४. ख. प्रसिद्धौ ।

५. ख. श्रीभगमालिनी । ६. ख. आनन्दमयि । ७. ग. शैवागमे रुद्रयामलादौ ।

८. ख. स्वस्तिकाकृतिबाहुमण्डलेन । ९. ख. रोमाञ्चितैः । १०. ग. नयनप्रान्तैः कटाक्षैरित्यर्थः किम्भूतैः नीरंध्रैः निश्चलैः चलनक्रियारहितैः पुनः ।

११. ख. ग. तदवलोकनादन्यनिरीक्षणे । १२. ख. निर्विषयीकृतैः; ग. अविषयीकृतैः ।

१३. 'ख' पुस्तके पद्य इमे पार्थक्येन व्याख्याते स्तः । १४. ख. रचित ।

१५. ख. ग. संवलिताङ्ग ।

कर्पूरं कुमुदाकरं कमलिनीपत्रं कलाकौशलं
कूजत्कोकिलकामिनीकुलकुहूकल्लोलकोलाहलम् ।
शङ्कन्ते प्रलयानलस्मरमहापस्मारवेगातुराः
कम्पन्ते निपतन्ति हन्त न गिरं मुञ्चन्ति शोचन्ति च ॥३२॥

य इति–हे अम्ब ! यः पुमान् त्वां रागसागरतरत्सिन्दूरनौकान्तरस्वैरोज्जागरपद्म-रागनलिनीपुष्पासनाध्यासिनीं रागसागरे शोणसमुद्रे तरन्ती या सिन्दूरनौका तस्याः अन्तरे मध्ये स्वैरं स्वेच्छया उज्जागरं विकसितं यत्पद्मरागसदृशं नलिनीपुष्पं कमलिनीकुसुमं[1] तदेवासनं अध्यास्ते इति तथा तां एवंविधां त्वां यो ध्यायति तस्य पुरुषस्य अङ्गनाः सुन्दर्यः स्मरन्त्यः सत्यः[2] कर्पूरं शङ्कन्ते[3] न केवलं कर्पूरमेव निन्दन्ति किं च कुमुदाकरं कुमुदश्रेणीं किं तदेव कमलिनीपत्रं पुनः किं कलाकौशलं कलानां नैपुण्यं न केवलमिदमेव किं च कूजत्कोकिलकामिनीकुलकुहूकल्लोलकोलाहलं कूजत् अव्यक्तशब्दायमानं यत्कोकिलकामिनीकुलं कलकण्ठीवृन्दं तस्य यः कुहूकल्लोल-कोलाहलः कुहूशब्दोच्चारेण[4] भवत्पुनः पुनः पुनारावः तं अङ्गनाः पुनः किं कुर्वन्ति प्रलयानलस्मरमहापस्मारवेगाकुलाः[5] कम्पन्ते प्रलयकालीनो यः अनलो वैश्वानरः[6] स एव स्मरः तस्य यो महापस्मारसदृशो वेगः तेन आतुराः पीडिताः सत्यो वेपथुं कुर्वन्ति, हन्त इति खेदे निपतन्ति च निःशेषेण वसुन्धरायां पतन्ति[7] पुनर्गिरं वाचं न मुञ्चन्ति नोदीरयन्ति च पुनर्लब्धसंज्ञाः सत्यः शोचन्ति स न मिलित इति कारणात् अन्योपि योपस्मारवेगातुरो भवति सः कम्पते निपतति गिरं न मुञ्चति पुनश्च लब्धसंज्ञो भूत्वा[8] किमिदमेनो मया कृतमिति येन ममापस्मारसदृशो व्याधिरुत्पन्न इति । किम्भूताः अङ्गनाः बालादित्यसपत्नरत्नरुचिरप्रत्यङ्गभूषारुचिश्रेणीसम्मिलिताङ्गरागव-सनाः बालादित्यसपत्नानि तेनारुण[9]किरणांकुरनिकरैः बालादित्यं प्रथममुदयंकुर्वाणं रविं सपत्नयन्ति[10] द्विषन्ति इति बालादित्यसपत्नानि यानि रत्नानि तैः रचिताः निर्मिताः याः प्रत्यङ्गभूषाः सकलाङ्गनाः[11] तासां या रुचयः श्रेण्यः[12] कान्तिपंक्तयः[13] ताभिः सम्मिलितानि[14] मिश्राणि अङ्गरागवसनानि[15] यासां ताः तथा[16] ॥ ३२ ॥

---

१. ख. कमलिनीपुष्पं । २. तं प्राप्नुवन्तीत्यर्थः 'किम्भूताः अङ्गनाः बालादित्य···वसनाः···' तदग्रेऽवलोकनीयम् । ३. ख. निन्दन्ति । ४. ख. कुहूशब्दोच्चारणेन ।
५. ख. वेगातुराः । ६. ग. अग्निः । ७. ख. ग. वसुधां यान्ति । ८. ख. शोचति ।
९. ग. निजारुण । १०. ख. सपन्ति । ११. ख. ग. सकलाङ्गशोभाः । १२. ख. ग. रुचिश्रेण्यः
१३. ख. कान्तिपरम्पराः । १४. ख. ग. संवलितानि । १५. ख. ग. अङ्गरागो वसनानि च ।
१६. ख. तस्येति कर्म्मणि षष्ठी । ग. यद् वा द्वितीया प्रथमान्तत्वे देव्याः विशेषणम् ।

अथेदानीं भगवत्या मृत्युञ्जयमन्त्राराधनमाह[1]—

श्रीमृत्युञ्जयनामधेयभगवच्चैतन्यचन्द्रात्मिके
ह्रींकारि[2] प्रथमातमांसि दलय त्वं हंससंजीविनि[3] ।
जीवं प्राणविजृम्भमाणहृदयग्रन्थिस्थितं मे कुरु
त्वां सेवे निजबोधलाभरभसा स्वाहाभुजामीश्वरीम् ॥३३॥

श्रीति–हे मृत्युञ्जयनामधेयभगवच्चैतन्यचन्द्रात्मिके[4] ! हे ह्रींकारि ! हे हंससञ्जीविनि[5] अहं निजबोधलाभरभसा स्वज्ञानप्राप्तिरभसत्वेन हर्षेण त्वां स्वाहाभुजां देवानामीश्वरीम् सेवे आश्रये । अतः कारणात् त्वं[6] मे मम प्रथमातमांसि पूर्वाणि अज्ञानादीनि दलय विदारय । प्रथमातमांसीत्यत्र छन्दसि ङिश्योर्वा लोप इति शिलोपः[7] चकारोऽत्राध्याहर्त्तव्यः । च पुनः मम जीवं प्राणविजृम्भमाणहृदयग्रन्थिस्थितं प्राणवायुना विजृम्भमाण उत्फुल्लितो यो हृदयग्रन्थिः तत्र स्थितं आश्रितं कुरु ।[8] मृत्युञ्जयमनुर्यथा ॐ[9] श्रीं ह्रीं मृत्युञ्जये भगवति चैतन्यचन्द्रे हंससंजीविनि स्वाहेति ॥ ३३ ॥

इदानीं मृत्युञ्जयनाम ध्यानमाह[10]—

एवं त्वाममृतेश्वरीमनुदिनं राकानिशाकामुक-
स्वान्ते[11] सन्ततभासमानवपुषं साक्षाद्यजन्ते तु ये ।
ते मृत्योः कवलीकृतत्रिभुवनाभोगस्य मौलौ पदं
दत्त्वा भोगमहोदधौ निरवधि क्रीडन्ति तैस्तैः सुखैः ॥३४॥

---

१. ग. मनुनाऽराधनमाह । २. ग. ह्रींकार । ३. ग. संजीवनि । ४. ग. मृत्युञ्जय इति नामधेयं यस्या ईदृशी भगवतः शम्भोश्चैतन्यमेव चन्द्रिका प्रकाशकत्वात् तत्स्वरूपे ।

५. ग. हे हंससंजीवनि ! हंसं निर्गुणं ब्रह्म जीवयति जीवाऽभिधं सम्पादयति तस्याः सम्बोधनम् ।

६. यतः चन्द्रात्मिका ह्रींकारः प्रथमो यस्याः सा एवं भूता त्वं मम तमांस्यज्ञानानि, ह्रींकारि प्रथमातमांसीति पाठे शिलोपः । ७. ख. यद्वा प्रथमे आद्ये अत्र कोपि न दोषः ।

८. मृत्युञ्जयमन्त्रोद्धारपक्षे तु श्रीमृत्युञ्जये इति नामधेये भगवच्छब्दात्मिके ततश्चैतन्यचन्द्रशब्दात्मिके ह्रींकारः प्रथमादक्षरात् श्रीकारोत्तरो यत्र स्वाहाशब्दः भुजो यस्याः भक्तदत्तद्रव्यग्रहणाय तद्वाञ्छितदानाय च । ९. 'ख' पुस्तके प्रणवो नास्ति मंत्रेऽस्मिन् ।

१०. ख. ग. परमेश्वर्या मृत्युञ्जयस्य फलमाह । ११. ग. स्यान्तः संतत......

एवमिति—हे मातः ! ते पुरुषाः मृत्योः कृतान्तस्य[1] कवलीकृतत्रिभुवनाभोगस्य कवलीकृतं ग्रासीकृतं यत् त्रिभुवनं तस्य आसमन्ताद्भावेन भोगो यस्य तथा तस्य, ते के तु पुनः ये पुरुषाः एवंविधां पूर्वलक्षणां[2] अमृतेश्वरीं मोक्षदात्रीं त्वां साक्षात् अनुदिनं निरन्तरं यजन्ते,[3] किम्भूतां त्वां राकानिशाकामुकस्वान्ते सन्ततभासमानवपुषं राकायाः पूर्णिमायाः निशाकामुकस्य चन्द्रस्य[4] अन्तः मध्ये सततं भासमानं वपुः शरीरं यस्याः सा तथा ताम् ॥ ३४ ॥

इदानीं परमेश्वर्या मृत्युञ्जयमनोध्यानमाह[5]—

जाग्रद्बोधसुधामयूखनिचयैराप्लाव्य सर्वा दिशो
यस्याः कापि कला कलङ्करहिता षट्चक्रमाक्रामति ।
दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा वाचं परां तन्वती
सा नित्या भुवनेश्वरी विहरतां हंसीव मन्मानसे ॥ ३५ ॥

जाग्रदिति—सा नित्या चिद्रूपा भुवनेश्वरी ह्रींकाररूपा मन्मानसे मदीये चित्ते विहरतां क्रीडतां,[6] केव हंसीव यथा हंसी मानसे सरसि विहरति तथा सा का यस्याः भुवनेश्वर्याः कलङ्करहिता कापि कला तुरीयावस्था षट्चक्रमाक्रामति षट्चक्राणि विभिद्य सद्य उदिता भवति, किं कृत्वा सर्वाः दिशः आप्लाव्य व्याप्य कैः जाग्रद्बोधसुधामयूखनिचयैः जाग्रत् जाग्रद्रूपो यो बोधो ज्ञानं सैव सुधा तस्याः ये मयूखनिचयाः किरणसमूहाः तैः । किम्भूता कला दैन्यध्वान्तविदारणैकचतुरा दैन्यमज्ञानं तदेव ध्वान्तं गाढान्धकारं तद्विदारणे तन्निराकरणे एकचतुरा एका प्रवीणा, पुनः किम्भूता कला परां वाचं तन्वती पराभिधां वाणीं तन्वती विस्तारयन्ती ॥ ३५ ॥

इदानीं परमेश्वर्या अनन्यपरत्वेनाह—

त्वं मातापितरौ त्वमेव सुहृदस्त्वं भ्रातरस्त्वं सखा
त्वं विद्या त्वमुदारकीर्तिचरितं त्वं भाग्यमत्यद्भुतम् ।
किम्भूयः सकलं त्वमीहितमिति ज्ञात्वा कृपाकोमले
श्रीविश्वेश्वरि संप्रसीद शरणं मातः परं नास्ति मे ॥ ३६ ॥

---

१. ख. मौलौ शिरसि वामं पादं दत्वा भोगसागरे तैस्तैः धनकलत्रपुत्रहयराजमानादिभिः सुखैः निरवधि यथा भवति तथा क्रीडन्ति विलसन्ति किम्भूतस्य मृत्योः कवलीकृतत्रिभुवनाभोगस्य……… । २. ख. पूर्वोक्तलक्षणां । ३. ख. यजन्ति ।
४. ख. इन्दोः । ५. ख. मृत्युञ्जयनाम ध्यानमाह; ग. मृत्युञ्जयमनोध्यानमाह ।
६. ख. क्रीडां कुरुताम्, ग. करोतु ।

हे मातः हे कृपाकोमले, हे[1] विश्वेश्वरि संप्रसीद सम्यक् प्रसादं कुरु यतो मे मम त्वत्तः परं अन्यत् किमपि शरणं नास्ति । किंकृत्वा इति ज्ञात्वा इतीति किं हे जननि त्वं मम मातापितरौ जननीजनकौ, एव शब्दोऽत्र निर्धारणे, पुनः सुहृदो मित्राणि त्वमेव भ्रातरो बान्धवास्त्वमेव त्वमेव सखा सहचरः विद्याश्चतुर्दशविद्यास्त्वमेव तत् उदारकीर्तिचरितं प्रभूतकीर्तिप्रवर्त्तनं त्वमेव । अत्यद्भुतं प्रचुरतरं भाग्यं त्वमेव । भूयः किं पुनरपि किमुच्यते सकलमीहितं निखिलं[2] वाञ्छितं त्वमेवेति ॥ ३६ ॥

इदानीं परमसिद्धिकारकं गुरोर्नामाह—

श्रीसिद्धिनाथ इति कोऽपि युगे चतुर्थे
प्राविर्बभूव[3] करुणावरुणालयेऽस्मिन् ।
श्रीशम्भुरित्यभिधया स मयि प्रसन्नं[4]
चेतश्चकार सकलागमचक्रवर्त्ती ॥ ३७ ॥

श्रीसिद्धिनाथेति—करुणावरुणालये करुणया युक्ते वरुणालये ग्रामविशेषे नर्मदातटनिकटवर्त्तिनि श्रीसिद्धिनाथ इति कोऽपि चतुर्थे युगे कलियुगे प्रादुर्बभूव[5] किम्भूतः तस्मिन् श्रीसिद्धिनाथे अभिधया श्रीशम्भुरिति सः मयि विषये चेतो मनः प्रसन्नं चकार स्नेहं[6] कृतवान् । पुनः किम्भूतः श्रीशम्भुः सकलागमचक्रवर्त्ती सकलागमचक्रे वर्त्तत इति,[7] किम्भूते अस्मिन् श्रीसिद्धिनाथे करुणावरुणालये कृपासागरे इत्यर्थः इति तु अस्मिन्नित्यस्य[8] पदस्य विशेषणं संपनीपद्यते ॥ ३७ ॥

इदानीं[9] कृपाबाहुल्यं[10] निश्चयन्नाह—[11]

तस्याऽऽज्ञया परिणतान्वयसिद्धविद्या-
भेदास्पदैः स्तुतिपदैर्वचसां विलासैः ।
तस्मादनेन भुवनेश्वरि वेदगर्भे
सद्यः प्रसीद वदने मम सन्निधेहि ॥ ३८ ॥

---

१. ख. श्री । २. ग. सकलं । ३. ख. ग. प्रादुर्बभूव । ४. ग. मयि सुप्रसन्नं ।
५. ग. प्रकटोऽभूत् । ६. ख. सस्नेहं । ७. सकलेष्वागमेषु चक्रवर्ती सर्वतन्त्रस्वतन्त्र इति ।
८. ग. सिद्धस्यापि । ९. ख. तस्य । १०. ग. क्रियाबाहुल्यं । ११. ख. विशदयन्नाह ।

तस्येति—हे भुवनेश्वरि ! वेदगर्भे ! यतः मयि विषये सः श्रीशम्भुः चेतः सुप्रसन्नं मनश्चकार अनेनैव हेतुना सद्यः तत्कालं त्वं प्रसीद प्रसादपरा[1] भव । तस्मात्प्रसादानन्तरं मम वदने वचसां वाणीनां विलासैः सन्निधेहि सन्निधानं कुरु । किम्भूतैः विलासैः स्तुतिपदैः स्तवनानुरूपैः, पुनः किम्भूतैर्विलासैः तस्याज्ञया-परिणतान्वयसिद्धविद्याभेदास्पदैः[2] आज्ञया परिणतः परिणामं प्राप्तः योऽन्वयः आम्नायो गुरुक्रमः तत्र सिद्धविद्यानां भेदास्पदानि भेदस्थानानि तैः तथा ॥ ३८ ॥

अथेदानीं भगवत्याः प्रार्थनामाह—

येषां परं न कुलदैवतमम्बिके त्वं
तेषां गिरा मम गिरो न भवन्तु[3] मिश्राः ।
तैस्तु क्षणं परिचिते[4] विषयेऽपि वासो
मा भूत्कदाचिदपि[5] सन्ततमर्थये त्वाम् ॥ ३९ ॥

येषामिति—हे सर्वेश्वरि ! सन्ततं निरन्तरं त्वां अहं अर्थये प्रार्थयामि इतीति किं हे अम्बिके ! येषां पुरुषाणां परं अत्यर्थं त्वं न कुलदैवतमसि तेषां पुरुषाणां गिरा सह मम गिरो वाण्यः मिश्राः न भवन्तु, पुनः तैः पुरुषैः सह विषये देशे परिचितेऽपि परिचयं प्राप्तेऽपि अभ्यासं प्राप्तेऽपि पितृपितामहप्रपितामहादिनिवासावनौ[6] क्षणं क्षणमात्रं कदाचिदपि वासो माभूत् मास्तु ॥ ३९ ॥

इदानीं गुरुमभ्यर्थयन्नाह—[7]

श्रीशम्भुनाथ ! करुणाकर ! सिद्धिनाथ !
श्रीसिद्धिनाथ ! करुणाकर ! शम्भुनाथ !
सर्वापराधमलिनेऽपि मयि प्रसन्नं[8]
चेतः कुरुष्व शरणं मम नान्यदस्ति ॥ ४० ॥

श्रीशम्भुनाथेति—हे श्रीशम्भुनाथ ! हे करुणाकर सिद्धिनाथ ! हे श्रीसिद्धिनाथ करुणाकर शम्भुनाथ ! सर्वापराधमलिनेऽपि निखिलापराधकलुषीकृतेऽपि मयि विषये चेतो मनः प्रसन्नं सदयं कुरुष्व, यतः कारणात् मम किञ्चिदन्यदपि शरणं नास्ति ॥ ४० ॥

---

१. ख. प्रसन्ना भव । २. ख. तस्य श्रीशम्भोः । ३. ग. भवन्ति । ४. ग. परिचितिर्विषये ।
५. ख. कदाचिदिति । ६. ख. पितृपितामहाद्यावासेऽवनौ । ७. ख. गुरुवरं प्रार्थयन्नाह ।
८. ग. मलिने मयि सुप्रसन्नं ।

इदानीं परमेश्वर्या दयालुत्वमाह–

इत्थं प्रतिक्षणमुदश्रुविलोचनस्य
पृथ्वीधरस्य पुरतः स्फुटमाविरासीत् ।
दत्त्वा वरं भगवती हृदयं प्रविष्टा
शास्त्रैः स्वयं नवनवैश्च मुखेऽवतीर्णा ॥ ४१ ॥

इत्थमिति—इत्थं अनेन प्रकारेण गुरुस्मरणादितः[1] प्रतिक्षणं क्षणं क्षणं प्रति उदश्रुविलोचनस्य अत्यर्थं निर्यदश्रुलोचनस्य[2] पृथ्वीधरस्य पुरतोऽग्रे स्फुटं प्रकटं यथा भवति तथा भगवती भुवनेश्वरी आविरासीत् प्रकटीबभूव । किम्भूता वरं दत्वा हृदयं प्रविष्टा, पुनः किम्भूता च पुनः भगवती स्वयं स्वयमेव नवनवैर्गद्यपद्यादिमयैः शास्त्रैः कृत्वा मुखेऽवतीर्णा विस्तारं प्राप्ता ॥ ४१ ॥

इदानीं स्तोत्रविषये प्रसादमाह–

वाक्सिद्धिमेवमतुलामवलोक्य नाथः
श्रीशम्भुरस्य महतीमपि[3] तां प्रतिष्ठाम् ।
स्वस्मिन् पदे त्रिभुवनागमवन्द्यविद्या-
सिंहासनैकरुचिरे सुचिरं चकार ॥ ४२ ॥

वागिति—अस्मिन् लोके नाथः श्रीशम्भुः अस्य स्तोत्रस्य वाक्सिद्धिं अतुलां बहुलां मे वाचं अवलोक्य अस्मिन्[4] स्थाने चिरं यथा भवति तथा तां पाठमात्रतो[5] हि सकलसिद्धिविधायिनीं महीयसीं महतीं प्रतिष्ठां चकार । किम्भूते स्वस्मिन्[6] पदे त्रिभुवनागमवन्द्यविद्यासिंहासनैकरुचिरे त्रिभुवने यानि आगमशास्त्राणि तैर्वन्द्यं स्तुत्यं विद्यासिंहासनं यत् तेनैकरुचिरं सुन्दरं तस्मिन् तथेति ॥ ४२ ॥

इदानीं मन्त्रजपसमये विधानमाह–

भूमौ शय्या वचसि नियमः कामिनीभ्यो निवृत्तिः
प्रातर्जातीविटप[7]समिधा दन्तजिह्वाविशुद्धिः ।

---

१. ख. ग. गुरुस्मरणादिना । २. ग. अश्रुपूर्णविलोचनस्य । ३. ख. महतीमिह ।
४. ख. स्वस्मिन् । ५. ख. ग. पठनमात्रतो । ६. ख. तस्मिन् । ७. ख. विटपि ।

पत्रावल्यां मधुरमशनं ब्रह्मवृक्षस्य पुष्पैः
पूजाहोमौ कुसुमवसनालेपनान्युज्ज्वलानि ॥ ४३ ॥

भूमाविति—भूमौ शय्या भूमिशयनं वचसि नियमो वाक्संयमः कामिनीभ्यो निवृत्तिः स्त्रीभ्यो निवर्त्तनं, तथा प्रातः प्रभाते जातं विटपसमिधा जातीवृक्षशाखया दन्तजिह्वाविशुद्धिः दन्तानां जिह्वायाश्च विशोधनं निर्मलीकरणं,[1] पत्रावली प्रसिद्धा तस्यां मधुरमशनं उदनादि[2] तथा ब्रह्मवृक्षस्य पुष्पैः पलाशस्य पुष्पैः कुसुमैः पूजाहोमौ कार्यौ। तथा कुसुमवसनालेपनानि उज्ज्वलानि[3] ॥ ४३ ॥

इदानीं गुरुस्मरणतो यद्भवति[4] तदाह—

इत्थं मासत्रयमविकलं यो व्रतस्थः प्रभाते
मध्याह्ने वाऽस्तमनसमये[5] कीर्त्तयेदेकचित्तः।
तस्योल्लासैः सकलभुवनाश्चर्यभूतैः प्रभूतैः
विद्याः सर्वाः सपदि वदने शम्भुनाथप्रसादात् ॥ ४४ ॥

इत्थमिति—इत्थं अमुना प्रकारेण यः पुमान् व्रतस्थः सन् मासत्रयं अविकलं निरन्तरं प्रभाते प्रातः काले अथवा मध्याह्ने मध्यंदिने अथवा अस्तमनसमये[6] सायं समये एकचित्तः एकमनाभूत्वा श्रीगुरुं कीर्त्तयेत्[7] पठेत् चिन्तयेत् तस्य पुरुषस्य सपदि तत्कालं वदने मुखे सर्वाः सकलाः विद्याः उल्लासैः गद्यपद्यादिरूपैः[8] स्फुरन्ति, कस्मात् शम्भुनाथप्रसादात् किम्भूतैरुल्लासैः प्रभूतैः सद्यः स्फुरद्रूपैः पुनः किम्भूतैः सकलभुवनाश्चर्यभूतैः[9] गुरुस्मरणतः त्रिभुवनविषये किं न प्राप्यते अपितु सकलमेव प्राप्यत इत्यर्थः ॥ ४४ ॥

इदानीं यथार्थ-प्रभावं स्तोत्रमहिमानमाह—

व्रतेन हीनोऽप्यनवाप्तमंत्रः
श्रद्धाविशुद्धोऽनुदिनं पठेद्यः[10]।
तस्यापि वर्षादनवद्यसद्यः-
कवित्वहृद्याः प्रभवन्ति विद्याः ॥४५॥

---

१. ग. नैर्मल्यं। २. ख. पायसादि। ३. ख. ग. तथा कुसुमवसनानि उज्ज्वलानि कुसुमानि पुष्पाणि शतपत्रादीनि वसनानि वस्त्राणि शुभ्राणीति तथा लेपनानि चन्दनादिभवानि एतान्युज्ज्वलानि' इति। ४. ख. यद्यद्भवति, ग. स्तोत्रपठनतो यद्भवति।
५-६. ख. ग. वाऽस्तमितसमये। ७. ख. ग. श्रीस्तोत्रं कीर्तयेत् पठेत्। ८. ख. गद्यपद्यादिमयैः।
९. ख. भुवनाश्चर्यंकारकैः। १०. ख. जपेद्यः।

व्रतेनेति—यः पुमान् व्रतेन हीनोऽपि अनवाप्तमंत्रः अप्राप्तमंत्रः श्रद्धाविशुद्धो भूत्वा श्रद्धया निर्मलीकृतमानसः सन् अनुदिनं निरन्तरं इदं जपेत् तस्यापि पुरुषस्य वर्षात् संवत्सरात् विद्याः प्रभवन्ति स्फुरन्ति, किम्भूताः अनवद्यसद्यःकवित्वहृद्याः अनवद्येन निर्दोषेण सद्यः कवित्वेन तत्कालोदितकाव्येन[1] हृद्याः मनोहराः ॥ ४५ ॥

इदानीं अस्य स्तोत्रस्याचिन्त्यमहिमानमाह—

कोप्याचिन्त्यः प्रभावोऽस्य स्तोत्रस्य प्रत्ययावहः ।
श्रीशम्भोराज्ञया सर्वाः सिद्धयोऽस्मिन् प्रतिष्ठिताः ॥ ४६ ॥

कोपीति—अस्य स्तोत्रस्य कोप्यचिन्त्यः प्रभावः प्रत्ययावहो वर्त्तते प्रीतिजनको[2] भवति यतः कारणात् श्रीशम्भोराज्ञया सर्वाः अणिमाद्याः सिद्धयोऽस्मिन् स्तोत्रे प्रतिष्ठिताः आरोपिताः अत एव अचिन्त्यमहिमस्तोत्रमित्यर्थः ॥ ४६ ॥

पद्मनाभेन कविना विपुला विमला कृता ।
पृथ्वीधरकृतेस्तेन[3] वृत्तिः सद्युक्तिदीपिका ॥

इति श्रीपद्मनाभकविविरचितं भुवनेश्वरीस्तोत्रभाष्यं[4] सम्पूर्णम् ॥

लिखितं ब्राह्मणजेरामेन ॥

ख. पुस्तकस्य पुष्पिका—

॥ शुभम् ॥ संवत् १९५० पौषमासीयकृष्णपक्षीयनवम्यां शुक्रे
गंगासहायशर्मणो लिपिः ।
श्रीसवाई श्रीमाधवसिंहराज्ये जयपुरे पुस्तकमिदमायोध्यक-
सरयूप्रसादद्विवेदिनः शिवम् ॥

---

१. ख. तत्कालोचितकाव्येन । २. ख. ग. प्रतीतिजनको ।
३. ख. तत्तु, ग. श्रीमत् पृथ्वीधरनुतेर्वृत्तिः सद्युक्तिदीपिनी । ख. पृथ्वीधरकृतौ तत्र वृत्तिः सद्युक्तिदीपिका । ४. ख. विवरणम्, ग. व्याख्यानम् ।

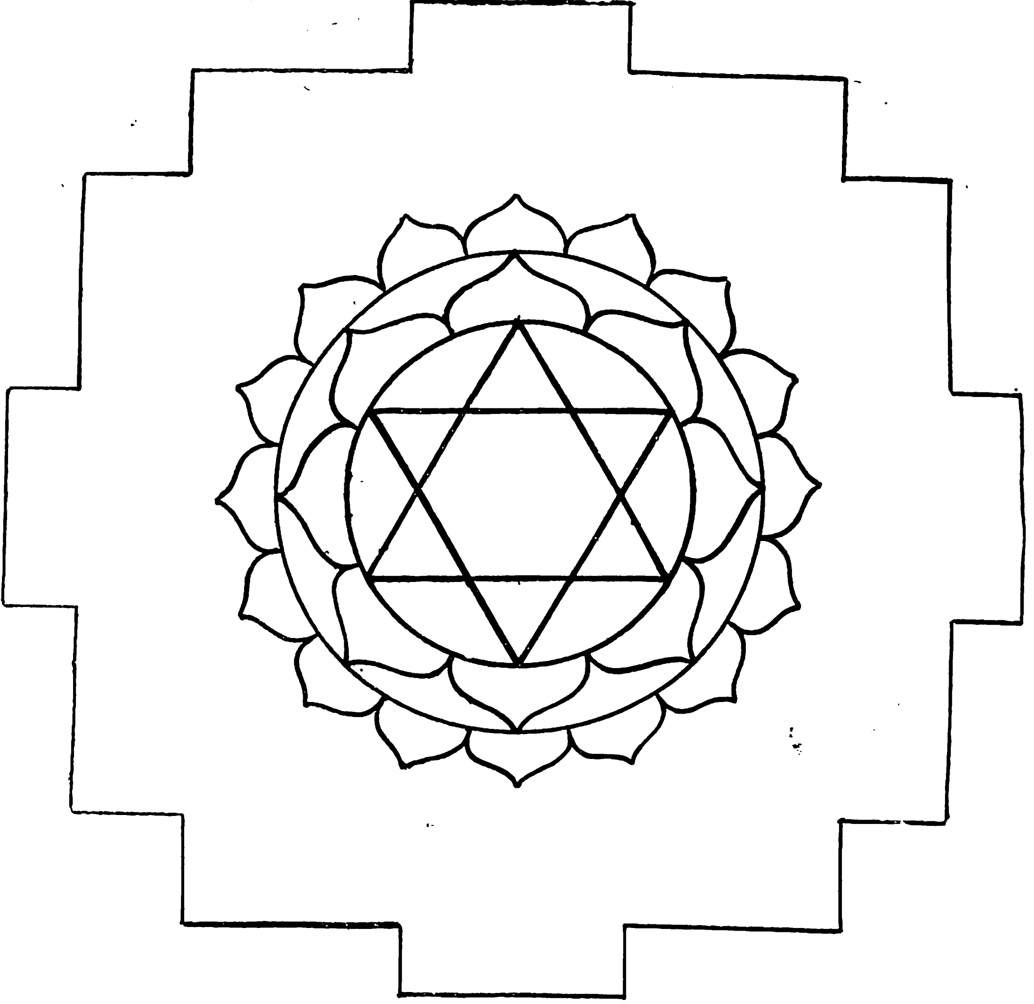
ग. पुस्तकस्य पुष्पिका—

'विक्रम संवत् १९९३ लिखितं केदारनाथेन समाप्तमद्य आश्विन शुक्लप्रतिपदि देहल्याम् ॥

'यन्मात्रा बिन्दुबिन्दुद्वितयपदपदद्वन्द्ववर्णादिहीनं
भक्त्या भक्त्याऽनुपूर्व्यप्रभवकृतवशा व्यक्तमव्यक्तमम्ब !
मोहादज्ञानतो वा पठितमपठितं सांप्रतं स्तोत्रमेतत्
तत् सर्वं साङ्गमास्तां त्रिभुवनवरदे ! देवि विद्ये ! प्रसीद ।'

इति श्रीपृथ्वीधराचार्यविरचितं श्रीभुवनेश्वरीस्तोत्रं श्रीसिद्धसारस्वतापरपर्यायं जयजयहरिकविमल्लभट्टलिखितं समाप्तम् ॥ शुभं भवतुतमाम् ॥

श्रीभुवनेश्वरीचक्रम्





श्रीः

अथ भुवनेश्वरीपञ्चाङ्गम्

तत्रादौ पटलः

श्रीगणेशाय नमः

अथ वक्ष्ये जगद्धात्रीमधुना भुवनेश्वरीम् ।
ब्रह्मादयोऽपि यां ज्ञात्वा लेभिरे श्रियमुत्तमाम्[1] ॥ १ ॥
नकुलेशोऽग्निनारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रवान् ।
बीजमस्याः समाख्यातं समग्रसिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥ २ ॥
ऋषिः शक्तिर्भवेच्छन्दो गायत्री समुदीरितम् ।
देवता सुरसङ्घेन सेविता भुवनेश्वरी ॥ ३ ॥
षड्दीर्घयुक्तबीजेन कुर्यादङ्गविकल्पनम्[2] ।
सारस्वतोक्तमार्गेण[3] मातृकान्यस्तविग्रहः ॥ ४ ॥
मन्त्रन्यासं ततः कुर्याद्देवताभावसिद्धये ।
हृल्लेखां मूर्द्धनि वदने गगनां हृदयाम्बुजे ॥ ५ ॥
रक्तां करालिकां गुह्ये महोच्छुष्मां पदद्वये ।
ऊर्ध्वप्रागदक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु मुखेषु च ॥ ६ ॥
मध्यादि[4] ह्रस्वबीजाद्या न्यस्तव्या भूतसप्रभाः ।
ब्रह्माणं विन्यसेद्भाले गायत्र्या सह संयुतम् ॥ ७ ॥
सावित्र्या सहितं विष्णुं कपोले दक्षिणे न्यसेत् ।
वागीश्वर्या समायुक्तं वामगण्डेश्वरं तथा[5] ॥ ८ ॥
श्रिया गणपतिं न्यस्य पुष्ट्या गणपतिं तथा[6] ।
सव्यकर्णोपरि सिद्धिं[7] कर्णगण्डान्तरालयोः ॥ ९ ॥

---

१. श्रियमूर्जिताम् । २. कुर्यादङ्गानि षट्क्रमात् । ३. संहारसृष्टिमार्गेण ।
४. सद्यादि । सद्य ओकारः तदादयः पञ्चह्रस्वा ओ ए उ इ अ इत्याद्या हृल्लेखाद्याः शक्तयो न्यस्तव्या इति । ५. वामगण्डे महेश्वरम् । ६. श्रिया धनपतिं पश्चाद्वामकर्णाग्रिके पुनः । रत्या स्मरं मुखे न्यस्येत् पुष्ट्या गणपतिं तथा ॥ (सिं. सिं.) ७. निधी ।

न्यस्तव्यं[1] वदने मूलं पुनश्चैतांस्तनौ न्यसेत् ।
कण्ठमूले स्तनद्वन्द्वे वामांसे हृदयाम्बुजे ॥ १० ॥
सव्यांसे पार्श्वयुगले नाभिदेशे च दैशिकः ।
भालांसपार्श्वजठरे पार्श्वमपकरे[2] हृदि ॥ ११ ॥
ब्रह्माण्याद्यास्तनौ न्यस्या विधिना प्रोक्तलक्षणाः ।
मूलेन व्यापकं देहे न्यसेद्देवीं विचिन्तयेत् ॥ १२ ॥
उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम्[3] ॥ १३ ॥
प्रभजेन्[4] मन्त्रविन्मंत्रं द्वात्रिंशल्लक्षमानतः ।
त्रिस्वादुयुक्तैर्जुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः[5] ॥ १३ ॥
दद्यादर्घ्यं दिनेशाय तत्र संचिन्त्य पार्वतीम् ।
पद्माकारं लिखेद्यन्त्रं तत्काले साधकोत्तमः ॥ १४ ॥
पद्ममष्टदलं बाह्ये पद्मं षोडशभिर्दलैः ।
विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् ॥ १५ ॥
बिन्दुत्रिकोणं रसकोणसंयुतं वृत्ताश्चितं नागदलेन मण्डितम् ।
कलारवृत्तत्रयभूगृहाङ्कितं श्रीचक्रमेव नवशक्तिसमन्वितञ्च ॥ १६ ॥
जयाख्या विजया पश्चादजिताह्वाऽपराजिता ।
नित्या विलासिनी दोग्ध्री त्वघोरा मङ्गला नव ॥ १७ ॥
बीजाद्यमासनं दत्त्वा मूर्तिं तेनैव कल्पयेत् ।
तस्यां सम्पूजयेद्देवीमावाह्यावरणैः क्रमात् ॥ १८ ॥
मध्यप्रदक्षिणोदीच्यपश्चिमेषु यथाक्रमम्[6] ।
हृल्लेखाद्याः समभ्यर्च्याः पञ्चभूतसमप्रभाः ॥ १६ ॥
वरपाशाङ्कुशाभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ।
स्थानेषु पूर्वमुक्तेषु पूजयेदङ्गदेवताः ॥ २० ॥

---

१. न्यस्तव्यौ । २. पार्श्वांसापरके । ३. वरदादिस्थितिस्तु पदार्थादर्शे यथा—वामाधोहस्ते वरं, दक्षिणोर्ध्वे अंकुशं, वामोर्ध्वे पाशं, दक्षाधोभयमिति सम्प्रदायविदः । ४. प्रजपेन् ।

५. त्रिस्वादूक्तैः प्रजुहुयादष्टद्रव्यैर्दशांशतः । त्रिस्वादु घृतमधुशर्कराः, अष्टद्रव्याणि-'अश्वत्थोदुम्बर-प्लक्षन्यग्रोधसमिधस्तिलाः । सिद्धार्थपायसाज्यानि द्रव्याण्यष्टौ विदुर्बुधा' इति ।

६. मध्यप्राग्याम्यसौम्येषु पश्चिमेषु यथाक्रमात् ।

षट्कोणेषु यजेन्मन्त्री पश्चान्मिथुनदेवताः ।
इन्द्रकोणे लसद्दण्डकुण्डिकाक्षगुणाभयाम् ॥ २१ ॥
गायत्रीं पूजयेन्मंत्री ब्रह्माणमपि तादृशम् ।
रक्षकोणे चक्रशङ्खगदापङ्कजधारिणीम् ॥ २२ ॥
सावित्रीं पीतवसनां यजेद्विष्णुं च तादृशम् ।
वायुकोणे परश्वक्षमालाभयवरान्वितम् ॥ २३ ॥
यजेत् सरस्वतीं पश्चाद्रुद्रं[1] तादृशलक्षणम् ।
वह्निकोणे यजेद्रत्नकुम्भरत्नकरण्डकम् ॥ २४ ॥
कराभ्यां बिभ्रतं पीतं तुन्दिलं धननायकम् ।
आलिङ्ग्य सव्यहस्तेन वामेनाम्बुजधारिणीम् ॥ २५ ॥
धनदाङ्कसमारूढां महालक्ष्मीं प्रपूजयेत् ।
वारुण्यां[2] मदनं बाणपाशाङ्कुशशरासनम् ॥ २६ ॥
धारयन्तं समारक्तं[3] पूजयेद्रत्नभूषणम् ।
सव्येन पतिमाश्लिष्य वामेनोत्पलधारिणीम् ।
पाणिना रमणाङ्कस्थां रतिं सम्यक् समर्चयेत् ॥ २७ ॥
ईशाने[4] पूजयेत् सम्यग् विघ्नराजं प्रियान्वितम् ॥ २८ ॥
सृणिपाशधरं कान्तं[5] वराङ्गस्पृक[6]राङ्गुलिम् ।
माध्वीपूर्णकपालञ्च[7] वर्णराजं दिगम्बरम् ॥ २९ ॥
पुष्कलं[8] विगलद्रत्नस्फुरच्चषकधारिणम् ।
सिन्दूरसदृशाकारां संमुदां[9] मदविभ्रमाम् ॥ ३० ॥
धृतरक्तोत्पलामन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशाम् ।
आश्लिष्टकान्तामरुणां पुष्टिमर्च्चेद्दिगम्बराम् ॥ ३१ ॥
कर्णिकायां निधी पूज्यौ षट्कोणस्याथ[10] पार्श्वयोः ।
अङ्गानि केसरेष्वेताः पश्चात् पत्रेषु पूजयेत् ॥ ३२ ॥
अनङ्गकुसुमा पश्चादनङ्गकुसुमारुणा ।[11]
अनङ्गमदना तद्वदनङ्गमदनातुरा ॥ ३३ ॥

---

१. अच्छां रुद्रं । २. वारुणे । ३. जपारक्तं । ४. ऐशान्ये । ५. कान्ता ।
६. स्पृक् । ७. कपालाढ्यं । ८. पुष्करे । ९. उद्दाम । १०. षट्कोणोभय ।
११. अनङ्गकुसुमातुरा ।

भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम् ।
शशिरेखा च गगनरेखा चेत्यष्टशक्तयः ॥ ३४ ॥
पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽरुणविग्रहाः ।
ततः षोडशपत्रेषु कराली विकराल्युमा ॥ ३५ ॥
सरस्वती श्रीदुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडशशक्तयः ॥ ३६ ॥
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याश्च मातरः ।
पश्चाद्बहिः समभ्यर्च्याः शक्तयः परिचारकाः[1] ॥ ३७ ॥
प्रथमानङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना तथा ।
मदनातुरा तु भवनवेगा भुवनमालिका[2] ॥ ३८ ॥
स्यात्पूर्वमदनानङ्गवेदनानङ्गमेखला[3] ।
चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं छत्रमुज्ज्वलम् ॥ ३९ ॥
चामरे चांशुकं पुष्पं बिभ्राणां करपङ्कजैः ।
सर्वाभरणसंयुक्तां गुरुपङ्क्तित्रयं यजेत् ॥ ४० ॥
दिव्यौघांश्चैव सिद्धौघान् मानवौघान् यथाक्रमात् ।
सर्वाभरणसन्दीप्तांल्लोकपालान् बहिर्यजेत् ॥ ४१ ॥
इन्द्राग्नियमनैरृत्यवरुणा मरुतस्तथा ।
कुबेर ईशपतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥ ४२ ॥
गजो मेषश्च महिषः प्रेतो मकर एव च ।
मृगो नरो वृषश्चैते पूज्याः पूर्वादितः क्रमात् ॥ ४३ ॥
वज्रः शक्तिस्तथा दण्डः खड्गपाशौ तथाङ्कुशः ।
गदा त्रिशूल इत्येते पूर्वाद्याश्चायुधाः स्मृताः ॥ ४४ ॥
ऊर्ध्वाधः क्रमतः पूज्यौ ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च ।
हंसताक्ष्यौं पद्मचक्रे पूर्वादीनां समागमैः ॥ ४५ ॥
पूज्यते सकलैर्देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ।
मंत्री त्रिमधूपेतै[4]र्हुत्वाऽश्वत्थसमिद्वरैः ॥ ४६ ॥

---

१. परिवारिकाः । २. भुवनपालिका । ३. स्यात् सर्वशिशिरानङ्गमदनानङ्गमेखला ।
४. त्रिमधुरोपेतैः ।

ब्राह्मणान् वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान् पद्महोमतः ।
पलाशपुष्पैस्तत्पत्नीर्मंत्रिणः कुसुमैरपि[1] ॥ ४७ ॥
पञ्चविंशतिसंजप्तैर्जलैः स्नाने[2] दिने दिने ।
आत्मानमभिषिञ्चेद्यः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥ ४८ ॥
पञ्चविंशतिसंजप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः ।
अवाप्य[3] महतीं प्रज्ञां कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥ ४९ ॥
कर्पूरागरुसंयुक्तं कुंकुमं साधु साधितम् ।
गृहीत्वा तिलकं कुर्याद्राज्य[4]वश्यमनुत्तमम् ॥ ५० ॥
शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं मधुरान्विताम् ।
जप्त्वा[5] प्रतिष्ठितप्राणां भक्षयेद्रविवासरे ॥ ५१ ॥
वशं नयति राजानं नारीं वा नरमेव च ।
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा वीक्ष्येत खगतं[6] रविम् ॥ ५२ ॥
त्रिःसहस्रं जपेन्मंत्रं इष्टकन्यां लभेत सः ।
अन्नं तु मंत्रितं मन्त्री भुञ्जीत श्रीप्रसिद्धये ॥ ५३ ॥
लिखित्वा[7] भस्मनाऽमायां सुसाध्यां फलकादिषु ।
तत्कालं[8] च लिखेद्यंत्रं[9] सुखं सूयति[10] गर्भिणी ॥ ५४ ॥
शक्त्यन्तःस्थितसाध्यकर्म भुवने[11] वह्नेर्वृतं वह्निभि-[12]
र्बाह्ये कोणगतेयुतं * हरिहरैर्वर्णैः कपोलार्पितैः ।
पश्चात्तैः पुनरीयुतैर्लिपिभिरप्यावीतमिष्टाक्षरं[13]
यंत्रं भूपुरमध्यगं त्रिगुणितं सौभाग्यसम्पत्प्रदम् ॥ ५५ ॥

---

१. कुमुदैरपि । २. नित्यं । ३. अवश्यं । ४. राज । ५. जप्तां । ६. वीक्ष्य तोयगतं । ७. लिखितां । ८. तत्काले । ९. दर्शयेद्यन्त्रं । १० सूयेत । ११. भवने (सिं. सिं.) १२. शक्तिभिः (सिं. सिं.) । १३. मिष्टार्थदं (सिं. सिं.) ।

* कोणगतेयुतमिति कोणगतेन ईकारेण युतमित्यर्थः, सबिन्दुनेति सम्प्रदायः, अस्यार्थः—इन्द्ररक्षो-वायुदिग्गतकोणत्रयन्यस्रमग्निमण्डलं विधाय तन्मध्ये भुवनेश्वरीबीजं विलिख्य तस्य रेफस्थाने साध्यनाम ईकारस्थाने साधकनाम तयोर्मध्ये कर्म च विलिख्य तद्भुवनेश्वरीबीजैरावेष्ट्य त्रिकोणस्य कोणत्रयाभ्यन्तरे सबिन्दुकमीकारं विलिख्य त्रिकोणाग्रेषु भुवनेश्वरीबीजं प्रतिकोणं विलिख्य तेषां त्रयाणामेकैकबीजस्य रेफेण तत्तद्बीजं प्रदक्षिणीकृत्याऽन्योन्यस्येकाराग्रं परस्परं बध्नीयात् । ततः कोणत्रयपार्श्वयोः 'हरिहर' इति वर्णचतुष्टयं विलिख्य बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा तन्मध्यगतवीथीद्वये प्रथमवीथ्यां स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'हरि ई हर ई' इति वर्णैः पुनः पुनर्लिखितैरावेष्ट्य द्वितीयवीथ्यां अकारादिक्षकारान्तैः सबिन्दुकैर्मातृकाक्षरैः स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वेष्टयित्वा सर्वबाह्ये चतुरस्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति, तथा च—

भुवनपाला गगनवेगा चैव ततः परम् ।
शशिरेखा च गगनरेखा चेत्यष्टशक्तयः ॥ ३४ ॥
पाशाङ्कुशवराभीतिधारिण्योऽरुणविग्रहाः ।
ततः षोडशपत्रेषु कराली विकराल्युमा ॥ ३५ ॥
सरस्वती श्रीदुर्गोषा लक्ष्मीश्रुत्यौ स्मृतिर्धृतिः ।
श्रद्धा मेधा मतिः कान्तिरार्या षोडशशक्तयः ॥ ३६ ॥
खड्गखेटकधारिण्यः श्यामाः पूज्याश्च मातरः ।
पद्मादबहिः समभ्यर्च्याः शक्तयः परिचारकाः[1] ॥ ३७ ॥
प्रथमानङ्गरूपा स्यादनङ्गमदना तथा ।
मदनातुरा तु भवनवेगा भुवनमालिका[2] ॥ ३८ ॥
स्यात्पूर्वमदनानङ्गवेदनानङ्गमेखला[3] ।
चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं छत्रमुज्ज्वलम् ॥ ३९ ॥
चामरे चांशुकं पुष्पं बिभ्राणां करपङ्कजैः ।
सर्वाभरणसंयुक्तां गुरुपङ्क्तित्रयं यजेत् ॥ ४० ॥
दिव्यौघांश्चैव सिद्धौघान् मानवौघान् यथाक्रमात् ।
सर्वाभरणसन्दीप्ताँल्लोकपालान् बहिर्यजेत् ॥ ४१ ॥
इन्द्राग्नियमनैर्ऋत्यवरुणा मरुतस्तथा ।
कुबेर ईशपतयः पूर्वादीनां दिशां क्रमात् ॥ ४२ ॥
गजो मेषश्च महिषः प्रेतो मकर एव च ।
मृगो नरो वृषश्चैते पूज्याः पूर्वादितः क्रमात् ॥ ४३ ॥
वज्रः शक्तिस्तथा दण्डः खड्गपाशौ तथाङ्कुशः ।
गदा त्रिशूल इत्येते पूर्वाद्याश्चायुधाः स्मृताः ॥ ४४ ॥
ऊर्ध्वाधः क्रमतः पूज्यौ ब्रह्मा विष्णुस्तथैव च ।
हंसताक्ष्यौ पद्मचक्रे पूर्वादीनां समागमैः ॥ ४५ ॥
पूज्यते सकलैर्देवैः किं पुनर्मनुजोत्तमैः ।
मंत्री त्रिमधूपेतै[4]र्हुत्वाऽश्वत्थसमिद्वरैः ॥ ४६ ॥

---

१. परिवारिकाः ।　२. भुवनपालिका ।　३. स्यात् सर्वशिशिरानङ्गमदनानङ्गमेखला ।
४. त्रिमधुरोपेतैः ।

ब्राह्मणान् वशयेच्छीघ्रं पार्थिवान् पद्महोमतः ।
पलाशपुष्पैस्तत्पत्नीर्मंत्रिणः कुसुमैरपि[1] ॥ ४७ ॥
पञ्चविंशतिसंजप्तैर्जलैः स्नाने[2] दिने दिने ।
आत्मानमभिषिञ्चेद्यः सर्वसौभाग्यवान् भवेत् ॥ ४८ ॥
पञ्चविंशतिसंजप्तं जलं प्रातः पिबेन्नरः ।
अवाप्य[3] महतीं प्रज्ञां कवीनामग्रणीर्भवेत् ॥ ४९ ॥
कर्पूरागरुसंयुक्तं कुंकुमं साधु साधितम् ।
गृहीत्वा तिलकं कुर्याद्राज्य[4] वश्यमनुत्तमम् ॥ ५० ॥
शालिपिष्टमयीं कृत्वा पुत्तलीं मधुरान्विताम् ।
जप्त्वा[5] प्रतिष्ठितप्राणां भक्षयेद्रविवासरे ॥ ५१ ॥
वशं नयति राजानं नारीं वा नरमेव च ।
कण्ठमात्रोदके स्थित्वा वीक्ष्येत खगतं[6] रविम् ॥ ५२ ॥
त्रिःसहस्रं जपेन्मंत्रं इष्टकन्यां लभेत सः ।
अन्नं तु मंत्रितं मन्त्री भुञ्जीत श्रीप्रसिद्धये ॥ ५३ ॥
लिखित्वा[7] भस्मनाऽमायां सुसाध्यां फलकादिषु ।
तत्कालं[8] च लिखेद्यंत्रं[9] सुखं सूयति[10] गर्भिणी ॥ ५४ ॥
शक्त्यन्तःस्थितसाध्यकर्म भुवने[11] वह्नेर्वृतं वह्निभि-[12]
र्बाह्ये कोणगतेयुतं * हरिहरैर्वर्णैः कपोलार्पितैः ।
पश्चात्तैः पुनरीयुतैर्लिपिभिरप्यावीतमिष्टाक्षरं[13]
यंत्रं भूपुरमध्यगं त्रिगुणितं सौभाग्यसम्पत्प्रदम् ॥ ५५ ॥

---

१. कुमुदैरपि । २. नित्यं । ३. अवश्यं । ४. राज । ५. जप्तां । ६. वीक्ष्य तोयगतं । ७. लिखितां । ८. तत्काले । ९. दर्शयेद्यन्त्रं । १० सूयेत । ११. भवने (सिं. सिं.) १२. शक्तिभिः (सिं. सिं.) । १३. मिष्टार्थदं (सिं. सिं.) ।

* कोणगतेयुतमिति कोणगतेन ईकारेण युतमित्यर्थः, सबिन्दुनेति सम्प्रदायः, अस्यार्थः—इन्द्ररक्षो-वायुदिग्गतकोणत्रयन्यस्तमग्निमण्डलं विधाय तन्मध्ये भुवनेश्वरीबीजं विलिख्य तस्य रेफस्थाने साध्यनाम ईकारस्थाने साधकनाम तयोर्मध्ये कर्म च विलिख्य तद्भुवनेश्वरीबीजैरावेष्ट्य त्रिकोणस्य कोणत्रयाभ्यन्तरे सबिन्दुकमीकारं विलिख्य त्रिकोणाग्रेषु भुवनेश्वरीबीजं प्रतिकोणं विलिख्य तेषां त्रयाणामेकैकबीजस्य रेफेण तत्तद्बीजं प्रदक्षिणीकृत्याऽन्योन्यस्यैकाराग्रं परस्परं बध्नीयात् । ततः कोणत्रयपार्श्वयोः 'हरिहर' इति वर्णचतुष्टयं विलिख्य बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा तन्मध्यगतवीथीद्वये प्रथमवीथ्यां स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन 'हरि ई हर ई' इति वर्णैः पुनः पुनर्लिखितैरावेष्ट्य द्वितीयवीथ्यां अकारादिक्षकारान्तैः सबिन्दुकैर्मातृकाक्षरैः स्वाग्रादिप्रादक्षिण्येन वेष्टयित्वा सर्वबाह्ये चतुरस्रं कुर्यादेतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति, तथा च—

बीजान्तःस्थितसाध्यनाम शरशो मायारमामन्मथै-
र्वीतं वह्निपुरद्वये रसपुटेष्वाषाढबीजत्रयम्[1] ।
स्वात्मा[2]नात्मकमीषसे[3] हरिहरैराबद्धगण्डं बहिः
षड्बीजैरनुबद्धसन्धिर्लिपिभिर्वीतं गृहाभ्यां तु वः[4] ॥ ५६ ॥
चिन्तामणिनृसिंहाभ्यां लसत्कोणमिदं लिखेत् ।
यंत्रं षड्गुणितं दिव्यं वहतां सर्वसिद्धिदम्[5] ॥ ५७ ॥[6]

अत्रापि सम्पदे देवीं यथाविधि समाहितः ।
हृल्लेखाद्याः समभ्यर्च्य पूर्ववत् साधकः स्वयम् ।
अङ्गानि पूजयेत् पश्चाद् गायत्र्याद्याः प्रपूजयेत् ॥
प्रागग्रबीजे गायत्रीं सावित्रीं दक्षिणास्रगे ।
सरस्वतीं मारुतस्थे ब्रह्माणं वह्निगे तथा ॥
वारुणे विष्णुमीशं च यजेदीशे ततो बहिः ।
ब्रह्माण्याद्या लोकपालास्तद्बाह्ये कुलिशादयः ॥
एवं त्रिगुणिते देवीं पूजयेत् साधकोत्तमः ॥ [सिं. सिं. पत्र ४१४]

१. आलिख्य बीजत्रयम् । २. सात्मा । ३. मीशिखं । ४. भुवः ।

५. "बहिः षोडशशूलाङ्कमतीव च मनोरमम् ।
एतत्षड्गुणितं यन्त्रं सर्वसिद्धिकरं परम् ॥ १ ॥
अत्र देवीं यजेन्मंत्री यन्त्रस्योपरिशोभनम् ।
पद्मं द्वादशपत्रं च षड्विंशत्केसरान्वितम् ॥ २ ॥
बहिश्च राश्यादिकेन युक्तं कुर्यान्मनोहरम् ।
नवशक्तियुतं पीठं संपूज्यावाह्य देवताम् ॥ ३ ॥
संपूजयेत् चन्दनाद्यैरुपचारैश्च पूर्ववत् ।
प्रोक्तवच्च षडङ्गानि मिथुनानि च संयजेत् ॥ ४ ॥
बहिर्द्वादशशक्तीश्च रक्ताद्याः संयजेत् क्रमात् ।
रक्ता चानङ्गकुसुमा नित्या च कुसुमातुरा ॥ ५ ॥
अनङ्गमदना तद्वद् भवेच्च मदनातुरा ।
गौरी च गगना तद्वद् रेखान्तं गगनं पदम् ॥ ६ ॥
अनेन विधिना मंत्री योऽर्चयेद्भुवनेश्वरीम् ।
स लक्ष्मीनिलयो भूयात् त्रिदशैश्चाभिवन्दितः ॥ ७ ॥
देहान्ते शिवसायुज्यं स प्राप्नोति सुनिश्चितम् ।"
इति सिंहसिद्धान्तसिन्धौ विशेषः ॥

६ अस्यार्थः—तत्र स्वेष्टमानभ्रमेण वृत्तं कृत्वा तत्र प्राक् प्रत्यग्ब्रह्मसूत्रमास्फाल्य तदग्रयोः सन्धिमवष्टभ्य वृत्तार्धपरिमाणेन सूत्रेण वृत्तसंदष्टं मत्स्यद्वयं मत्स्यद्वयं दक्षिणोत्तरयोः कुर्यात् । एवंकृते मत्स्यचतुष्कं संपन्नं भवति, ततः पूर्वमत्स्यद्वये पश्चिममत्स्यद्वये च दक्षिणोत्तरं तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य

बीजं व्याहृतिभिर्युतं[1] गृहयुगद्वन्द्वे वसोः कोणगं
दौर्गं बीजमनन्तरे लिपियुतैरावद्धगण्डं लिखेत् ।
गायत्र्या रविशक्तिबद्धविवरं त्रिष्टुब्युतं तत् ततो
बीजं मातृकया धरापुरयुगे सत्सिंहचिन्तामणिः ॥ ५८ ॥
यंत्रं दिनेशगुणितं प्रोक्तं रक्षाप्रसिद्धिदम् ।
सर्वसौभाग्यजननं सर्वशत्रुनिवारणम्[2] ॥ ५९ ॥

ब्रह्मसूत्रस्य प्रागग्रे विधाय पश्चिममत्स्यद्वययोस्तिर्यक्सूत्रद्वयमास्फाल्य पुनर्ब्रह्मसूत्रस्य पश्चिमाग्रे निधाय पूर्वदिङ्मत्स्योदरयोः सूत्रद्वयमास्फालयेत् । एवं कृते वह्निमण्डलद्वयं जायते ततो वृत्तं प्राचीसूत्रं च मार्जयेदित्येवं षट्कोणं कृत्वा तन्मध्ये शक्तिबीजमालिख्य तस्य रेफभागे साध्यनामालिख्य तस्येकारस्वरभागे साधकनामालिख्य रेफेकारयोरन्तरालं साधकांशे कर्म लिखेदित्येवं स्वाभिमतं विलिख्य मध्यस्थबीजोपरितो वेष्टनप्रकारेण पञ्चधाशक्तिबीजं विलिख्य तद्बहिः पञ्चधा श्रीबीजं पुनस्तद्बहिः पञ्चधा कामबीजं विलिख्य षट्कोणस्योर्ध्वगतकोणत्रये उत्तरमध्यदक्षिणक्रमेण शक्तिश्रीकामबीजानि प्रतित्रिकोणमेकैकं बीजं साधकनामयुतं विलिख्याधोगतत्रिकोणत्रये तान्येव बीजानि विसर्गयुक्तानि ससाध्यनामानि दक्षिण-मध्योत्तरक्रमेण विलिख्य षट्स्वपि त्रिकोणोदरेषु सबिन्दुं चतुर्थस्वरमीकारमालिख्य षट्कोणस्य प्रतिकोणपार्श्वयोः 'हरिहर' इति द्वादशधा विलिख्य षट्सु त्रिकोणाग्रेषु प्रतित्रिकोणाग्रमेकमेकं शक्तिबीजं विलिख्य पूर्ववदेकैकान्तरितं बध्नीयात्, उक्तं चाचार्यचरणैः "एकैकान्तरितास्तास्तु सम्बद्ध्युरितरेतरमिति" ततो बहिर्वृत्तत्रयं कृत्वा वीथीद्वयं निष्पाद्य तत्राभ्यन्तरवीथ्यां स्वाग्रादि प्रादक्षिण्येन सबिन्दूनकारादिक्षकारान्तान् मातृकावर्णान् विलिख्य बहिर्वीथ्यां तानेव क्षकाराद्यकारान्तक्रमेण प्रादक्षिण्येन विलिखेत्, उक्तं च आचार्यचरणैः —

"बाह्ये रेखामन्तराः स्युर्वर्णाः क्रमगताः शुभाः ।
तद्बहिः प्रतिलोमाश्च ते स्युर्लेखकपाटवात् ।" इति

ततो बहिरष्टकोणं विधाय तस्य दिग्गतक्रमेण चतुष्के वक्ष्यमाणं नृसिंहबीजं विलिख्य विदिग्गते कोणचतुष्के वक्ष्यमाणं चिन्तामणिबीजं विलिख्याष्टकोणस्थरेखाष्टकप्रान्तषोडशके षोडशत्रिशूलानि कुर्यात्, उक्तञ्चाचार्यचरणैः—

'बहिः षोडशशूलाङ्कं शोभनं व्यक्तवर्णवत्' इति
एतत् षड्गुणितं यन्त्रमुक्तफलदं भवति ॥ (सिं. सिं. पत्र ४१५)

१. वृतं ।

२. अस्यार्थः—तत्र प्राग्वत् षट्कोणमालिख्य तस्य सन्धिषट्के त्रिकोणषट्कं यथा व्यक्तं भवति तथा गुरूक्तयुक्त्या षट्कोणान्तरं विलिख्य तन्मध्ये प्राग्वत् साध्यसाधककर्मयुक्तं शक्तिबीजमालिख्य तत्प्रतिलोमेन व्याहृतिभिर्वेष्टयेत्, तदुक्तमाचार्यैः—

'शक्तिं प्रवेष्टयेच्च प्रतिलोमव्याहृतिभिरन्तस्थामिति' ततो द्वादशत्रिकोणोदरेषु दुं इति दुर्गाबीजं विलिख्य तेष्वेव सानुस्वारं चतुर्थस्वरं लिखेत्, तदुक्तमाचार्यचरणैः—

लिखेत् सरोजं रसपत्रयुक्तं मध्ये दलेष्वप्यभिलिख्य मायाम् ।
स्वरावृतं यंत्रमिदं वधूनां पुत्रप्रदं भूमिगृहान्तरस्थम्[1] ॥ ६० ॥
षट्कोणमध्ये प्रविलिख्य शक्तिं कोणेषु नामैव विलिख्य भूयः ।
स साध्यगर्भं वसुधापुरस्थं यंत्रं भवेद्वश्यकरं नराणाम्[2] ॥ ६१ ॥
वाग्भवं शम्भुवनितारमाबीजत्रयात्मकम् ।
मंत्रं समुद्धरेन्मंत्री त्रिवर्गफलसाधनम्[3] ॥ ६२ ॥
षड्दीर्घभाग्बीजेन वाग्भवाद्येन कल्पयेत् ।
षडङ्गानि मनोरस्य जातियुक्तानि मंत्रवित् ॥ ६३ ॥
कुर्यात् पूर्वोदितान् न्यासान् चिन्तयेदपि साधकः ।
सिन्दूरारुणविग्रहां त्रिनयनां माणिक्यमौलिस्फुरत्-
तारानायकशेखरां स्मितमुखीमापीनवक्षोरुहाम् ।
पाणिभ्यां मणिपूर्णरत्नचषकं रक्तोत्पलं बिभ्रतीं
सौम्यां रत्नघटस्थसव्यचरणां ध्यायेत् परामम्बिकाम् ॥ ६४ ॥

'रविकोणेषु दुरन्तां मायां लिखेदद्यात्र बिन्दुमतीमिति' ततो द्वादशत्रिकोणपार्श्वद्वये प्रतिपार्श्वमेकमिति क्रमेण वैदिकगायत्र्याश्चतुर्विंशतिवर्णान् सबिन्दून् प्रादक्षिण्येन प्रतिलोमगतान् विलिखेत्, उक्तञ्चाचार्यचरणैः-'गायत्रीं प्रतिलोमतः प्रविलिखेदग्नेः कपोलमिति' ततः पूर्ववद्द्वादश त्रिकोणाग्रेषु शक्तिबीजानि विलिख्य तानि परस्परं पूर्ववदेकान्तरितं बध्नीयात् तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तरालगतवीथ्याम्—

"जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः" । ऋग्वेदः १।७।७।१

इति त्रिष्टुभ्मंत्रस्य सबिन्दुभिर्वर्णैः प्रतिलोमेन वेष्टयेत्, उक्तञ्चाचार्यचरणैः—

'बहिश्च रचयेद्भूयस्तथा त्रिष्टुभमिति'

तत्र श्रीपद्मपादाचार्यव्याख्या—तथा त्रिष्टुभमिति प्रतिलोमेनेत्यर्थः । ततः प्राग्वदनुलोममातृकया विलोममातृकया च संवेष्ट्य तद्बहिरष्टकोणं कृत्वा प्रागुक्तत्तत्कोणेषु नृसिंहबीजं चिन्तामणिबीजं च विलिख्य तथैव षोडशशूलयुक्तं कुर्यादित्येतद्यन्त्रमुक्तफलदं भवति । (सिं. सिं. पृ. ४१६)

१. अस्यार्थः, भूर्जादौ षड्दलकमलं विधाय तन्मध्ये ससाध्यं शक्तिबीजमालिख्य षट्सु दलेष्वपि शक्तिबीजमेवालिख्य तद्बहिर्वृत्तद्वयं विधाय तयोरन्तराले सबिन्दुभिः षोडशस्वरैरावेष्ट्य तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्यात् । एतद्यंत्रमुक्तफलदम् । (सिं. सिं. पृ. ४१६)

२. अस्यार्थः, प्राग्वत् षट्कोणं विधाय तन्मध्ये तत्कोणेषु च ससाध्यं शक्तिबीजमालिख्य तद्बहिश्चतुरस्रं कुर्यात्, एतद्यंत्रमुक्तफलदम् । (सिं. सिं. पृ. ४१६)

३. वाग्भवं ऐं, शम्भुवनिता ह्रीं, रमाबीजं श्रीं इति ।

रविलक्षं जपेन्मंत्रं पायसैर्मधुराप्लुतैः ।
दशांशं जुहुयान्मंत्री पीठे प्रागीरिते यजेत् ॥ ६५ ॥
देवीं प्रागुक्तमार्गेण गन्धाद्यैरतिशोभनैः ।
हुत्वा पलाशकुसुमैः वाक्श्रियं महतीं व्रजेत् ॥ ६६ ॥
ब्राह्मीघृतं पिबेज्जप्तं कविर्त्वं वत्सराद्भवेत् ।
सिद्धार्थं लवणोपेतं हुत्वा मंत्री वशं नयेत् ॥ ६७ ॥
नरं नारीं नरपतिं नात्र कार्या विचारणा ।
चतुरङ्गुलजैः पुष्पैश्चन्दनाद्भस्मसन्नुक्षितैः[1] ॥ ६८ ॥
हुत्वा वशीकरोत्याशु त्रैलोक्यमपि साधकः ।
जुहुयादरुणाम्भोजैरयुतं मधुराप्लुतैः ॥ ६९ ॥
राजा श्रियमवाप्नोति शालिजैस्तन्दुलैस्तथा[2] ।
प्रागुक्तान्यपि कर्माणि मंत्रेणानेन साधयेत् ॥ ७० ॥
वाग्बीजपुटिता माया विद्येयं त्र्यक्षरी मता ।
मध्येन दीर्घयुक्तेन वाक्पुटितेन[3] कल्पयेत् ॥ ७१ ॥
अङ्गानि जातियुक्तानि क्रमेण मंत्रवित्तमः ।
यथा पुरा समुद्दिष्टं न्यासं कुर्वीत मन्त्रवित् ॥ ७२ ॥
श्यामाङ्गीं शशिशेखरां निजकरैर्दानं च रक्तोत्पलं
रक्ताढ्यं चषकं वरं[4] भयहरं संबिभ्रतीं शाश्वतीम् ।
मुक्ताहारलसत्पयोधरनतां नेत्रत्रयोल्लासिनीं
वन्देऽहं सुरपूजितां हरवधूं रक्तारविन्दास्थिताम् ॥ ७३ ॥
तत्त्वलक्षं जपेन्मंत्रं जुहुयात्तद्दशांशतः ।
पलाशपुष्पैस्तद्वक्त्रैः[5] पुष्पैर्वा राजवृक्षकैः ॥ ७४ ॥
हृल्लेखाविहिते पीठे पूजयेत् परमेश्वरीम् ।
मध्यादि पूजयेन्मन्त्री हृल्लेखाद्याः पुरोदिताः ॥ ७५ ॥
मिथुनानि यजेन्मन्त्री षट्कोणेषु यथा पुरा ।
अंगपूजा केसरेषु पूज्याः पत्रेषु मातरः ॥ ७६ ॥

---

१. चन्दनाम्भः समुक्षितैः । २. राज्यश्रियमवाप्नोति सतिलैस्तण्डुलैस्तथा ।
३. वाक्पुटेन प्रकल्पयेत् । ४. परं । ५. स्वाद्वक्तैः ।

भैरवाङ्कसमारूढाः स्मेरवक्त्रा मदालसाः ।
असिताङ्गो रुरुश्चण्डःक्रोधश्चोन्मत्तसंज्ञकः ॥ ७७ ॥
कपालिभीषणौ पश्चात् संहाराश्चाष्टभैरवाः ।
शूलं कपालं भीतिं[1] च बिभ्राणाः क्षुद्रदुन्दुभिम् ॥ ७८ ॥
गजत्वगम्बरा भीमाः कुटिलालकशोभिताः[2] ।
दीर्घाद्या मातरः प्रोक्ता ह्रस्वाद्या भैरवाः स्मृताः ॥ ७९ ॥
पूज्याः षोडशपत्रेषु करालयाद्याः पुरोदिताः ।
तद्बाह्येऽनङ्गरूपाद्या लोकेशास्त्राणि तद्बहिः ॥ ८० ॥
एवमाराधयेद्देवीं शास्त्रोक्तेनैव वर्त्मना ।
वशं नयति राजानं वनिताश्च मदालसाः ॥ ८१ ॥
अन्नमाज्येन जुहुयाल्लभते वसु वाञ्छितम् ।
सुगन्धैः कुसुमैर्हुत्वा श्रियमाप्नोति वाञ्छिताम् ॥ ८२ ॥
मन्त्रेणानेन संजप्तमश्नीयादन्नमन्वहम् ।
भवेदरोगी[3] नियतं दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८३ ॥
अनंतो बिन्दुसंयुक्तो माया ब्रह्माग्नितारवान् ।
पाशादित्र्यक्षरो मन्त्रः सर्ववश्यफलप्रदः[4] ॥ ८४ ॥
ऋष्याद्याः पूर्वमुक्ताः स्युर्बीजेनाङ्गक्रिया मता ॥ ८५ ॥
वराङ्कुशौ पाशमभीतिमुद्रां करैर्वहन्तीं कमलासनस्थाम् ।
बालार्ककोटिप्रतिमां त्रिनेत्रां भजेऽहमाद्यां भुवनेश्वरीं ताम् ॥ ८६
हविष्यभुग् जपेन्मंत्रं तत्त्वलक्षं[5] जितेन्द्रियः ।
तत्सहस्रं प्रजुहुयाज्जपान्ते मन्त्रवित्तमः ॥ ८७ ॥
दधिक्षौद्र[6] घृताक्ताभिः समिद्भिः क्षीरभूरुहाम् ।
तत्संख्येयतिलैः शुद्धैः पयोक्तैर्जुहुयात्ततः ॥ ८८ ॥
हृल्लेखाविहिते पीठे नवशक्तिसमन्विते ।
अर्चयेत् परमेशानीं वक्ष्यमाणक्रमेण ताम् ॥ ८९ ॥

---

१. प्रेतं । २. शोभिनः । ३. भवेदरोगो । ४. स्पष्टार्थः—अनन्त आकारः बिन्दुसंयुक्तस्तेन आं, माया भुवनेशी, ब्रह्मा ककारः, अग्नि रेफः, तारः प्रणवस्ताभ्यां युक्तस्तेन क्रों । अत्र प्रथमबीजस्य पाश इति संज्ञा अन्त्यस्याङ्कुश इति संज्ञा ।

५. चतुर्विंशतिलक्षमित्यर्थः । ६. मधु क्षौद्रमित्यमरः ।

हृल्लेखाद्या यजेदादौ कर्णिकायां यथाविधि ।
अङ्गानि केशरेषु स्युः पत्रस्था मातरः क्रमात् ॥ ६० ॥
इन्द्रादयः पुनः पूज्यास्तेषामस्त्राणि तद्बहिः ।
एवं सम्पूजयेद्देवीं साक्षाद्वैश्रवणो भवेत् ॥ ६१ ॥
रज्यते सकलैर्लोकैस्तेजसा भास्करोपमः ।
अनेनाधिष्ठितं गेहं निशि दीपशिखाकुलम् ॥ ६२ ॥
दृश्यते प्राणिभिः सर्वैर्मन्त्रस्यास्य प्रभावतः ।
सर्षपैर्लाजसंमिश्रै राज्यार्थे जुहुयान्निशि ॥ ६३ ॥
राजानं वशयेत् सद्यस्तत्पत्नीमपि साधकः ।
अन्नवानन्नहोमेन श्रीमान् पद्महुताद्भवेत् ॥ ६४ ॥
राजवृक्षसमुद्भूतैः पुष्पैर्हुत्वा कविर्भवेत् ।
अरोगो तिलहोमेन घृतेनायुरवाप्नुयात् ॥ ६५ ॥
प्राक्प्रोक्तान्यपि कर्माणि साधयेत् साधकोत्तमः ।
आलिख्याष्टदिगर्गलान्युदरगं पाशादिकं त्र्यक्षरं
कोष्ठेष्वङ्गमनूदरेषु[1] विलिखेदष्टार्णमन्त्रद्वयम् ।
अच्पूर्वापरषट्कयुग्लयवरान् व्योमासना[2]मर्गले-
ष्वालिख्येन्द्रजलाधिपादिगुणशः पंक्तिद्वयं तत्परम् * ॥ ६६ ॥
कोशेष्वष्टयुगार्णमात्मसदृशां[3] युग्मस्वरान्तर्गतां
मायां केसरगां दलेषु विलिखेन् मूलं त्रिपङ्क्तिः क्रमात् ।
त्रिःपाशाङ्कुशवेष्टितं लिपिभिरावीतं क्रमाद्व्युत्क्रमात्
पद्मस्थेन घटेन पङ्कजमुखेनावेष्टितं तद्बहिः ॥ ६७ ॥
घटार्गलमिदं यंत्रं मन्त्रिणां प्राभृतं मतम् ।
पाशश्रीशक्तिकन्दर्पकामशक्त्यादिरङ्कुशः[4] ॥ ६८ ॥

---

१. मनून् परेषु । २. व्योमासनानर्गले । ३. सहितां । ४. शक्तीन्दिराङ्कुशाः ।

* अत्र विषमपदव्याख्या अच्पूर्वेति—अचां स्वराणां नपुंसकव्यतिरिक्तानाम् । पूर्वषट्कं अ आ इ ई उ ऊ । अपरषट्कं ए ऐ ओ औ अं अः । एतद्युक्तान् लयवरान् । व्योमासनान् व्योम हकारस्तत्रासना स्थितिर्येषां तादृशाम् । इन्द्रजलाधिपादि पूर्वपश्चिमादि । गुणशः अक्षरत्रितयक्रमेण । अष्टयुगार्णं षोडशार्णम् । आत्मसहितां युग्मस्वरान्तर्गतां मायामिति । आत्मा हंसः मायाशब्देनात्र चतुर्थस्वरो ज्ञेयः । तथा च निघण्टुमातृकायां—

प्रथमोऽष्टाक्षरो मन्त्रस्ततः कामिनि रञ्जिनि ।
स्वाहांतोष्टाक्षरः सद्भिरपरः कीर्तितो मनुः ॥ ९९ ॥
ह्रीं गौरि रुद्रदयिते योगेश्वरि सवर्म फट् ।
द्विठान्तः षोडशार्णोऽयं मन्त्रः सद्भिरुदीरितः ॥ १०० ॥
लिखित्वा भूर्जपत्रादौ यन्त्रमध्ये¹ यथाविधि ।
धारयेद्वामबाहौ वा कण्ठे वा निजमूर्द्धनि ॥ १०१ ॥

'ईस्त्रिमूर्तिर्वामनेत्रं शेखरः कौटिलस्तथा ।
वाग्मी शुद्धश्च जिह्वाख्यो मायाविष्णुः प्रकाशितः ॥' इत्युक्तेः ।

आत्मसहितयुग्मस्वरान्तर्गतमायालेखनक्रमस्तु दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्—

"हंसः पदं वामनेत्रं बिन्द्विन्दुपरिभूषितम् ।
पुनर्हंसः पदं चैतत् पञ्चार्णम्मनुमालिखेत् ॥
स्वरद्वन्द्वोदरगतं सप्तार्णं चाष्टधा भवेत् ।" इति ॥

तेन अं हंसः ईं हंसः आं इत्यादिक्रमेण केसरेषु सप्त सप्त वर्णा लेख्याः ।

प्रपञ्चसारेप्येतद् यंत्रनिर्माणमुक्तं यथा—

"अष्टाशान्तर्गताविर्हलयवरयुताच्पूर्वपाश्चात्यषट्कं
कोणोद्यत्स्वाङ्गसाष्टाक्षरयुगयुगलाष्टाक्षराख्यं बहिश्च ।
मायोपेतात् सयुग्मस्वरमिलितलसत्केसरं साष्टपत्रं
पद्मं तन्मध्यपङ्क्तित्रितयपरिलसत्पाशशक्त्यङ्कुशार्णम् ॥ १ ॥
पाशाङ्कुशावृतमनुप्रतिलोमगैश्च वर्णैः सरोजपुटितेन घटेन चापि ।
आवीतमिष्टफलभद्रघटं तदेतद्यन्त्रोत्तमन्त्विवति घटार्गलनामधेयम् ॥ २ ॥
प्राक्प्रत्यगर्गले हलमथ पुनराग्नेयमारुते च हयम् ।
दक्षोत्तरे हवार्णं नैरृत्र्यं तथैवे द्विपङ्क्तिशो विलिखेत् ॥ ३ ॥
विलिखेच्च कर्णिकायां पाशाङ्कुशसाध्यसंयुतां शक्तिम् ।
अभ्यन्तरस्थकोष्ठेस्वङ्गान्यवशेषितेषु चाष्टार्णं ॥ ४ ॥
कोष्ठेषु षोडशस्वथ षोडशवर्णं मनुं तथा मन्त्री ।
पद्मस्य केसरेषु च युगस्वरात्मान्वितां तथा मायाम् ॥ ५ ॥
एकैकेषु दलेषु त्रिशस्त्रिशः कर्णिकागतान् मंत्रान् ।
पाशाङ्कुशबीजाभ्यां प्रवेष्टयेद्बाह्यतश्च नलिनस्य ॥ ६ ॥
अनुलोमविलोमगतैः प्रवेष्टयेदक्षरैश्च तद्बाह्ये ।
तदनु घटेन सरोजस्थितेन तद्वक्त्रकेऽम्बुजं विलिखेत् ॥ ७ ॥"

सारसंग्रहे—

'घटार्गलाभिधं यंत्रं सर्वसम्पत्करं परम् ।'

१. यन्त्रमेतत् ।

वशयेत् सकलान् देवान्[1] विशेषेण महीपतीन् ।
नीलपट्टे विलिख्यैतद्गुटिकीकृत्य तत्पुनः[2] ॥ १०२ ॥
लाक्षया ताम्ररजतकाञ्चनैर्वेष्टयेत् क्रमात् ।
तत्कुम्भे न्यस्य सम्पूज्य यथावद् भुवनेश्वरीम् ॥ १०३ ॥
संस्पृश्य तज्जपेन्मन्त्रं यथाविधि[3] सहस्रकम् ।
अभिषिच्य प्रियं साध्यं बध्नीयाद्घट[4]माशिखम् ॥ १०४ ॥
कान्तिं पुष्टिं धना[5]रोग्यश्रेयांसि[6] लभते नरः ।
वाक्कायमनसा कृत्य[7] पूजयेन्नित्यमादरात् ॥ १०५ ॥
भूतप्रेतपिशाचाश्च न वीक्षितुमपि क्षमाः ।
तद्विलिख्य शिरस्त्राणे साधयेद्धारितं भटः ॥ १०६ ॥
युद्धे बहून् रिपून् हत्वा जयमाप्नोति पार्थिवः ।
वज्राङ्किते वह्निपुरद्वये तां पाशाङ्कुशाभीतिसदस्ति[8] साध्याम् ।
मध्येऽष्टकोणे पुरबाहुपद्मे[9] पुनः पुनस्तां विलिखेत् समन्तात् ॥१०८॥
भूर्जे लिखितमेतत्स्याद्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्[10] ।
आरोग्यैश्वर्यजननं युद्धेषु विजयप्रदम् ॥ १०९ ॥
लिखेत् सरोजे[11] सकलेऽमराढ्यो[12] वस्वश्रपत्रे[13] वसुधापुरस्थे ।
पाशाङ्कुशाभ्यां गुणशः प्रबोधं[14] मायां लिखेन्मध्यगतां ससाध्याम् ॥११०॥
सर्वेषां चन्द्रदं यन्त्रं[15] धारितं कुरुतेऽर्पणम्[16] ।
आरोग्यैश्वर्यसौभाग्यं विजयादीननारतम् ॥ १११ ॥ इति ॥

श्रीरुद्रयामले दशविद्यारहस्ये श्रीभुवनेश्वरीपटलं सम्पूर्णम् ॥

---

१. मर्त्यान् । २. "साध्यप्रतिकृतौ सिक्थनिर्मितायां हृदि न्यसेत् ।
पात्रे त्रिमधुरापूर्णे निक्षिप्यैनां विधानतः ॥
सम्पूज्य गन्धपुष्पाद्यैर्बलिं निक्षिप्य रात्रिषु ।
मूलमंत्रं जपेन्मन्त्री नित्यमष्टसहस्रकम् ॥
सप्ताहाद् वाञ्छितां नारीमाहरेत्स्मरविह्वलाम् ।
भूर्जपत्रे विलिख्यैतद् गुटिकीकृत्य तत्पुनः ॥" इति शारदातिलके विशेषः ।

३. दिवाकर । ४. यन्त्र । ५. धरा । ६. यशांसि । ७. भित्तौ विलिख्य तद्यन्त्रं ।
८. पाशाङ्कुशाभ्यामुदरस्थ । ९. मध्येऽथकोणेष्वथ बाह्यवृत्ते ।
१०. सर्ववश्यकरं नृणाम् । (शा० ति०) । ११. 'भूर्जे सरोजे' इत्यपि क्वचित् पाठः ।
१२. स्वरकेसराढ्ये (शा० ति०) । १३. वर्गाष्टपत्रे (शा० ति०) । १४. प्रबद्धां । (शा० ति०)
१५. सर्वोत्तममिदं यंत्रं । (शा० ति०) १६. नृणाम् ।

अथ भुवनेश्वरीपूजापद्धतिः

श्रीगणेशाय नमः

अथ पूजाविधिं वक्ष्ये सर्वकामार्थसिद्धये ।
यामज्ञात्वा न जानाति पदमव्ययमात्मनः ॥ १ ॥

तत्र श्रीमान् साधको ब्राह्मे मुहूर्ते शयनतलादुत्थाय करचरणौ प्रक्षाल्य निजासने समुपविश्य निजशिरसि श्वेतवर्णाधोमुखसहस्रदलकमलकर्णिकान्तर्गतचन्द्रमण्डलसिंहासनोपरि स्वगुरुं शुक्लवर्णं शुक्लालङ्कारभूषितं ज्ञानानन्दमुदितमानसं त्रिनयनं चतुर्भुजं ज्ञानमुद्रापुस्तकवराभयकरं वामाङ्के वामहस्तधृतकमलया रक्तवसनाभरणया स्वप्रियया दक्षभुजेनालिङ्गितं सर्वदेवदेवं सर्वतीर्थतीर्थं सर्वमङ्गलमाङ्गल्यं परमशिवस्वरूपं ध्यात्वा तच्चरणयुगलविगलदमृतधारया स्वात्मानं प्लुतं विभाव्य मानसोपचारैराध्य मंत्रं जपेत् ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह स ख फ्रें ह स क्ष म ल व र यूं ह्सौंः स्हौंः श्रीमदमुकानंदनाथश्रीपादुकां श्रीअमुकीदेव्यम्बाश्रीपादुकां च पूजयामि तर्पयामि नमः, इति पादुकामंत्रं दशधा विमृश्य दण्डवत् प्रणामं मनसा कुर्यात्तद्यथा—

नमामि सद्गुरुं शांतं प्रत्यक्षं शिवरूपिणम् ।
शिरसा योगपीठस्थं मुक्तिकामार्थसिद्धये ॥ १ ॥

श्रीगुरुं परमानन्दं वन्दाम्यानन्दविग्रहम् ।
यस्य सान्निध्यमात्रेण चिदानन्दायते वरम् ॥ २ ॥

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३ ॥

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया ।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ४ ॥

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुरेव जगत् सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ५ ॥

नमस्ते नाथ भगवन् शिवाय गुरुरूपिणे ।
विद्यावतारसंसिद्ध्यै स्वीकृतानेकविग्रह ! ॥ ६ ॥
नवाय नवरूपाय परमार्थैकरूपिणे ।
सर्वाज्ञानतमोभेदभानवे चिद्घनाय ते ॥ ७ ॥
स्वतन्त्राय दयाक्लृप्तविग्रहाय परात्मने ।
परतन्त्राय भक्तानां भव्यानां भव्यरूपिणे ॥ ८ ॥
ज्ञानिनां ज्ञानरूपाय प्रकाशाय प्रकाशिनाम् ।
विवेकिनां विवेकाय विमर्शाय विमर्शिणाम् ॥ ९ ॥
पुरस्तात् पार्श्वयोः पृष्ठे नमस्कुर्यामुपर्यधः ।
सदा मच्चित्तरूपेण[1] विधेहि भवदासनम् ॥ १० ॥

इति श्रीगुरुं प्रणम्य सुप्रसन्नं विभाव्य मनसा तदाज्ञां गृहीत्वा मूलाधारे लिङ्गगुहामध्ये योनिस्थाने स्वर्णवर्णे चतुर्दलकमलान्तर्गतत्रिकोणान्तर्गतशृङ्गाटकपीठोपरि परां शक्तिं कुण्डलिनीं सर्पाकारामूर्ध्वमुखीं सार्द्धत्रिवलयां बिसतन्तुतनीयसीमुद्यद्दिनकरसहस्रभास्वरां विद्युत्कोटिसन्निभां पञ्चाशद्वर्णविग्रहामष्टात्रिंशत्कलारूपिणीं त्रिधामधामानं सर्वदेवदेवीं सकलमंत्रान्तस्सुप्तां विभाव्य गुरूपदिष्टनिजसहजनादेन सचैतन्यां विधाय हुमिति शब्ददण्डेन प्रबोधयित्वा[2] तत्र चतुर्दलेषु वं नमः शं नमः षं नमः सं नमः इति पत्रेषु प्रादक्षिण्येन प्रपूज्य मध्ये मूलेन च सम्पूज्य हंस इति मंत्रेण सर्वत्रोत्थाप्य कमलात् कमलं नीत्वा स्वाधिष्ठाने षड्दले कमले लिङ्गमूले विद्रुमवर्णे तामारोह्य तत्र बं नमः भं नमः मं नमः यं नमः रं नमः लं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य ततो हंस इति अनेन सर्वत्रोत्थाप्य नाभौ मणिपूरके नीलवर्णे दशदले कमले तां नीत्वा तत्र डं नमः ढं नमः णं नमः तं नमः थं नमः दं नमः धं नमः पं नमः फं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य ततो वक्षस्यनाहते पिङ्गलवर्णे द्वादशदलकमले तां नीत्वा तत्र कं नमः खं नमः गं नमः घं नमः ङं नमः चं नमः छं नमः जं नमः झं नमः ञं नमः टं नमः ठं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य, ततो विशुद्धौ कण्ठे धूम्रवर्णे षोडशदलकमले तां नीत्वा तत्र अं नमः आं नमः इं नमः ईं नमः उं नमः ऊं नमः ऋं नमः ॠं नमः

---

१. ह्यचिन्त्यरूपेण । २. यद्यपि "प्रबोध्य" इत्येव शुद्धस्ततोऽपि तन्त्रशास्त्राचाराद् यथास्थितं गृहीतः ।

लृं नमः लॄं नमः एं नमः ऐं नमः ओं नमः औं नमः अः नमः अं नमः इति पत्रेषु मध्ये मूलेन च सम्पूज्य, ततो भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रे विद्युद्वर्णे द्विदलकमले तां नीत्वा तत्र हं नमः क्षं नमः इति पत्रयोर्मध्ये मूलेन च सम्पूज्य, ततो ब्रह्मरंध्रगतसहस्रदल-कमलकर्णिकामध्यगतत्रिकोणान्तर्गतपरमप्रकाशमयबिन्दुरूपपरमशिवेन सहैकतां नीत्वा ततः स्रवता परमामृतेन तां संतर्प्य ततो नादश्रवणतत्परो मुहूर्तमेकं लयं विभाव्य अवरोहसमये सर्वत्र सोहमिति मंत्रेण कमलात् कमलेऽवारोह्य मनसाऽऽज्ञाचक्रादिक्रमेण तेषु तेषु कमलेषु तैस्तैरक्षरैः सम्पूज्य तत्तदाधारतत्तद्वर्णतत्तदधिदेवतास्तेनामृतेन सन्तर्प्य तथैव स्वस्थाने मूलाधारे संस्थाप्य प्रणमेत्—

प्रकाशमाना प्रथमे प्रयाणे प्रतिप्रयाणेऽप्यमृतायमानाम् ।
अन्तः पदव्यामनुसञ्चरन्तीमानन्दरूपामबलां प्रपद्ये ॥

इति देवीरूपं ध्यात्वा वक्ष्यमाणविधानेन प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय मूलमंत्रं यथाशक्ति जप्त्वा पुनरपि ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय जपं समर्प्य निजकृत्यं समर्पयेत्—

अहं देवी न चान्योऽस्मि ब्रह्मैवाहं न शोकभाक् ।
सच्चिदानन्दरूपोऽहं स्वात्मानमिति चिन्तयेत् ॥

प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरन्ततः ।
यत्करोमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम् ॥

इति समर्प्य स्वकार्यानुष्ठानाय—

त्रैलोक्यचैतन्यमये परेशि भुवनेश्वरि त्वच्चरणाज्ञयैव
प्रातः समुत्थाय तव प्रियार्थं संसारयात्रामनुवर्तयिष्ये ॥१॥

संसारयात्रामनुवर्त्तमानं त्वदाज्ञया श्रीभुवनेश्वरीशि ।
स्पर्द्धातिरस्कारकलिप्रमादभयानि मां माभिभवन्तु मातः ॥२॥

जानामि धर्मं न च मे प्रवृत्तिर्जानाम्यधर्मं न च मे निवृत्तिः ।
त्वया हृषीकेशि हृदिस्थयाऽहं यथा नियुक्तोस्मि तथाऽऽचरामि ॥३॥

इति देव्याज्ञां प्रार्थ्य अजपाजपं सहजसिद्धं तत्तद्देवताभ्यः संकल्पं समर्पयेत् । अद्य पूर्वेद्युरहोरात्राचरितमुच्छ्वासनिःश्वासात्मकं षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रसंख्या-

क्रमजपाजपं मूलाधारस्वाधिष्ठानमणिपूरकानाहतविशुद्धाज्ञाब्रह्मरंध्रेषु चतुर्दलषड्-दलदशदलद्वादशदलषोडशदलद्विदलसहस्रदलेषु स्वर्णविद्रुमनीलपिङ्गलधूम्रविद्यु-त्कर्पूरवर्णेषु स्थिताभ्यो गणपतिब्रह्मविष्णुरुद्रजीवात्मपरमात्मश्रीगुरुपादुकाभ्यो यथाभागशः समर्पयामि नमः ।

षट्शतं गणनाथस्य षट्सहस्रं पितामहे ।
षट्सहस्रं गदापाणौ षट्सहस्रं पिनाकिने ॥ १ ॥
सहस्रमात्मने दद्यात् सहस्रं परमात्मने ।
सहस्रं गुरवे दद्याद् एतत् संख्यासमर्पणम् ॥ २ ॥

इति संकल्पं कृत्वा समर्पयेत्, यथा—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मूलाधारचक्रस्थाय महागण-पतये अजपाजपानां षट्शतानि समर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं स्वाधिष्ठानचक्रस्थाय ब्रह्मणे अजपाजपानां षट्सहस्राणि समर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मणिपूरचक्रस्थाय विष्णवे अजपाजपानां षट्सहस्राणि समर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनाहतचक्र-स्थाय रुद्राय अजपाजपानां षट्सहस्राणि समर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं विशुद्धि-चक्रस्थाय जीवात्मने अजपाजपानां सहस्रमेकं समर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आज्ञाचक्रस्थाय परमात्मने अजपाजपानां सहस्रमेकं समर्पयामि नमः । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सहस्रदलकमलकर्णिकामध्ये वर्तिन्यै श्रीगुरुपादुकायै अजपाजपानां सहस्रमेकं समर्पयामि नमः । इत्यजपाजपं समर्प्य अजपामन्त्रेण प्राणायामं विधाय संकल्पं कुर्यात् "ॐ अस्य श्रीअजपानामगायत्रीमंत्रस्य हंसऋषिरव्यक्तगायत्री छन्दः श्रीपरमहंसो देवता हं बीजं सः शक्तिः सोहं कीलकं ॐकारतत्वं नभः स्थानं हैमो वर्ण उदात्तस्वरो मम मोक्षार्थे जपे विनियोगः ।" इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा न्यासं कुर्यात्, ऐं ह्रीं श्रीं हंसात्मने ऋषये नमः शिरसि, अव्यक्तगायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीपरमहंस-देवतायै नमो हृदि, हं बीजाय नमो गुह्ये, सः शक्तये नमः पादयोः, सोहं कीलकाय नमो नाभौ, ॐ कार तत्त्वाय नमो हृदये, उदात्तस्वराय नमः कण्ठे, नभसे स्थानाय नमो मूर्द्धनि, हेमाय वर्णाय नमः सर्वाङ्गे, इति विन्यस्य करषडङ्गन्यासौ च कुर्यात् ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सां सूर्यात्मने अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सीं सोमात्मने तर्जनीभ्यां स्वाहा, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सूं निरञ्जनात्मने मध्यमाभ्यां नमः वषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सैं निराभासात्मने अनामिकाभ्यां हुं, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं तनुसूक्ष्मा-प्रचोदयात्मने कनिष्ठिकाभ्यां वौषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सः अव्यक्तबोधात्मने करतल

करपृष्ठाभ्यां फट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सूं निरञ्जनात्मने शिखायै वषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सैं निराभासात्मने कवचाय हुं, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्सौं तनुसूक्ष्मप्रचोदयात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ह्ंसः अव्यक्तबोधात्मने अस्त्राय फट्, इति करषडङ्गन्यासौ च कृत्वा ध्यानं कुर्यात्—

द्यां मूर्द्धानं यस्य विप्रा वदंति खं वै नाभिं चंद्रसूर्यौ च नेत्रे ।
दिग्भिः श्रोत्रे यस्य पादौ क्षितिश्च ध्यातव्योऽसौ सर्वभूतान्तरात्मा ॥

इति विराट्स्वरूपं ध्यात्वा प्राणवायोर्निर्गमप्रवेशात्मकं ह्ंसः पदं पञ्चविंशतिवारं तदनुसंधाय जप्त्वा समर्प्य गुरूपदिष्टमार्गेण नादानुसंधानपूर्वकं निरस्तसमस्तोपाधिना केनापि चिद्विलासेन प्रवर्तमानोऽस्मीति विभाव्य स्वकार्यानुष्ठानाय—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले ।
विष्णुपत्नि नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इति भूमिं संप्रार्थ्य श्वासानुसारेण तत्पदं निधाय बहिर्गत्वा मलमूत्रोत्सर्गं कृत्वा यथोक्तप्रकारेण शौचं विधाय दन्तधावनं च कृत्वा 'क्लीं कामदेवाय सर्वजनप्रियाय नम इति' नद्यादौ गत्वा वैदिकं स्नानं निर्वर्त्य तान्त्रिकमारभेत् ॥ तत्रादौ मूलमात्मतत्वाय स्वाहा मूलं विद्यातत्त्वाय स्वाहा, मूलं शिवतत्त्वाय स्वाहा इति आचम्य ॐ अद्येत्यादि अमुकमासे अमुकपक्षेऽमुकतिथावमुकवासरेऽमुकनक्षत्रयोगकरणमुहूर्तेषु अमुक शर्माऽहं श्रीपरदेवताप्रीतये तान्त्रिकस्नानविधिमहं करिष्ये इति संकल्पं कृत्वा जले त्रिकोणचक्रं विलिख्य सूर्यमण्डलात्—

ॐ गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति ।
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

इत्यनेनाङ्कुशमुद्रया तीर्थमावाह्य पुरः कल्पिततीर्थे संयोज्याचम्य मूलेनात्मानं संप्रोक्ष्य मूलं पठन् हृदयकमलमध्याद् देवीं तीर्थमध्ये समावाह्य ध्यात्वा तत्र कुम्भमुद्रया देवीं त्रिभिरभिषिञ्च्य स्वहृदि संस्थाप्य सप्तछिद्राणि निरुद्ध्य त्रिभिर्निमज्योन्मज्जेत् ॥ इति स्नानम् ॥

अथ संध्या ।। तीरोपरि पूर्ववदाचम्य स्वमूलप्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय पूर्ववज्जले चतुष्कोणचक्रं विलिख्य तीर्थमावाह्य वामहस्ते जलं निधाय दक्षहस्तेनाच्छाद्य लं वं रं यं हं इत्यनेन त्रिरभिमन्त्र्य मूलमुच्चरंस्तत्त्वमुद्रया मूर्द्धनि सप्तधा मूलेन चाभ्युक्ष्य शेषजलं दक्षहस्तेन निधाय तेजोरूपं ध्यात्वा इडयाऽऽकृष्य देहान्तःपापं प्रक्षाल्य कृष्णवर्णं तज्जलं पापरूपं विचिन्त्य पिङ्गलया विरेच्य पुरः कल्पितवज्रशिलायां फडिति मंत्रेण निक्षिपेत् । ततोऽर्घ्यपात्रमुद्धृत्य ॐ ह्रां ह्रीं हं सः श्री (कुल) मार्तण्डभैरवाय प्रकाशशक्तिसहिताय इदमर्घ्यं परिकल्पयामि नमः, इत्यनेन कुलसूर्याय त्रिरर्घ्यं दत्वा स्वहृदयकमले देवीं सूर्यमण्डले नीत्वा तत्र विधिवद्ध्यात्वा मूलगायत्रीं पठेत्, धनदायै विद्महे रतिप्रियायै धीमहि ह्रीं तन्नः स्वाहा प्रचोदयात् इति त्रिर्जप्त्वा गायत्रीमूलं च जपन् साङ्गायै सपरिवारायै सवाहनायै शक्तिसहितायै श्रीभुवनेश्वर्यै इदमर्घ्यं परिकल्पयामि नमः स्वाहा, इत्यनेन मूलदेव्यै अर्घ्यं दत्त्वा यथाशक्ति मूलं च जप्त्वा ततः प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्ग-न्यासान् विधाय जपं समर्प्य सूर्यमण्डलाद्देवीतेजः स्वस्थाने समानयेत् ।। इति संध्या ।।

अथतर्पणम् ।। पूर्ववदाचम्य प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय पुनस्तीर्थमावाह्य मूलेन जलं सप्तधाऽमृतमुद्रयाऽमृतीकृत्य तत्रजले मूलयन्त्रं संस्थाप्य लिखित्वा तत्र देवीं स्वहृदयात् सपरिवारामानीय षडङ्गमंत्रयोगेन सकलीकृत्य कुण्डलिन्याः प्रयोगेणामृतेनाभिषिञ्च्य विधिवद्गन्धादिभिः सम्पूज्य गुरुं तर्पयेत्, ऐशान्यां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं श्रीमच्छ्री अमुकानंदनाथस्तृप्यतामित्यनेन त्रिःसन्तर्प्य, आग्नेय्यां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमगुरुस्तृप्यतामिति त्रिर्नैर्ऋत्यां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परापरगुरु-स्तृप्यतामिति त्रिर्वायव्यां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं परमेष्ठिगुरुस्तृप्यतामिति त्रिःपरितः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं दिव्यौघा गुरवस्तृप्यन्तामिति त्रिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सिद्धौघा गुरवस्तृप्यन्तामिति त्रिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं मानवौघा गुरवस्तृप्यन्तामिति त्रिः सन्तर्प्य पुनरपि पूर्वोक्तप्रकारेण मूलदेवीं त्रिधा संतर्प्य यंत्रो क्तपरिवारान् क्रमेण संतर्प्य प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्ग-न्यासान् विधाय मूलदेवीं विसृज्य स्वहृदि संस्थाप्य तीर्थं च स्वस्थाने सूर्यमण्डले विसर्जयेत् ।। इति तर्पणम् ।।

अथ गृहागमनम् ।। यागगेहमागत्य जलादिना द्वारदेवताः प्रोक्ष्य गन्धाक्षतादिभिः पूजयेत्, दक्षे ॐ धं धात्रे नमः, वामे ॐ विं विधात्रे नमः, दक्षे ॐ गं गङ्गायै नमः, वामे ॐ यं यमुनायै नमः, ऊर्द्ध्वे ॐ ग्लौं गणपतये नमः, ॐ श्रीं द्वारश्रियै नमः,

अधः ॐ दं देहल्यै नमः, ऊर्द्ध्वे ॐ वं वास्तुपुरुषाय नमः, अधः अनन्ताय नमः इति द्वारं संपूज्य यागगेहान्तरे अक्षतान् विकीर्य अञ्जलिं कृत्वा—

आरब्धं यन्मया कर्म यत्करिष्यामि यत्कृतम् ।
तत्सर्वं कृपया देवि निर्विघ्नं कुरु मे सदा ॥

इति नमस्कृत्य, वहच्छ्वासपादपुरःसरं वामाङ्गसंकोचेन गृहमध्ये च वेशयेत् वास्त्वधिपतये नमः ईशाने, दीपनाथाय नमः

दीपनाथ गुरो स्वामिन् देशिकस्यात्मनायक ।
भुवनेश्वर्याश्च पूजार्थमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

ईशाने घृतदीपं प्रज्वाल्य, नैर्ऋते भैरवाय नमः

अतितीक्ष्ण[1] महाकाय कल्पान्तदहनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यं अनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

नैर्ऋते तैलदीपं प्रज्वाल्य इति संप्रार्थ्य पूजास्थानं द्विधा विभाव्य स्वासनस्थानाय नमः, देव्यासनस्थानं द्विधा विभाव्य देव्यासनस्थानाय नमः, इति स्थानं सम्पूज्य । अथासन प्रकारः, ॐ कूर्मासनाय नमः हुं आधारशक्तये नमः ॐ ब्रह्मासनाय नमः, ॐ कमलासनाय नमः, ॐ विमलासनाय नमः, ॐ अनन्तासनाय नमः, ॐ ब्रह्मपद्मासनाय नमः, ॐ गरुडासनाय नमः, ॐ योगासनाय नमः, ॐ श्रीपरपरात्परसिंहासनाय नमः, इति गन्धाक्षतैः सम्पूज्य ॐ पृथिवीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः कूर्मो देवता सुतलं छन्द आसने विनियोगः, इति संकल्प्य भूमौ हस्तं दत्त्वा मंत्रं पठेत्—

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम् ॥ इति

ॐ भूम्यै नमः, इत्यनेन कम्बलाद्यासनमास्तीर्य तदुपरि षट्कोणेषु भूबीजं लिखित्वा मध्ये हुंकारं विलिख्य तत्रोपविश्य, ततो ब्रह्मरंध्रे संघट्टमुद्रया गुरुं संप्रार्थ्य गुं गुरुभ्यो नमः, पं परमगुरुभ्यो नमः, पं परात्परगुरुभ्यो नमः, पं परमेष्ठिगुरुभ्यो नम इति प्रणम्य दक्षे गं गणपतये नमः, वामे दुं दुर्गायै नमः, पृष्ठे भैरवाय नमः, अग्रे बटुकहनुमते नमः, हृदि श्रीभुवनेश्वर्यै नम इति प्रणम्य ।

१, तीक्ष्णदंष्ट्र महाकाय, इति पाठान्तरम् ।

अथ पूर्वादि दिग्बन्धनम् पूर्वे इन्द्राय नमः, आग्नेये अग्नये नमः, दक्षिणे यमाय नमः, नैर्ऋत्ये राक्षसाय नमः, पश्चिमे वरुणाय नमः, वायव्ये पवनाय नमः, उत्तरे कुबेराय नमः, ईशाने ईश्वराय नमः, ऊर्ध्वं ब्रह्मणे नमः, पाताले अनन्ताय नमः, तालत्रयं दत्त्वा स्वात्मानं देवतारूपं भावयेत्, सर्वसाधनं कुर्यात् ।

अथ प्रयोगः, अस्य (......) श्रीभुवनेश्वरीप्रीत्यर्थं जपार्चनहोमान् करिष्ये । स्वगुरुं नत्वा 'पार्श्वघातकरास्फोटैरूर्ध्ववक्त्रस्तु मांत्रिकः' सर्वभूतानि संत्रास्य—

'अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भुवि संस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥
अपसर्पन्तु ते भूता पिशाचा सर्वतो दिशम् ।
एतेषां[1] चाविरोधेन ब्रह्मकर्म समारभे ॥'

स्वस्य चिन्मयताभावेन, एवं भूतनाश इति तथा कृत्वा । अथ भूतशुद्धिः, तद्यथा पादादिजानुपर्यन्तं भूमण्डलं चतुरस्रं पीतवर्णं, जान्वादिनाभ्यन्तं जलमण्डलं अर्द्धचन्द्राकारं श्वेतवर्णं, नाभ्यादिहृदयान्तं अग्निमण्डलं त्रिकोणं रक्तवर्णं ध्यात्वा, हृदयादिभ्रूमध्यान्तं वायुमण्डलं षट्कोणं धूम्रवर्णं ध्यात्वा, भ्रूमध्यादि ब्रह्मरंध्रान्तं आकाशमण्डलं वृत्तं कृष्णवर्णं ध्यात्वा, वामकुक्षौ पापपुरुषं ध्यायेत्—

ब्रह्महत्या शिरःस्कन्धं स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥
तत्संयोगपदद्वंद्वमङ्गप्रत्यङ्गपातकम् ।
उपपातकरोमाणं रक्तश्मश्रुविलोचनम् ॥
खड्गचर्मधरं पापमङ्गुष्ठपरिमाणकम् ।
अधोमुखं कृष्णवर्णं वामकुक्षौ विचिन्तयेत् ॥
कनिष्ठिकाऽनामिकाऽङ्गुष्ठैः यन्नासापुटधारणम् ।
कुम्भकं रेचकं चैव पुनः कुम्भकरेचयेत् ॥

षट्कोणं वायुमण्डलात् यं रं वं लं हं आं ह्रीं क्रों एवं बीजेन जपोद्भूतं महारूपं वायुं विभाव्य—

---

१. सर्वेषामिति साधुः पाठः ।

अष्टौ बीजप्रमाणेन वायुबीजद्वयं चरेत् ।
एवं नु विबुधैर्ज्ञातं प्राणायामः स उच्यते ॥
वामेन पूरकं कृत्वा कुम्भं दक्षिणरेचकम् ।
पुनर्दक्षिणरेचकं च कुम्भं वामेन रेचयेत् ॥
पुनर्वामेन पूरकं च कुम्भदक्षिणरेचकम् ।
एवंविधि दृढीकृत्य शुद्धिप्राणप्रतिष्ठितम् ॥

इति वचनात् । स चाह, यं बीजेन षोडशवारं पूरकेण संशोष्य, रं ६४ चतुःषष्टिवारं कुम्भकेन संदह्य, वं ३२ द्वात्रिंशद्वारं रेचकेन भस्म निःसारयेत्, वं १६ षोडशवारं पूरकेण संस्नाप्य, लं ६४ चतुःषष्टिवारं कुम्भकेन पिण्डीकरणं, हं ३२ द्वात्रिंशद्वारं रेचकेन प्राणस्थापनं, आं १६ षोडशवारं पूरकेण दृढीकृत्य ह्रीं ६४ चतुःषष्टिवारं कुम्भकेन शुद्धीकरणं क्रोंबीजेन ३२ द्वात्रिंशद्वारं रेचकेण प्रतिष्ठाप्य इति क्रमः ॥ एवं प्राणायामः, वं संप्लाव्य लं घनीकृत्य हं इति देहावयवान् ध्यात्वा जीवं पूर्णात्मभावं ह्रीं सोहं हंसः परमात्मनि स्वस्थाने संस्थाप्य परमात्मनः सकाशात् प्रकृतिः प्रकृतेर्महत्तत्त्वं महत्तत्त्वादहङ्कारस्तस्मादाकाशः, आकाशाद्वायुर्वायोरग्निरग्नेरापः अद्भ्यः पृथ्वी इति क्रमेण यथास्थाने भूतानि संस्थाप्य सोहमिति मंत्रेण कुण्डलिनीममृतलोलीभूतां पञ्चभूतानि जीवात्मानञ्च ब्रह्मपथे स्वस्वस्थाने स्थापयेत् । इति भूतशुद्धिः ॥

अथ प्राणप्रतिष्ठापनम् ॥ ततो देवीरूपमात्मानं विचिन्त्य हृदि हस्तं निधाय प्राणप्रतिष्ठां कुर्यात्, ॐ आँ ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः मम प्राणा इह प्राणा इह ॥ १२ ॥ मम जीव इह स्थित इह स्थितः ॥ १२ ॥ मम सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि इह स्थितानि ॥ १२ ॥ मम वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इति प्राणप्रतिष्ठां विधाय स्वमूलमंत्रऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विदधीत–

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीमन्त्रस्य श्रीशक्तिर्ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीभुवनेश्वरी देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः, इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा शक्तिऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीभुवनेश्वरीदेवतायै नमो हृदि, ह्रीं बीजाय नमो गुह्ये, श्रीं शक्तये नमः पादयोः, क्लीं कीलकाय नमो नाभौ जपे विनियोगः । सर्वाङ्गे मूलेन नवधाव्यापकं न्यसेत् ।

अथ मंत्रन्यासः ।। ॐ हृल्लेखायै नमः शिरसि, ॐ ऐं गगनायै नमो मुखे, ॐ रक्तायै नमो हृदये, ॐ इं करालिकायै नमो गुह्ये, ॐ महोच्छुष्मायै नमः पदद्वये, ॐ ऐं जुं उं हृल्लेखायै नमः सर्वाङ्गे इति विन्यस्य ॐ हृल्लेखायै नम ऊर्द्ध्वमुखे, ॐ ऐं गगनायै नमः पूर्वमुखे, ॐ जुं रक्तायै नमो दक्षिणमुखे, ॐ इं करालिकायै नम उत्तरमुखे, ॐ महोच्छुष्मायै नमः पश्चिममुखे इति विन्यस्य करषडङ्गन्यासान् कुर्यात् । ॐ ह्रां अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः ॐ ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ॐ ह्रैं कवचाय हुं, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ह्रः अस्त्राय फट्, इत्यूर्ध्वोर्ध्वतालत्रयं दत्त्वा पूर्ववद्दिग्बन्धनं कृत्वा, भाले ॐ ब्रह्मगायत्रीभ्यां नमः, दक्षकपोले सावित्रीविष्णुभ्यां नमः, वामगण्डे वागीश्वराभ्यां नमः, वामकर्णे ॐ श्रीसहितधनपतये नमः, मुखे ॐ रतिसहितमदनाय नमः, सव्यकर्णे ॐ पुष्टिसहितगणपतये नमः, दक्षकर्णे ॐ शङ्खनिधये नमः, वामकर्णे ॐ पद्मनिधये नमः, मुखे मूलं न्यसेत्, कण्ठमूले ॐ गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः, दक्षस्तने ॐ सावित्रीसहितविष्णवे नमः, वामस्तने ॐ वागीश्वरीसहितमहेश्वराय नमः, दक्षांसे ॐ श्रीसहितधनपतये नमः, वामांसे ॐ रतिसहितमन्मथाय नमः, पादयोः ॐ शङ्खनिधये नमः ॐ पद्मनिधये नमः, नाभौ मूलं न्यसेत्, भाले ॐ ब्राह्म्यै नमः, वामांसे ॐ माहेश्वर्य्यै नमः, वामपार्श्वे ॐ कौमार्य्यै नमः, उदरे ॐ वैष्णव्यै नमः, दक्षपार्श्वे ॐ वाराह्यै नमः, दक्षांसे ॐ इन्द्राण्यै नमः, गलपृष्ठे ॐ चामुण्डायै नमः, हृदि ॐ महालक्ष्म्यै नमः, मूलेन नवधा व्यापकं न्यसेत् ।

अथ मातृकान्यासः ।। ॐ अस्य श्रीमातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः, गायत्री छन्दः, श्रीमातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः, अव्यक्तं कीलकं मम श्रीभुवनेश्वर्य्यङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः, इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा न्यसेत् । ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्रह्मणे ऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीमातृकासरस्वतीदेवतायै नमो हृदि, हल्भ्यो बीजेभ्यो नमो गुह्ये, स्वरेभ्यः शक्तिभ्यो नमः पादयोः, अव्यक्ताय कीलकाय नमो नाभौ मम श्रीभुवनेश्वर्यङ्गत्वेन न्यासे विनियोगः सर्वाङ्गे । इति ऋष्यादिन्यासः । अथ करषडङ्गन्यासौ कुर्यात्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं कं ५ आं अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इं चं ५ इं तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं उं

टं ५ ऊं मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ऐं श्रीं ह्रीं ऐं तं ५ ऐं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऊं पं ५ ऊं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं यं १० अं करतलकर-पृष्ठाभ्यां नम इति करन्यासः ॥ अथ षडङ्गन्यासः ॥ ॐ ऐं श्रीं ह्रीं अं कं ५ आं हृदयाय नमः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इं चं ५ इं शिरसे स्वाहा, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऊं टं ५ ऊं शिखायै वषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐं तं ५ ऐं कवचाय हुं, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऊं पं ५ ऊं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं यं १० अं अः अस्त्राय फट्, इति षडङ्ग-न्यासः । ध्यानम्—

ॐ व्योमेन्द्वौ रसनार्णकर्णिकमचां द्वन्द्वैः स्फुरत्केशरं
पत्रान्तर्गतपञ्चवर्गयशलार्णादित्रिवर्गं क्रमात् ।
आशास्वस्त्रिषु लान्तलाङ्गलियुजा क्षोणीपुरेणावृतं
पद्मं कल्पितमत्र पूजयतु तां वर्णात्मिकां देवताम्[1] ॥

अथ ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् पूर्ववत् कृत्वा न्यसेत् अं नमः, आं नमः, इं नमः, ईं नमः, उं नमः, ऊं नमः, ऋं नमः, ॠं नमः, ऌं नमः, ॡं नमः, एं नमः, ऐं नमः, ओं नमः, औं नम, अं नमः, अः नमः, इति कण्ठस्थाने षोडशदले । कं नमः, खं नमः, गं नमः, घं नमः, ङं नमः, चं नमः, छं नमः, जं नमः, झं नमः, ञं नमः, टं नमः, ठं नमः इत्यनाहते द्वादशदले । डं नमः ढं नमः, णं नमः, तं नमः, थं नमः दं नमः, धं नमः, नं नमः, पं नमः, फं नमः इति मणि-

---

१. व्योम हः । इन्दुः सः । औः स्वरूपम् । रसनार्णो विसर्गः । व्योमादिः सचतुर्दशस्वरविसर्गान्तः- स्फुरत्कर्णिकमित्युक्तेः । अचां स्वराणाम् । अत्र केसरेषु स्वरलिखनञ्च । अग्रपत्रादिकर्णिकाभि-मुखत्वेन वेति ज्ञेयम् । आशासु दिक्षु । अस्त्रिषु कोणेषु लान्तो वः । लाङ्गुली ठः । अनयो रेखा सँल्लग्नतया लिखनं ज्ञेयं तदुक्तं दक्षिणामूर्तिसंहितायाम्-(सरस्वतीभवनप्रकाशितायाम्)

चतुरस्रं ततः कुर्यात् सिद्धिदं दिक्षु सँल्लिखेत् ।
ठकाराणां चतुष्कञ्च रेखान्तं बाह्यतस्ततः ॥
वारुणञ्च समालिख्य देवीमावाहयेत् सुधीः । इति ॥

अत्र पूजायन्त्रेऽपि अक्षरादिलिखनस्योक्तेः । केषाञ्चिन्मते इदमेव धारणयन्त्रमिति सूचयति । पद्ममिति श्वेतं स्मरेत् पद्मं तथा सितमित्युक्तेः । तेन श्वेतकमलासना ध्येयेत्यर्थः । इति शारदातिलक-पदार्थादर्शे ।

पद्यस्यास्य चतुर्थे पादे—

'वर्णाब्जं शिरसि स्थितं विषगदप्रध्वंसि मृत्युञ्जयेत्' इत्यपि पाठः प्राप्यते क्वचित् ।

पूरके दशदले । बं नमः, भं नमः, मं नमः, यं नमः, रं नमः, लं नमः, इति स्वाधिष्ठाने षड्दले । वं नमः, शं नमः, सं नमः इति मूलाधारे चतुर्दले । हं नमः, क्षं नमः इत्याज्ञाचक्रे द्विदले ॥ इत्यन्तर्मातृकान्यासः ॥

अथ बहिर्मातृकान्यासः ॥ ॐ अस्य श्रीबहिर्मातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः श्रीबहिर्मातृका सरस्वती देवता हलो बीजानि स्वराः शक्तयः अव्यक्तं कीलकं मम श्रीभुवनेश्वर्यङ्गत्वेन बहिर्मातृकान्यासे विनियोगः, इति कृताञ्जलिः स्मृत्वा ऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् पूर्ववत् कृत्वा न्यसेत्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अं नमः शिरसि ४ आं नमो मुखवृत्ते ४ इं नमो दक्षनेत्रे ४ ईं नमो वामनेत्रे ४ उं नमो दक्षकर्णे ४ ऊं नमो वामकर्णे ४ ऋं नमो दक्षनासिकायां ४ ॠं नमो वामनासिकायां ४ ऌं नमो दक्षकपोले ४ ॡं नमो वामकपोले ४ एं नम ऊर्द्ध्वोष्ठे ४ ऐं नमः अधरोष्ठे ४ ओं नमः ऊर्द्ध्वदन्तेषु ४ औं नमः अधोदन्तेषु ४ अं नमो मूर्द्ध्नि ४ अः नमो ललाटे ४ कं नमो दक्षस्कन्धे ४ खं नमः कूर्परे ४ गं नमो मणिबन्धे ४ घं नमोऽङ्गुलीमूले ४ ङं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ चं नमो वामस्कन्धे ४ छं नमः कूर्परे, जं नमो मणिबन्धे ४ झं नमोऽङ्गुलीमूले ४ ञं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ टं नमो दक्षजङ्घायां ४ ठं नमो जानुनि ४ डं नमो गुल्फे ४ ढं नमोऽङ्गुलीमूले ४ णं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ तं नमो वामजङ्घायां ४ थं नमो जानुनि ४ दं नमो गुल्फे ४ धं नमोऽङ्गुलीमूले ४ नं नमोऽङ्गुल्यग्रे ४ पं नमो दक्षपार्श्वे ४ फं नमो वामपार्श्वे ४ बं नमः पृष्ठे ४ भं नमो नाभौ ४ मं नम उदरे ४ यं त्वगात्मने नमो हृदये ४ रं असृगात्मने नमो दक्षांसे ४ लं मांसात्मने नमः ककुदि ४ वं मेदआत्मने नमो वामांसे ४ शं अस्थ्यात्मने नमो हृदादिदक्षकरान्तं ४ षं मज्जात्मने नमो हृदादिवामकरान्तं ४ सं शुक्रात्मने नमो हृदादिदक्षपादान्तं ४ हं प्राणात्मने नमो हृदादिवामपादान्तं ४ ळं जीवात्मने नमः पादादिहृदन्तं, ४ क्षं परमात्मने नमो हृदादिमूर्द्धान्तं, इति बहिर्मातृकान्यासः[1] ॥ अथ मातृकाध्यानम्—

पञ्चाशद्वर्णरूपाञ्च कपर्दशशिभूषणाम् ।
शुद्धस्फटिकसंकाशां शुद्धक्षौमविराजिताम् ॥
मुक्तारत्नस्फुरद्भूषां जपमालां कमण्डलुम् ।
पुस्तकं वरदानञ्च बिभ्रतीं परमेश्वरीम् ॥

---

१. स्तोत्रे १७ पृष्ठे २३, २४ श्लोकौ द्रष्टव्यौ ।

एवं मातृकां ध्यात्वा विद्यान्यासं कुर्यात्, ऐं नमो मणिबन्धे, क्लीं नमस्तले, सौं नमोऽङ्गुल्यग्रे इति दक्षकरे । ऐं नमो मणिबन्धे, क्लीं नमस्तले, सौं नमोऽङ्गुल्यग्रे इति वामकरे । ऐं नमो दक्षस्कंधे, क्लीं नमः कूर्परे, सौं नमः पाणौ, ऐं नमो दक्षजङ्घायां, क्लीं नमो जानुनि, सौं नमः पादाग्रे, ऐं नमो वामजङ्घायां, क्लीं नमो जानुनि, सौं नमः पादाग्रे ॥ इति विद्यान्यासः ॥

अथान्तर्यजनं—

मूलाधारे मूलविद्यां विद्युत्कोटिसमप्रभाम् ।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम् ॥
बिसतन्तुस्वरूपां तां विन्दुत्रिवलयां प्रिये ।
ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन सहजेन वरानने ॥
मूलशक्तिदृढत्वेन मध्यशक्तिप्रबोधतः ।
परमानन्दसन्दोहामात्मानमिति चिन्तयेत् ॥

इत्याद्यन्तर्यजनं कृत्वा—

अथ पीठन्यासं कुर्यात्, ॐ ऐं श्रीं ह्रीं आधारशक्तये नमः, प्रकृत्यै नमः, मण्डूकाय नमः, कमठाय नमः पृथिव्यै नमः, सुधाम्बुधये नमः, मणिद्वीपाय नमः, चिन्तामणिगृहाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, मणिद्वीपाय नम इत्युपर्युपरि दिक्षु नानामुनिगणेभ्यो नमः, नानावेदेभ्यो नमः दक्षांसे धर्माय नमः, वामांसे ज्ञानाय नमः, वामोरौ वैराग्याय नमः, दक्षोरौ ऐश्वर्याय नमः, दक्षकुक्षौ अधर्माय नमः, दक्षपृष्ठे अज्ञानाय नमः, वामपृष्ठे अवैराग्याय नमः, वामकुक्षौ अनैश्वर्याय नमः, पुनरुपर्युपरि शेषाय नमः, हृदि पद्माय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकृतिमय-केशरेभ्यो नमः, पञ्चाशद्बीजभूषितकर्णिकायै नमः, तदुपरि सूर्यमण्डलाय नमः, सोममण्डलाय नमः, वैश्वानरमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः । पत्रेषु, वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्र्यै नमः, अम्बिकायै नमः, इच्छायै नमः, ज्ञानायै नमः, क्रियायै नमः, कुब्जिकायै नमः, चित्रायै नमः, विषघ्निकायै नमः, ऐं अपरायै नमः, ऐं ऐं परायै नमः, हसौः सदाशिवमहाप्रेत-पद्मासनाय नमः, शिवमञ्चाय नमः ॥ इति पीठन्यासः ॥

अथ स्वहृदयकमलमध्ये मूलदेवीं ध्यायेत्—

ॐ उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाभयदानाभीतिकरां[1] प्रभजे भुवनेशीम् ॥

इति मूलदेवीस्वरूपं ध्यात्वा मानसोपचारैराराध्य, यथाशक्तितो होमादिकं च कृत्वा कामकलां च विचिन्त्य तदुपरि श्रीभुवनेश्वरीं यथोक्तरूपां ध्यात्वा स्ववामभागे निवेश्य ।

अथार्घ्यपात्रस्थापनं- स्ववामभागे षट्कोणान्तर्गतत्रिकोणान्तर्गतबिन्दुबाह्यवृत्त-चतुरस्ररूपं मण्डलं विधाय पुनः स्वदक्षे त्रिकोणवृत्तबिन्दुमण्डलं कृत्वा भूमौ विरच्य तत्राधारशक्तिं प्रपूज्य, तत्राधारं संस्थाप्य तदुपरि अस्त्रमंत्रेणशोधितं हृन्मंत्रेण पूरितं पात्रं शङ्खादिकं वा संस्थाप्य तत्र तीर्थमावाह्य गन्धादिभिः प्रणवेन सम्पूज्य सूर्यसोमाग्निकलाभिः सम्पूज्य इति धेनुमुद्रां प्रदर्श्य स्वमन्त्रेण च पूजयेत्, इति सामान्यविधिः । तेन सामान्यार्घ्यजलेन स्ववामभागे कृतमण्डलमभ्युक्ष्य तत्राधारशक्त्यादिक्रमेण पीठपूजां कृत्वा, नम इत्याधारं प्रक्षाल्य मण्डलोपरि संस्थाप्य, रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नमः, इति सम्पूज्य फडिति मंत्रेण कलशं प्रक्षाल्य कारणेन प्रपूर्य रक्तमाल्यादिना संभूष्य देवीबुद्ध्या संस्थाप्य 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नम' इति संपूज्य 'ॐ सः चन्द्रमण्डलाय षोडशकलात्मने नम' इति द्रव्यमध्ये सम्पूज्य फडिति संरक्ष्य, हुं इत्यवगुण्ठ्य, मूलेन द्रव्यं संवीक्ष्य नम इत्यभ्युक्ष्य मूलेन द्रव्यगन्धमाघ्राय कुम्भे पुष्पं दत्त्वा शापहरीं विद्यां जपेत्—

एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम् ।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन ते नाशयाम्यहम् ॥ १ ॥
सूर्यमण्डलसम्भूते वरुणालयसम्भवे ।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापाद्विमुच्यताम् ॥ २ ॥
वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां व्यपोहतु ॥ ३ ॥

इति त्रिःपठेत्, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं व्रां व्रीं व्रूं व्रैं व्रौं व्रः ब्रह्मशापविमोचितायै सुरादेव्यै नमः स्वधा इति त्रिः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्रां क्रीं क्रूं क्रैं क्रौं क्रः सुरे कृष्णशापं मोचय

[1] वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां ।

मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा इति त्रिः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं शां शीं शूं शैं शौं शः सुरे शुक्रशापं मोचय मोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा इति त्रिः, ॐ हंसः शुचिषद्वसुरंतरिक्ष ॐ सद्धोतावेदिषदतिथिर्दुरोणसत्, नृषद्वरसदृतसद्व्योम सदब्जा गोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं बृहत्, इति त्रिः । इत्येतान् मंत्रान् हस्तेन घटं धृत्वा पठेत् ॥

अथाऽऽनन्दभैरवं स्वरांश्च यथोक्तप्रकारेण तत्र ध्यात्वा स्वस्वमंत्रेण पूजयेत्—ॐ ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवाय वौषट्, ॐ स ह क्ष म ल व र यीं सुरादेव्यै वौषट्, इत्याभ्यां मंत्राभ्यां पृथक् संपूज्य संतर्प्य । अथ द्रव्यमध्ये दक्षिणावर्तेन त्रिःपंक्त्या मातृकाचक्रं विलिखेत्—अं १६ कं १६ थं १६ इति शक्तिचक्रं विलिख्य तन्मध्ये हं क्षं च विलिख्य तत्समावेशाद् द्रव्यमध्येऽमृतं विचिन्त्य धेनुमुद्रयाऽमृतीकृत्य वमिति सुधाबीजं मूलमंत्रमप्यष्टधा घटे धृत्वा पठित्वा, अथात्मश्रीचक्रयोर्मध्ये त्रिकोणषट्कोणवृत्तचतुरस्रात्मकं मण्डलं विलिख्य पूजयेत्, चतुरस्रे पूर्णगिरिपीठाय नमः, ॐ उड्डीयानपीठायनमः, कामरूपपीठाय नमः, जालंधरपीठाय नम इति सम्पूज्य । षट्कोणे षडङ्गानि प्रपूज्य, मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणस्याग्रदक्षोत्तरं सम्पूज्य । मध्ये आधारशक्त्यादि सम्पूज्य त्रिकोणगर्भे त्रिपदिकां संस्थाप्य नम इति सामान्यार्घ्यजलेनाभ्युक्ष्य गन्धाक्षतहस्तेन पूजयेत् । ॐ रं वह्निमण्डलाय दशकलात्मने नम इति सम्पूज्य, यं धूम्रार्चिषे नमः, रं ऊष्मायै नमः, लं ज्वलिन्यै नमः, वं ज्वालिन्यै नमः, शं विस्फुलिङ्गिन्यै नमः, षं सुश्रियै नमः, सं सुरूपायै नमः, हं कपिलायै नमः, ळं हव्यवाहायै नमः, क्षं कव्यवाहायै नम इति सम्पूज्य । ततः पात्रं फडिति मंत्रेण प्रक्षाल्य त्रिकोणोपरि संस्थाप्य 'अं अर्कमण्डलाय द्वादशकलात्मने नमः' इति सम्पूज्य कं भं तपिन्यै नमः, खं बं तापिन्यै नमः, गं फं धूम्रायै नमः, घं पं मरीच्यै नमः, ङं नं ज्वलिन्यै नमः, चं धं रुच्यै नमः, छं दं सुषुम्णायै नमः, जं थं भोगदायै नमः, झं तं विश्वायै नमः, ञं णं बोधिन्यै नमः, टं ढं धारिण्यै नमः, ठं डं क्षमायै नम इति सम्पूज्य, त्रिकोणवृत्तषट्कोणं विलिख्य समस्तेन व्यस्तेन च मंत्रेण सम्पूज्य वं वरुणबीजं मूलं विलोममातृकां च पठन् द्रव्येण त्रिभागं जलेन च भागमेकं प्रपूर्य तत्र गन्धादीनि निक्षिप्य 'ॐ सः सोममण्डलाय षोडशकलात्मने नम' इति सम्पूज्य, अं अमृतायै नमः, आं मानदायै नमः, इं पूषायै नमः, ईं तुष्ट्यै नमः, उं पुष्ट्यै नमः, ऊं रत्यै नमः, ऋं धृत्यै नमः, ॠं शशिन्यै नमः, ऌं चंद्रिकायै नमः, ॡं कान्त्यै नमः, एं ज्योत्स्नायै

नमः, ऐं श्रियै नमः, ओं प्रीत्यै नमः, औं अङ्गदायै नमः, अं पूर्णायै नमः, अः पूर्णामृतायै नम इति सम्पूज्य। पूर्ववद् द्रव्ये अकथादित्रिकोणचक्रं विलिख्य मूलखण्डत्रयेण त्रिकोणं सम्पूज्य, षट्कोणे षडङ्गं च सम्पूज्य 'गङ्गे च यमुने' त्यादिना तीर्थमावाह्य आनन्दभैरवभैरव्यौ स्वस्वमंत्रेण सम्पूज्य पञ्चरत्नानि पूजयेत्। ग्लूं गगनरत्नेभ्यो नमः पूर्वे, स्लूं स्वर्गरत्नेभ्यो नमो दक्षिणे, म्लूं मर्त्यरत्नेभ्यो नमः पश्चिमे प्लूं पातालरत्नेभ्यो नम उत्तरे, न्लूं नागरत्नेभ्यो नमः पूर्वे, इति प्रथमपात्रं सम्पूज्य। अथ द्वितीयादीनां पात्राणि पुरतो मण्डलेषु संस्थाप्य, हुं इत्यवगुण्ठ्य, वं इति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य, तालत्रयं छोटिकाभिदर्शदिग्बन्धनं च कृत्वा, मत्स्यमुद्रया पात्रमाच्छाद्य तदुपरि मूलं सप्तधा संजप्य द्वितीयादीनां स्वस्वमंत्रेण संस्कृतपात्रं देवीरूपं विभावयेत्। अथ देव्याज्ञामादाय घटसमीपे एकादशपात्राणि स्थापयेयुः- गुरुपात्रं, शक्तिपात्रं, भोगपात्रं, स्वपात्रं, योगिनीपात्रं, बटुकपात्रं, वीरपात्रं, बलिपात्रं, पाद्यपात्रं, अर्घ्यपात्रं, आचमनीयपात्रं इत्येतानि पात्राणि संस्थाप्य चर्वणयुतकारणेन प्रपूर्य तत्त्वमुद्रया श्रीपात्राद्बिन्दुमुद्धृत्य ह स क्ष म ल व र यूं आनन्दभैरवं तर्पयामि नमः इति त्रिः संतर्प्य। पादुकामंत्रान्ते श्रीमच्छ्रीअमुकानन्दनाथ श्रीपादुकां तर्पयामि नम इति त्रिःसन्तर्प्य एवं परमगुरुं परमाचार्यं परमेष्ठिनं च संतर्प्य ततः श्रीपात्रामृतेन मूलान्ते सायुधां सवाहनां सपरिवारां समुद्रां सपरिच्छदां श्रीभुवनेश्वरीं तर्पयामि नम इति त्रिःसंतर्प्य पुनरपि गन्धमाल्यादिना कलशं संभूष्य देवीरूपं ध्यात्वा अमृतमयं घटं विभावयेत्॥ इति कलशपूजाविधानम्॥

अथ सिंहासनोपरि रचितपीठे पूर्ववत् पीठपूजां कुर्यात्—ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आधारशक्त्यै नमः, मूलप्रकृत्यै नमः, मंडूकाय नमः, कमठाय नमः, शेषाय नमः, पृथिव्यै नमः, सुधाम्बुधये नमः, मणिद्वीपाय नमः, कल्पवनाय नमः, चिन्तामणिगृहाय नमः, रत्नवेदिकायै नमः, नानामणिखचितपीठाय नमः, दिक्षु नानामुनिगणेभ्यो नमः, नानासिद्धगणेभ्यो नमः, धर्माय नमः, ज्ञानाय नमः, वैराग्याय नमः, ऐश्वर्याय नमः, अनैश्वर्याय नमः, मध्ये-कन्दाय नमः, नालाय नमः, पद्माय नमः, प्रकृतिमयपत्रेभ्यो नमः, विकृतिमयकेशरेभ्यो नमः, पञ्चाशन्मातृकाबीजभूषितकर्णिकायै नमः, तन्मध्ये अं सूर्यमण्डलाय नमः, सः सोममण्डलाय नमः, रं वैश्वानरमण्डलाय नमः, सं सत्त्वाय नमः, रं रजसे नमः, तं तमसे नमः, आं आत्मने नमः, अं अन्तरात्मने नमः, पं परमात्मने नमः, ह्रीं ज्ञानात्मने नमः, पुनः पत्रेषु-वामायै नमः, ज्येष्ठायै नमः, रौद्र्यै

नमः, अम्बिकायै नमः इच्छायै नमः, ज्ञानायै नमः, क्रियायै नमः, कुब्जिकायै नमः, चित्रायै नमः, विषघ्निकायै नमः, ऐं अपरायै नमः ऐं परायै नमः, सर्वत्र-ह्सौः सदाशिव-महाप्रेतपद्मासनाय नमः, शिवमञ्चाय नम, इति पीठं संपूज्य पीठोपरि श्रीचक्रं संस्थापयेत्—

पद्ममष्टदलं बाह्ये वृतं षोडशभिर्दलैः ।
विलिखेत् कर्णिकामध्ये षट्कोणमतिसुन्दरम् ॥
आचेरद् भूगृहं तद्वदिति चक्रं समुद्धरेत् ।

मतान्तरे च—

बिन्दुत्रिकोणं रसकोणसंयुतं
वृत्ताञ्चितं नागदलेन मण्डितम् ।
कलारवृत्तत्रयभूगृहाङ्कितं
श्रीचक्रमेतद् भुवनेश्वरीप्रियम् ॥

इत्येवं श्रीचक्रं संस्थाप्य तस्योपरि रक्तपुष्पं किञ्चिज्जलं च दत्त्वा पीठशक्तीः पूजयेत् । दिक्षु आं अजयायै नमः, ईं विजयायै नमः, ऊं अजितायै नमः, ॠं अपराजितायै नमः, लृं नित्यायै नमः, ऐं विलासिन्यै नमः, औं दोग्ध्र्यै नमः, अः अघोरायै नमः । मध्ये ह्रीं मङ्गलायै नमः, इति पीठं सम्पूज्य यथोक्तां श्रीभुवनेश्वरीं ध्यायेत्—

ॐ उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाभयदानाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

इति ध्यात्वा, यमिति वायुबीजेन वामनासापुटेन देवीं स्वहृदयात् कुसुमाञ्जलावानीय तत्रावाह्य प्रार्थयेत्—

ॐ देवेशि भक्तिसुलभे परिवारसमन्विते ।
यावत्त्वां पूजयिष्यामि तावद्देवि इहावह ॥ १ ॥

मूलान्ते सवाहनसपरिवारसायुधसमुद्रसपरिच्छदश्रीमच्छ्रीमहेश्वरभैरवसहिते श्री-भुवनेश्वरीहागच्छ इहागच्छ, एवं इह तिष्ठ इह तिष्ठ, एवं इह सन्निधेहि इह सन्निधेहि एवं इह सन्निरुद्धस्व इह सन्निरुद्धस्व, एवं मम सर्वोपचारसहितां पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा, इत्यावाहनादिनवमुद्राः प्रदर्श्य पीठे पुष्पं दत्त्वा । अथ श्रीचक्रोपरि लेलिहानमुद्रां विधाय प्राणप्रतिष्ठां

कुर्यात्, ॐ आँ ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं सः श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वर्य्याः प्राणा इह प्राणा इह ॥ २१ ॥ जीव इह स्थितः ॥ २१ ॥ सर्वेन्द्रियाणि इह स्थितानि इह स्थितानि ॥ २१ ॥ वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इति प्राणप्रतिष्ठां कृत्वा, पीठे पुष्पं दत्त्वा, दिग्बन्धनं कृत्वा अवगुण्ठ्य सकलीकृत्य परमीकरणं विधाय धेनुयोनिमुद्रे प्रदर्श्य, शक्तिमुद्रां प्रदर्श्य, वराभय-पुस्तकाक्षमालाज्ञानाङ्कुशचापबाणकपालमालादिमुद्राः प्रदर्श्य, ततः पुष्पहस्तमुद्रया श्रीपात्रामृतेन सायुधां सवाहनां सपरिवारां समुद्रां सावरणां श्रीमच्छ्रीमहेश्वरभैरव-सहितां श्रीभुवनेश्वरीं तर्पयामि नम इति त्रिः पीठोपरि संतर्प्य, पुनरपि मूलान्ते श्रीमच्छ्रीभुवनेश्वरीपादुकां तर्पयामि नमः इति त्रिः संतर्प्य । अथ षोडशोपचारपूजां कुर्यात्, मूलान्ते एतत्पाद्यं श्रीमच्छ्रीभैरवसहितायै श्रीभुवनेश्वर्य्यै नमः पादयोः पाद्यं, मूलान्ते इदमर्घ्यं स्वाहा शिरसि, मूलान्ते इदमाचमनीयं स्वाहा मुखे, मूलान्ते इदं मधुपर्कं स्वधा मुखे, मूलान्ते इदं स्नानीयं नमः सर्वाङ्गे इत्यादि सुस्नाप्य शुद्ध-दुकूलेनाङ्गं प्रोञ्छय अथ मूर्तौ विचित्रपट्टवस्त्रकुंकुमकस्तूरीचन्दनसिन्दूरमुकुटकुण्डल-माल्यमुक्ताहारत्रयादिनानालङ्कारान् दत्त्वा संभूष्य पुनराचमनीयं दद्यात्, ततो मध्यानामाङ्गुष्ठाग्रमुद्रया मूलान्ते अयं गन्धो नमः, इति गन्धं दत्त्वा ततोऽङ्गुष्ठतर्ज-न्यग्रया मुद्रया मूलान्ते इमानि पुष्पाणि वौषट्, इति पुष्पाणि दत्त्वा ततो धूपपात्रं फडिति संप्रोक्ष्य सम्मुखे संस्थाप्य वामहस्ततर्जन्या संस्पृशन् मूलान्ते धूपं निवेदयामि नम इति जलं दत्त्वा, ततः 'ॐ जगद्ध्वनिमंत्रमातःस्वाहा' इत्यनेन गन्धादिभिः घण्टां सम्पूज्य वामपाणिना घण्टां वादयन् दक्षिणपाणिमध्यानामाङ्गुष्ठैर्धूपपात्रं समुद्धृत्य गायत्रीं मूलं च पठन्—

ॐ वनस्पतिरसोत्पन्नो गन्धाढ्यो गन्ध उत्तमः ।
आघ्रेयः सर्वदेवानां धूपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

मूलान्ते सवाहनसपरिवारसायुधसमुद्रसपरिच्छदसावरणश्रीमच्छ्रीमहेश्वरभैरव-सहितायै श्रीभुवनेश्वर्य्यै धूपं निवेदयामि नम इति त्रिधा उत्तोल्य देवीं धूपयेत् । ततो दीपपात्रं सम्मुखे संस्थाप्य पूर्ववत् प्रोक्षणं पूजनं च कृत्वा वामहस्तमध्यमया दीपपात्रं संस्पृशन् पूर्ववन्मूलसावरणान्ते दीपं निवेदयामि इति दक्षिणपाणिना जलेन निवेद्य पूर्ववद्घण्टां वादयन् दक्षिणपाणिना मध्यानामामध्ये दीपपात्रमङ्गुष्ठेन धृत्वा दर्शयन् मूलगायत्रीं च पठन्—

ॐ सुप्रकाशो महादीपः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति पूर्ववद्दीपं निवेदयामि नम इत्यनेन देवीं दीपयेत् । अथ पर्णादिपात्रे कुंकुमेन वसुपत्रं चन्द्ररूपं चरुं कृत्वा पात्रमध्ये दीपकमेकमष्टपत्रेषु दीपाष्टकं संस्थाप्य पूजयेत् ॥ श्रीं सौः ग्लूं स्लूं म्लूं प्लूं न्लूं सौं श्रीं श्रीं रत्नैश्वर्यै नम इत्यनेन पात्रं सम्पूज्य मूलेन च सम्पूज्य ततो वामपाणिना घण्टां वादयन् दक्षेन पाणिना स्थालकं मस्तकान्तं उद्धृत्य नवधा मूलं जपन्—

समस्तचक्रचक्रेशीयुते देवीनवात्मिके ।
आरार्तिकमिदं देवि गृहाण मम सिद्धये ॥

इति चक्रमुद्रया नीराजयेत् ॥ ततो नाना नैवेद्यं स्वर्णादिपात्रे निक्षिप्य हुमित्य-वगुण्ठ्य वमिति धेनुमुद्रयामृतीकृत्य मूलं सप्तधा जप्त्वा वामहस्ताङ्गुष्ठेन नैवेद्यपात्रं स्पृशन् मूलान्ते—

हेमपात्रगतं दिव्यं परमान्नं सुसंस्कृतम् ।
पञ्चधा षड्रसोपेतं गृहाण परमेश्वरि ॥

श्रीभुवनेश्वर्यै नैवेद्यं निवेदयामि नमः, ततो दक्षानामाङ्गुष्ठाभ्यां नैवेद्यपात्रमुत्सृजेत्, पुनराचमनीयं दत्वा मूलान्ते कर्पूरादियुक्तं ताम्बूलं निवेदयामीति पूर्ववद्दद्यात्, सर्वेषां मध्ये जलेनोत्सर्गः कार्यः । ततस्तत्वमुद्रया श्रीपात्रामृतेन देवीं त्रिः संतर्प्य ततः पूर्वोक्तमुद्राः प्रदर्श्य योनिमुद्रामेवं दर्शयेत्-हृदि क्षोभिणीं, मुखे द्राविणीं भ्रूमध्ये आकर्षिणीं, ललाटे वशिनीं, ब्रह्मरन्ध्रे आह्लादिनीं इति पञ्चमुद्रामयीं योनिमुद्रां प्रदर्श्य, अथ कृताञ्जलिः 'श्रीभुवनेश्वरि ! आवरणान् ते पूजयामि' इत्याज्ञां गृहीत्वा आवरणपूजामारभेत्-कर्णिकामध्ये ॐ ऐं ह्रीं श्रीं हृल्लेखायै नमः, पूर्वे ऐं गङ्गायै नमः, दक्षिणे रक्तायै नमः, उत्तरे इं करालिकायै नमः, पश्चिमे महोच्छुष्मायै नम इति प्रथमावरणम् । आग्नेय्यां ॐ ह्रां हृदयाय नमः, नैर्ऋत्यां ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, वायव्यां ॐ ह्रूं शिखायै वषट्, ऐशान्यां ॐ ह्रैं कवचाय हुँ, अग्रभागे ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्राय फट्, मध्ये मूलं पुनरपि षट्कोणेषु पूर्वे गायत्रीसहितब्रह्मणे नमः, नैर्ऋत्यां सावित्रीसहितविष्णवे नमः, वायव्यां सरस्व-

तीसहिताय रुद्राय नमः, आग्नेय्यां लक्ष्मीसहिताय कुबेराय नमः, पश्चिमायां रतिसहिताय मदनाय नमः, ऐशान्यां पुष्टिसहितविघ्नराजाय नमः, षट्कोणपार्श्वयोः शङ्खनिधये नमः. पद्मनिधये नमः, पुनरपि आग्नेय्यादिकेशरेषु आग्नेये ॐ ह्रां हृदयशक्तये नमः, ईशाने ॐ ह्रीं शिरःशक्तये नमः, वायव्ये ॐ ह्रूँ शिखाशक्तये नमः. नैर्ऋत्ये ॐ ह्रैं कवचशक्तये नमः, आग्नेये ॐ ह्रौं नेत्रशक्तये नमः, दिक्षु ॐ ह्रः अस्त्रशक्तये नमः, मध्ये मूलं इति द्वितीयावरणम् ॥ ततः पूर्वाद्यष्टदलेषु ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनङ्गकुसुमायै नमः, अनङ्गकुसुमातुरायै नमः, अनङ्गमदनायै नमः, अनङ्गमदनातुरायै नमः, भुवनपालायै नमः, गगनवेगायै नमः, शशिरेखायै नमः, गगनरेखायै नमः, मध्ये मूलं इति तृतीयावरणम् ॥ ततः पूर्वादिषोडशदलेषु सम्पूज्य—

'पूज्यपूजकयोर्मध्ये प्राचीति कथ्यते बुधैः' ।

ॐ ऐं ह्रीं श्रीं करालयै नमः, विकरालयै नमः, उमायै नमः, सरस्वत्यै नमः, श्रियै नमः, दुर्गायै नमः, उषायै नमः, लक्ष्म्यै नमः, श्रुत्यै नमः, स्मृत्यै नमः, धृत्यै नमः, श्रद्धायै नमः, मेधायै नमः, मत्यै नमः, कान्त्यै नमः, आर्यायै नमः, मध्ये मूलं इति चतुर्थावरणम् ॥ ततः षोडशपत्रेभ्यो बहिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं अनङ्गरूपायै नमः, अनङ्गमदनायै नमः ॥ २ ॥ मदनातुरायै नमः ॥ ३ ॥ भुवनवेगायै नमः ॥ ४ ॥ भुवनपालिन्यै नमः ॥ ५ ॥ सर्वमदनायै नमः ॥ ६ ॥ अनङ्गवेदनायै नमः ॥ ७ ॥ अनङ्गमेखलायै नमः ॥ ८ ॥ मध्ये मूलं इति पञ्चमावरणम् ॥ ततस्तद्बहिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ब्राह्म्यै नमः ॥ १ ॥ माहेश्वर्यै नमः ॥२॥ कौमार्यै नमः ॥ ३ ॥ वैष्णव्यै नमः ॥ ४ ॥ वाराह्यै नमः ॥ ५ ॥ इन्द्राण्यै नमः ॥ ६ ॥ चामुण्डायै नमः ॥ ७ ॥ महालक्ष्म्यै नमः ॥ ८ ॥ मध्ये मूलं ततस्तद्बहिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं असिताङ्गभैरवाय नमः ॥ १ ॥ रुरुभैरवाय नमः ॥२॥ चण्डभैरवाय नमः ॥ ३ ॥ क्रोधभैरवाय नमः ॥ ४ ॥ उन्मत्तभैरवाय नमः ॥५॥ कपालभैरवाय नमः ॥ ६ ॥ भीषणभैरवाय नमः ॥ ७ ॥ संहारभैरवाय नमः ॥८॥ मध्ये मूलं इति षष्ठावरणम् ॥ ततो वृत्तमध्ये ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इन्द्राय नमः ॥ १ ॥ अग्नये नमः ॥ २ ॥ धर्मराजाय नमः ॥ ३ ॥ नैर्ऋत्याय नमः ॥ ४ ॥ वरुणाय नमः ॥ ५ ॥ वायवे नमः ॥ ६ ॥ कुबेराय नमः ॥ ७ ॥ ईशानाय नमः ॥ ८ ॥ ईशाने ब्रह्मणे नमः । नैर्ऋत्यां विष्णवे नमः । मध्ये मूलं इति सप्तमावरणम् ॥ ततस्तद्बहिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इन्द्रशक्तये नमः ॥ १ ॥ अग्निशक्तये नमः ॥ २ ॥ यम-

शक्तये नमः ॥ ३ ॥ नैर्ऋत्यशक्तये नमः ॥ ४ ॥ वरुणशक्तये नमः ॥ ५ ॥ वायव्यशक्तये नमः ॥ ६ ॥ कुबेरशक्तये नमः ॥ ७ ॥ ईशानशक्तये नमः ॥ ८ ॥ ब्रह्मशक्तये नमः ॥ ९ ॥ वैष्णवशक्तये नमः ॥ १० ॥ मध्ये-वरमुद्रायै नमः ॥१॥ अभयमुद्रायै नमः ॥ २ ॥ जपमालायै नमः ॥ ३ ॥ पुस्तकायै नमः ॥ ४ ॥ मध्ये मूलमिति नवमावरणम् । ततो भूगृहे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वज्रशक्तये नमः ॥ १ ॥ शक्ति-शक्तये नमः ॥ २ ॥ दण्डशक्तये नमः ॥ ३ ॥ खड्गशक्तये नमः ॥ ४ ॥ पाशशक्तये नमः ॥ ५ ॥ अङ्कुशशक्तये नमः ॥ ६ ॥ गदाशक्तये नमः ॥ ७ ॥ त्रिशूलशक्तये नमः ॥ ८ ॥ पद्मशक्तये नमः ॥ ९ ॥ चक्रशक्तये नमः ॥ १० ॥ मध्ये मूलमिति दशमावरणम् ॥ ततस्तद्बहिः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐरावताय नमः, मेषाय नमः, महिषाय नमः, प्रेताय नमः, मकराय नमः, मृगाय नमः, नराय नमः, वृषभाय नमः, हंसाय नमः, गरुडाय नमः मध्ये सिंहाय नमः, ततस्तद्बहिः ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐरावतशक्तये नमः, मेषशक्तये नमः, महिषशक्तये नमः, प्रेतशक्तये नमः, मकरशक्तये नमः, मृगशक्तये नमः, नरशक्तये नमः, वृषशक्तये नमः, हंसशक्तये नमः, गरुडशक्तये नमः, सिंहशक्तये नमः, इत्येकादशावरणम् ॥ ततः पूर्वक्रमेण ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आदित्याय नमः, सोमाय नमः, भौमाय नमः, बुधाय नमः, गुरवे नमः, शुक्राय-नमः, शनैश्चराय नमः, राहवे नमः, मध्ये केतवे नमः, ततस्त ्बहिः, ॐ ऐं ह्रीं श्रीं आदित्यशक्तये नमः, सोमशक्तये नमः, भौमशक्तये नमः, बुधशक्तये नमः, गुरुशक्तये नमः, शुक्रशक्तये नमः, शनिशक्तये नमः, राहुशक्तये नमः, मध्ये केतुशक्तये नमः, इति द्वादशावरणम् ॥ ततः पूर्वे ॐ ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नमः, दक्षिणे यां योगि-नीभ्यो नमः, पश्चिमे क्षां क्षेत्रपालाय नमः, उत्तरे ग्लौं गणपतये नमः, ईशाने हुं सर्वभूतेश्वराय नमः, मध्ये मूलमिति सम्पूज्य संतर्प्य अथावरणं ध्यायेत्—

हल्लेखाद्याः समभ्यर्च्याः पंचभूतसमप्रभाः ।
वरपाशाङ्कुशाभीतिधारिण्योऽमितभूषणाः ॥

दण्डकमण्डल्वक्षमालाधारिणौ गायत्रीब्रह्माणौ, शङ्खचक्रगदापद्मधारिणौ पीता-म्बरौ सावित्रीविष्णू, परश्वक्षमालाभयहस्तौ सरस्वतीमहेश्वरौ, रत्नकुम्भमणिकरण्डक-धारितुन्दिलः पीताम्बरः कुबेरः स्वाङ्कस्थां दक्षिणभुजेन पद्मधारिणीं महालक्ष्मीं वामबाहुनाऽलिङ्ग्य स्थितः, बाणपाशाङ्कुशधरासनहस्तो रक्तमाल्याम्बरधरो मोदक-हस्तो दक्षिणहस्तेनाऽलिङ्ग्य वामेनोत्पलधारिणीं रतिं अङ्कुशपाशहस्तः करेण-

कान्ताभगं स्पृशन् दिगम्बरो माध्वीकपूर्णकलशं धारयन् पुष्करेण चषकधारी रक्तवर्णो विघ्नेशः, मदविह्वला रक्तवर्णा वामपाणिना चषकधारिणी गणेशलिङ्गं स्पृशन्ती अन्येन धृतोत्पला समाश्लिष्टकान्ता दिगम्बरा पुष्टिः, अनङ्गरूपाद्यास्तु—

'चषकं तालवृन्तं च ताम्बूलं छत्रमुज्वलम् ।
चामरं च शुकं पुष्पं बिभ्राणाः करपङ्कजैः ॥
नानाऽभरणसंदीप्ता' इत्यादि आवरणपूजाध्यानं विधाय ।

अथ दिव्यौघान् सिद्धौघान् मानवौघान् पङ्क्तित्रयेण पृथक् पृथक् त्रिकोणेषु पूजयेत्, पुनरपि बिन्दौ मूलेन सम्पूज्य सन्तर्प्य पञ्चमुद्राः प्रदर्श्य ततः पुष्पाञ्जलि-मंत्रेण पुष्पाञ्जलिं दद्यात्—

ॐ यद्दत्तं भक्तिमात्रेण पत्रं पुष्पं जलं फलम् ।
निवेदितं च नैवेद्यं तद्गृहाणानुकम्पया ॥

इत्यनेन पञ्चपुष्पाञ्जलिं दत्वा अन्योक्तिभिर्यथालाभद्रव्यैर्होमं कुर्यात्, अग्नौ जले वा चक्रं विलिख्य विभाव्य प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा, समानाय स्वाहा इत्यादि हुत्वा 'ॐ ह्रां हृदयाय नमः स्वाहा' इत्यादि षडङ्गाहुतीर्दत्वा स्वयन्त्रोक्तपरिवारान् मूलदेवीं च यथोक्तप्रकारेण हुत्वा नामसहस्रेण होमं कृत्वा देवीं सम्पूज्य क्षमापयेत्—

ॐ भूमौ स्खलितपादानां भूमिरेवावलम्बनम् ।
त्वयि जातापराधानां त्वमेव शरणं मम ॥ १ ॥
अपराधो भवत्येव सेवकस्य पदे पदे ।
कोऽपरः सहते लोके केवलं स्वामिनं विना ॥ २ ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
समक्षं सविधे सर्वमिति मातः क्षमस्व मे ॥ ३ ॥
आवाहनं न जानामि न जानामि विसर्जनम् ।
पूजाभावं न जानामि त्वं गतिः परमेश्वरि ! ॥ ४ ॥
कर्मणा मनसा वाचा नास्ति चान्या गतिर्मम ।
अन्तश्चारेण भूतानां रक्ष त्वं परमेश्वरि ! ॥ ५ ॥

देवी दात्री च भोक्त्री च देवी सर्वमिदं जगत् ।
देवी जयति सर्वत्र या देवी सोऽहमेव हि ॥ ६ ॥
यदक्षरपरिभ्रष्टं * मंत्रहीनं च यद्भवेत् ।
क्षन्तुमर्हसि देवेशि कस्य न स्खलितं मनः ॥ ७ ॥
द्रव्यहीनं क्रियाहीनं मंत्रहीनं सुरेश्वरि !
सर्वं तत् कृपया देवि क्षमस्व परमेश्वरि ! ॥ ८ ॥
यन्मया क्रियते कर्म जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिषु ।
तत्सर्वं तावकी पूजा भूयाद्भूत्यै नमः शिवे ! ॥ ९ ॥
प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरंततः
यत्करोमि जगद्योने तदस्तु तव पूजनम् ॥ १० ॥
क्षमस्व देवदेवेशि मम मन्त्रस्वरूपिणि ।
तव पादाम्बुजे नित्यं निश्चला भक्तिरस्तु मे ॥ ११ ॥

इत्येवं देवीं क्षमाप्य पुनरपि निर्माल्यं त्यक्त्वा संपूज्य देवीं स्वहृदि विसर्जयेत् । पुष्पाञ्जलिमादाय—

ॐ गच्छ गच्छ परं स्थानं स्वस्थानं परमेश्वरि !
यत्र ब्रह्मादयो देवा न विदुः परमं पदम् ॥

इति पीठे पुष्पाञ्जलिं दत्त्वा संहारमुद्रया पीठात् पुष्पं गृह्णीयात्—

ॐ तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि !
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥

इति पठित्वा पुष्पं हृदि स्पृशन्नाघ्राय शिरसि स्थापयेत् । तत ईशाने मण्डलं कृत्वा 'वां वटुकाय नम' इति सम्पूज्य ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ऐह्येहि देवीपुत्र बटुकनाथ कपिलजटाभारभास्वर त्रिनेत्र ज्वालामुख सर्वविघ्नान्नाशय नाशय सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा, इत्यनेनाङ्गुष्ठानामिकायोगेन ईशानाय बटुकाय बलिं दत्त्वा, आग्नेय्यां मण्डलं कृत्वा 'यां योगिनीभ्यो नम' इति सम्पूज्य ॐ ऐं ह्रीं श्रीं—

---

* यदक्षरपदभ्रष्टं मात्राहीनं ।

ऊर्ध्वं ब्रह्माण्डतो वा दिवि गगनतले भूतले निष्कले वा
पाताले वाऽनले वा सलिलपवनयोर्यत्र कुत्र स्थितो वा ।
क्षेत्रे पीठोपपीठादिषु च कृतपदा धूपदीपादिकेन
प्रीता देव्यः सदा नः शुभबलिविधिना पान्तु वीरेन्द्रवन्द्याः ॥

यां योगिनीभ्यो हुं फट् स्वाहा, इत्यनेन कनिष्ठिकाङ्गुष्ठयोगेन वह्निकोणे योगिनीभ्यो बलिं दत्त्वा, नैर्ऋत्यां ॐ ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः हुं स्थान-क्षेत्रपाल ! सर्वकामान् पूरय पूरय अलिबलिसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा इत्यनेन वायुकोणे मण्डलं कृत्वा सम्पूज्य श्रां गां गीं गूं गैं गौं गः गणपतये वरवरद सर्वजनं मे वशमानय इमां पूजां बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा गजशुण्डमुद्रया बलिं दद्यात् इत्यनेन गणपतये बलिं दत्त्वा, ईशानेतरयोर्मध्ये मण्डलं कृत्वा ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सर्वविघ्नकृद्भ्यः सर्वभूतेभ्यः हुं फट् स्वाहा, इत्यनेन सर्वभूतेभ्यो बलिं दत्त्वा ततो छागादिबलिमपि दद्यात् । ततः शिरसि गुरुं हृदि इष्टदेवतां च ध्यात्वा यथाशक्तितो जपं विधाय प्राणायामऋष्यादिकरषडङ्गन्यासान् विधाय जलमादाय—

ॐ गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि त्वत्प्रसादान्महेश्वरि ! ॥

इत्यनेन तेजोमयं जपफलं देव्या वामहस्ते समर्प्य कवचसहस्रनामस्तोत्रादि पठित्वा साष्टाङ्गं प्रणिपत्य प्रदक्षिणीकृत्य सामयिकैः सह पात्रवन्दनं विधाय—

नन्दन्तु साधकाः सर्वे विनश्यन्तु विदूषकाः ।
अवस्था शाम्भवी मेऽस्तु प्रसन्नोऽस्तु गुरुः सदा ॥

इत्यादि शान्तिस्तोत्रं पठित्वा ईशाने मण्डलं कृत्वा ॐ निर्माल्यवासिन्यै नम, इत्यनेन ईशाने निर्माल्यादिकं निक्षिप्य जलमादाय ॐ ऐं ह्रीं श्रीं इतः प्राणबुद्धिदेह-धर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यवस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यां उदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत् सर्वं मामकीनं सकलं श्रीभुवनेश्वर्य्याश्चर-णकमले समर्पणमस्तु स्वाहा, इत्यनेनाग्रभागे जलं निक्षिप्य ॐ तत्सद् ब्रह्म इति स्मृत्वा यथासुखं विहरेत् ॥

इति श्रीरुद्रयामले तंत्रे दशविद्यारहस्ये श्रीभुवनेश्वर्या नित्यपूजनपद्धतिः सम्पूर्णा ॥
संवत् १९४३ मिती श्रावण सुदि ९ रविवासरे श्रीरस्तु ॥ कल्याणमस्तु ॥

अथ कवचम्

श्रीगणेशाय नमः

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीमंत्रस्य शक्तिऋषिर्गायत्री छन्दः भुवनेश्वरी देवता हं बीजं ईं शक्तिः रं कीलकं ममाभीष्टसिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । शक्तिऋषये नमः शिरसि, गायत्रीछन्दसे नमो मुखे, श्रीभुवनेश्वरीदेवतायै नमो हृदि, हं बीजाय नमो गुह्ये, ईं शक्तये नमः पादयोः, रं कीलकाय नमः सर्वाङ्गे । ॐ ह्रां अंगुष्ठाभ्यां नमः, ह्रीं तर्जनीभ्यां नमः, ह्रूं मध्यमाभ्यां नमः, ह्रैं अनामिकाभ्यां नमः, ह्रौं कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ह्रः करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः । ह्रां हृदयाय नमः, ह्रीं शिरसे स्वाहा, ह्रूं शिखायै वषट्, ह्रैं कवचाय हुं, ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ह्रः अस्त्राय फट् इत्यादि न्यासं कृत्वा ध्यायेत्—

ॐ उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकरां प्रभजे भुवनेशीम् ॥

देव्युवाच—

भुवनेश्याश्च देवेश या या विद्याः प्रकाशिताः ।
श्रुताश्चाधिगताः सर्वाः श्रोतुमिच्छामि साम्प्रतम् ॥ १ ॥
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं यत् पुरोदितम्[1] ।
कथयस्व महादेव ! मम प्रीतिकरं परम् ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—

पार्वति शृणु वक्ष्यामि सावधानाऽवधारय ।
त्रैलोक्यमङ्गलं नाम कवचं मंत्रविग्रहम् ॥ ३ ॥
सिद्धिविद्यामयं देवि सर्वैश्वर्यप्रदायकम्[2] ।
पठनाद्धारणान् मर्त्यस्त्रैलोक्यैश्वर्यवान्[3] भवेत् ॥ ४ ॥
त्रैलोक्यमङ्गलस्यास्य कवचस्य ऋषिः शिवः ।
छन्दो विराट् जगद्धात्री देवता भुवनेश्वरी ॥ ५ ॥

१, ख, पुरा कृतम् । २. ख, समन्वितम् । ३. ख, त्रैलोक्यैश्वर्यभाग् ।

धर्मार्थकाममोक्षार्थे[1] विनियोगः प्रकीर्तितः ।
ह्रीं बीजं मे शिरः पातु भुवनेशी ललाटकम् ॥ ६ ॥

ऐं पातु दक्षनेत्रं मे ह्रीं पातु वामलोचनम् ।
श्रीं पातु दक्षकर्णं मे त्रिवर्णात्मा महेश्वरी ॥ ७ ॥

वामकर्णं सदा पातु ऐं घ्राणं पातु मे सदा ।
ह्रीं पातु वदनं[2] देवी ऐं पातु रसनां मम ॥ ८ ॥

वाक्त्रिपुरा[3] त्रिवर्णात्मा कण्ठं पातु परात्मिका ।
श्रीं स्कन्धौ पातु नियतं ह्रीं भुजौ पातु सर्वदा ॥ ९ ॥

क्लीं करौ त्रिपुरेशानी[4] त्रिपुरैश्वर्यदायिनी ।
श्रीं [ऑं] पातु हृदयं ह्रीं मे मध्यदेशं सदाऽवतु ॥ १० ॥

क्रों पातु नाभिदेशं सा[5] त्र्यक्षरी भुवनेश्वरी ।
सर्वजीवप्रदा[6] पृष्ठं पातु सर्ववशंकरी ॥ ११ ॥

ह्रीं पातु गुह्यदेशं मे नमो भगवती कटिम् ।
माहेश्वरी सदा पातु सक्थिनी[7] जानुयुग्मकम् ॥ १२ ॥

अन्नपूर्णे सदा पातु स्वाहा पातु पदद्वयम् ।
सप्तदशाक्षरी पायादन्नपूर्णाऽखिलं वपुः ॥ १३ ॥

तारं माया रमा कामः षोडशार्णा ततः परम् ।
शिरःस्था सर्वदा पातु विंशत्यर्णात्मिका परा ॥ १४ ॥
तारं दुर्गे युगं रक्षिणि स्वाहेति दशाक्षरी ।
जयदुर्गा घनश्यामा पातु मां पूर्वतः सदा[8] ॥ १५ ॥
माया बीजादिका चैषा दशार्णा च तथा[9] परा ।
उत्तप्तकाञ्चनाभा सा जयदुर्गाऽनलेऽवतु ॥ १६ ॥
तारं ह्रीं दुर्गायै नम अष्टवर्णात्मिका परा[10] ।
शङ्खचक्रधनुर्बाणधरा मां दक्षिणेऽवतु ॥ १७ ॥

---

१. ख. मोक्षेषु । १. ख. वदने । २. ख. वाक्पुटा च । ३. ख. त्रिपुरा पातु । ग. त्रिपुटा पातु । ४. ख. मे । ५. ख. सर्वबीजप्रदा । ६. ख. शङ्खिनी सर्ववज्रपदा । ७. ख. सर्वतो मुदा । ८. ख. ततः । ९. ख. जय दुर्गाऽऽननेऽवतु । ग. जयदुर्गाऽवनेऽवतु । १०. ख. तारं ह्रीं दुं च दुर्गायै नमोऽष्टार्णात्मिका परा ।

महिषमर्द्दिनी स्वाहा वसुवर्णात्मिका परा ।
नैर्ऋत्यां सर्वदा पातु महिषासुरनाशिनी ॥ १८ ॥

माया पद्मावती स्वाहा पश्चिमे मां सदाऽवतु[1] ।
पाशाङ्कुशपुटा माया पाहि परमेश्वरि स्वाहा[2] ॥ १९ ॥

त्रयोदशार्णा[3] ताराद्या अश्वारूढा[4]ऽनिलेऽवतु ।
सरस्वती पञ्चशरे[5] नित्यक्लिन्ने मदद्रवे ॥ २० ॥

स्वाहा च त्र्यक्षरी[6] नित्या मामुत्तरे सदाऽवतु ।
तारं माया च कवचं खे च[7] रक्षेत् ततो वधूः[8] ॥ २१ ॥

हुं क्षें ह्रीं फट् महाविद्या द्वादशार्णाऽखिलप्रदा ।
त्वरिताष्टादिभिः पायाच्छिवकोणे सदा च माम् ॥ २२ ॥

ऐं क्लीं सौः सततं बाला मामूर्ध्वदेशतोऽवतु ।
बिन्द्वन्ता[9] भैरवी बाला भूमौ[10] मां सर्वदाऽवतु ॥ २३ ॥

इति ते कवचं[11] पुण्यं त्रैलोक्यमङ्गलं परम् ।
सारात् सारतरं पुण्यं महाविद्यौघविग्रहम् ॥ २४ ॥

अस्य हि पठनान्नित्यं[12] कुबेरोऽपि धनेश्वरः ।
इन्द्राद्याः सकला देवाः पठनाद्धारणाद्यतः[13] ॥ २५ ॥

सर्वसिद्धीश्वराः संतः सर्वैश्वर्यमवाप्नुयुः ।
पुष्पाञ्जल्यष्टकं दत्त्वा[14] मूलेनैव पठेत् सकृत्[15] ॥ २६ ॥

संवत्सरकृतायास्तु पूजायाः फलमाप्नुयात् ।
प्रीतिमान् योऽन्यतः[16] कृत्वा कमला निश्चला गृहे ॥ २७ ॥

वाणी च निवसेद्वक्त्रे सत्यं सत्यं न संशयः ।
यो धारयति पुण्यात्मा त्रैलोक्यमङ्गलाभिधम् ॥ २८ ॥

---

१. ख. ग. सप्तार्णा परिकीर्तिता । 'पद्मावतीपद्मसंस्था पश्चिमे मां सदाऽवतु' इति ख. ग. पुस्तकयोर्विशेषः । २. ग. मायेति परमेश्वरि स्वाहा । ३. ग. नमो दशार्णा । ४ ख. साऽश्वरूढा । ५ ख. पञ्चस्वरा । ६. ख. वस्वक्षरी । ७. ग. खे रक्षेत् सततं वधूः । ८. ग. त्वरिताष्टाहिभिः बुधः । ९. ख. मामूर्ध्वदेशे ततोऽवतु । ग. बिन्दुना । १०. ख. ह्सौं ग. हस्त्रौ । ११. ख. एतत् ते कथितं । १२. ख. अस्यापि पठनात् सद्यः । ग. धारणात्पठनाद्यतः । १३. ख. दद्यात् । १४. ख. पृथक् पृथक् । १५. ख. प्रीतिमन्योन्यतः । १६. ख. तत्तनुम् । १७. ख. परमेश्वरीम् ।

कवचं परमं पुण्यं सोऽपि पुण्यवतां वरः ।
सर्वैश्वर्ययुतो भूत्वा त्रैलोक्यविजयी भवेत् ॥ २९ ॥
पुरुषो दक्षिणे बाहौ नारी वामभुजे तथा ।
बहुपुत्रवती भूत्वा वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ ३० ॥
ब्रह्मास्त्रादीनि शस्त्राणि नैव कृन्तन्ति तं जनम् ।
एतत्कवचमज्ञात्वा यो जपेद् भुवनेश्वरीम् ॥ ३१ ॥
द्रारिद्र्यं परमं प्राप्य सोऽचिरान् मृत्युमाप्नुयात् ॥ ३२ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे पार्वतीश्वरसंवादे त्रैलोक्यमङ्गलं नाम भुवनेश्वरीकवचं समाप्तम् ॥

श्रीभुवनेश्वरीसहस्रनाम

श्रीगणेशाय नमः

श्रीदेव्युवाच–

देव देव महादेव सर्वशास्त्रविशारद !
कपालखट्वाङ्गधर ! चिताभस्मानुलेपन ! ॥ १ ॥
आद्या या प्रकृतिर्नित्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।
तस्याः श्रीभुवनेश्वर्या नाम्नां पुण्यं सहस्रकम् ॥ २ ॥
कथयस्व महादेव ! यथा देवी प्रसीदति ।

ईश्वर[1] उवाच–

साधु पृष्टं महादेवि ! साधकानां हिताय वै ॥ ३ ॥
या नित्या प्रकृतिराद्या सर्वशास्त्रेषु गोपिता ।
यस्याः स्मरणमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥ ४ ॥
आराधनाद्भवेद्यस्या जीवन्मुक्तो न संशयः ।
तस्या नामसहस्रं वै कथयामि समासतः ॥ ५ ॥

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वर्याः सहस्रनामस्तोत्रस्य दक्षिणामूर्तिर्ऋषिः पंक्तिश्छन्दः आद्या श्रीभुवनेश्वरी देवता ह्रीं बीजं श्रीं शक्तिः क्लीं कीलकं मम श्रीधर्मार्थकाममोक्षार्थे जपे विनियोगः ।

आद्या माया परा शक्तिः श्रीं ह्रीं क्लीं भुवनेश्वरी ।
भुवना भावना भव्या[2] भवानी भवभाविनी ॥ ६ ॥
रुद्राणी रुद्रभक्ता च तथा रुद्रप्रिया सती ।
उमा कात्यायनी दुर्गा मङ्गला सर्वमङ्गला ॥ ७ ॥
त्रिपुरा परमेशानी त्रिपुरा सुन्दरी प्रिया[3] ।
रमणा रमणी रामा रामकार्यकरी शुभा ॥ ८ ॥
ब्राह्मी नारायणी चण्डी[4] चामुण्डा मुण्डनायिका ।
माहेश्वरी च कौमारी वाराही चापराजिता ॥ ९ ॥

---

१. ग. महादेव । २. ग. भुवनाभुवना भाव्या । ३. ग. सुन्दरी सुन्दरप्रिया । ४. ग. चण्डा ।

महामाया मुक्तकेशी महात्रिपुरसुन्दरी ।
सुन्दरी शोभना रक्ता रक्तवस्त्रापिधायिनी ॥ १० ॥
रक्ताक्षी रक्तवस्त्रा च रक्तबीजातिसुन्दरी[1] ।
रक्तचन्दनसिक्ताङ्गी रक्तपुष्पसदाप्रिया[2] ॥ ११ ॥
कमला कामिनी कान्ता कामदेवसदाप्रिया[3] ।
लक्ष्मी लोला चञ्चलाक्षी चञ्चला चपला प्रिया ॥ १२ ॥
भैरवी भयहर्त्री[4] च महाभयविनाशिनी ।
भयङ्करी महाभीमा भयहा भयनाशिनी ॥ १३ ॥
श्मशाने प्रान्तरे दुर्गे संस्मृता भयनाशिनी[5] ।
जया च विजया चैव जयपूर्णा[6] जयप्रदा ॥ १४ ॥
यमुना यामुना याम्या यामुनजा[7] यमप्रिया ।
सर्वेषां जनिका जन्या जनहा जनवर्द्धिनी ॥ १५ ॥
काली कपालिनी कुल्ला कालिका कालरात्रिका ।
महाकालहृदिस्था च कालभैरवरूपिणी ॥ १६ ॥
कपालखट्वाङ्गधरा पाशाङ्कुशविधारिणी ।
अभया च भया चैव तथा च भयनाशिनी[8] ॥ १७ ॥
महाभयप्रदात्री च तथा च वरहस्तिनी ।
गौरी गौराङ्गिनी गौरा गौरवर्णा जयप्रदा ॥ १८ ॥
उग्रा उग्रप्रभा शान्तिः शान्तिदाऽशान्तिनाशिनी[9] ।
उग्रतारा तथा चोग्रा नीला चैकजटा तथा ॥ १९ ॥
हां हां हूं हूं[10] तथा तारा तथा च सिद्धिकालिका ।
तारा नीला च वागीशी तथा नीलसरस्वती ॥ २० ॥
गङ्गा काशी सती सत्या सर्वतीर्थमयी तथा ।
तीर्थरूपा तीर्थपुण्या तीर्थदा तीर्थसेविका ॥ २१ ॥
पुण्यदा पुण्यरूपा च पुण्यकीर्तिप्रकाशिनी[11] ।
पुण्यकाला पुण्यसंस्था तथा पुण्यजनप्रिया ॥ २२ ॥

---

१. ग. रक्तबीजनिषूदिनी । २. ग. रक्तपुष्पप्रिया सदा । ३. ग. कामदेवप्रिया सदा । ४. ग. भयहन्त्री । ५. ग. भयहारिणी । ६. ग. जयना च । ७. ग. यमभागी । ८. ग. तथा भयविनाशिनी । ९. ग. भीतनाशिनी । १०. ग. हंसरूपा । ११. ग. प्रतारिणी ।

तुलसी तोतुलास्तोत्रा[1] राधिका राधनप्रिया ।
सत्यासत्या सत्यभामा रुक्मिणी कृष्णवल्लभा[2] ॥ २३ ॥
देवकी कृष्णमाता च सुभद्रा भद्ररूपिणी ।
मनोहरा तथा सौम्या श्यामाङ्गी समदर्शना ॥ २४ ॥
घोररूपा घोरतेजा घोरवत्प्रियदर्शना ।
कुमारी बालिका क्षुद्रा[3] कुमारीरूपधारिणी ॥ २५ ॥
युवती युवतीरूपा युवतीरसराञ्जिका[4] ।
पीनस्तनी क्षुद्रमध्या[5] प्रौढा मध्या जरातुरा ॥ २६ ॥
अतिवृद्धा स्थाणुरूपा चलाङ्गी चञ्चला चला[6] ।
देवमाता देवरूपा देवकार्यकरी शुभा ॥ २७ ॥
देवमाता दितिर्दक्षा सर्वमाता सनातनी ।
पानप्रिया पायनी च[7] पालना[8] पालनप्रिया ॥ २८ ॥
मत्स्याशी मांसभक्ष्या च सुधाशी जनवल्लभा[9] ।
तपस्विनी तपी तप्या[10] तपःसिद्धिप्रदायिनी ॥ २९ ॥
हविष्या च हविर्भोक्त्री हव्यकव्यनिवासिनी ।
यजुर्वेदा वश्यकरी[13] यज्ञाङ्गी यज्ञवल्लभा[13] ॥ ३० ॥
दक्षा दाक्षायिणी दुर्गा[14] दक्षयज्ञविनाशिनी ।
पार्वती पर्वतप्रीता तथा पर्वतवासिनी ॥ ३१ ॥
हैमी हर्म्या हेमरूपा मेना मान्या मनोरमा ।
कैलासवासिनी मुक्ता[15] शर्वक्रीडाविलासिनी[16] ॥ ३२ ॥
चार्वङ्गी चारुरूपा च सुवक्त्रा च शुभानना ।
चलत्कुण्डलगण्डश्रीर्लसत्कुण्डलधारिणी ॥ ३३ ।
महासिंहासनस्था[17] च हेमभूषणभूषिता ।
हेमाङ्गदा हेमभूषा सूर्यकोटिसमप्रभा ॥ ३४ ॥

---

१. ग. तोतला तोला । २. ग. रुक्मवल्लभा । ३. ग. क्षुब्धा । ४. ख. रसरञ्जिता । ५. ख. क्षुद्ररूपा । ६. ख. देवकार्यकरी शुभा । लाङ्गली चञ्चला वेगा देवमातास्वरूपिणी । ७. ख. च यज्वानी । ८. ख. पालिनी । ९. ख. मांसाशी जनवल्लभा । १०. ख. तपस्ताप्या । ११. ख. ग. हविष्याशी । १२. ख. ग. यजुर्वहा वंशकरी । १३. ख. यज्ञभुक् सदा । ग. यज्ञभुक् सती । १४. ख. दाक्षायणी महादुर्गा । १५. ख. ग. शुक्ला । १६. ख. ग. शिवक्रोडविलासिनी । १७. ख. ग. महासिंहोपरिस्था च ।

बालादित्यसमाकान्तिः सिन्दूरार्चितविग्रहा ।
यवा यावकरूपा च रक्तचन्दनरूपधृक् ॥ ३५ ॥
कोटरी कोटराक्षी च निर्लज्जा च दिगम्बरा ।
पूतना[1] बालमाता च शून्यालयनिवासिनी ॥ ३६ ॥
श्मशानवासिनी शून्या हृद्या चतुरवासिनी[2] ।
मधुकैटभहंत्री च महिषासुरघातिनी[3] ॥ ३७ ॥
निशुम्भशुम्भमथनी चण्डमुण्डविनाशिनी ।
शिवाख्या शिवरूपा च शिवदूती शिवप्रिया ॥ ३८ ॥
शिवदा शिववक्षःस्था शर्वाणी[4] शिवकारिणी ।
इन्द्राणी चेन्द्रकन्या च[5] राजकन्या सुरप्रिया ॥ ३९ ॥
लज्जाशीला साधुशीला कुलस्त्री कुलभूषिका[6] ।
महाकुलीना निष्कामा निर्लज्जा कुलभूषणा[7] ॥ ४० ॥
कुलीना कुलकन्या च तथा च कुलभूषिता ।
अनन्तानन्तरूपा च[8] अनन्तासुरनाशिनी ॥ ४१ ॥
हसन्ती शिवसङ्गेन वाञ्छितानन्ददायिनी ।
नागाङ्गी नागभूषा च नागहारविधारिणी ॥ ४२ ॥
धरिणी धारिणी धन्या महासिद्धिप्रदायिनी[9] ।
डाकिनी शाकिनी चैव राकिनी हाकिनी तथा[10] ॥ ४३ ॥
भूता प्रेता पिशाची च यक्षिणी धनदार्चिता[11] ।
धृतिः कीर्तिः[12] स्मृतिर्मेधा[13] तुष्टिःपुष्टिरुमा रुषा[14] ॥ ४४ ॥
शाङ्करी शाम्भवी मीना[15] रतिः प्रीतिः स्मरातुरा ।
अनङ्गमदना देवी अनङ्गमदनातुरा ॥ ४५ ॥
भुवनेशी महामाया तथा भुवनपालिनी ।
ईश्वरी चेश्वरप्रीता चन्द्रशेखरभूषणा ॥ ४६ ॥

---

१. ख. पूर्णानना । २. ग. हरचत्वरवासिनी। ३. ख. नाशिनी। ४. ख. सर्वेषां. ग. शिवानी। ५. ख. रुद्राणी रुद्रकन्या च । ६. ख. कुलपालिका । ७. भूषणान्विता। ८. ख. ग. अनन्तानन्त पाला च। ९. ख. अष्ट । १०. ख. राक्षसी डामरी तथा। ११. ख. ग. धनदा शिवा । १२. ख. श्रुतिः । १३. महामेधा । १४. ग. उषा । १५. ख. ग. मेनारतिः ।

चित्तानन्दकरी[1] देवी चित्तसंस्था जनस्य च ।
अरूपा बहुरूपा च सर्वरूपा चिदात्मिका[2] । ४७ ॥

अनन्तरूपिणी नित्या तथानन्तप्रदायिनी ।
नन्दा चानन्दरूपा च तथाऽनन्दप्रकाशिनी ॥ ४८ ॥

सदानन्दा सदानित्या साधकानन्ददायिनी ।
वनिता तरुणी भव्या भविका च विभाविनी ॥ ४९ ॥

चन्द्रसूर्यसमा दीप्ता सूर्यवत्परिपालिनी ।
नारसिंही हयग्रीवा हिरण्याक्षविनाशिनी ॥ ५० ॥

वैष्णवी विष्णुभक्ता च शालग्रामनिवासिनी ।
चतुर्भुजा चाष्टभुजा सहस्रभुजसंज्ञिता ॥ ५१ ॥

आद्या कात्यायनी नित्या सर्वाद्या सर्वदायिनी[3] ।
सर्वचन्द्रमयी[4] देवी सर्ववेदमयी शुभा ॥ ५२ ॥

सर्वदेवमयी देवी सर्वलोकमयी पुरा[5] ।
सर्वसम्मोहिनी देवी सर्वलोकवशंकरी ॥ ५३ ॥

राजिनी रञ्जिनी रागा[6] देहलावण्यरञ्जिता ।
नटी नटप्रिया धूर्ता तथा धूर्तजनार्दिनी[7] ॥ ५४ ॥

महामाया महामोहा महासत्त्वविमोहिता ।
बलिप्रिया मांसरुचिर्मधुमांसप्रिया सदा ॥ ५५ ॥

मधुमत्ता माधविका मधुमाधवरूपिका[8] ।
दिवामयी रात्रिमयी संध्या संधिस्वरूपिणी ॥ ५६ ॥

कालरूपा सूक्ष्मरूपा सूक्ष्मिणी[9] चातिसूक्ष्मिणी ।
तिथिरूपा वाररूपा तथा नक्षत्ररूपिणी ॥ ५७ ॥

सर्वभूतमयी देवी पञ्चभूतनिवासिनी ।
शून्याकारा शून्यरूपा शून्यसंस्था च स्तम्भिनी[10] ॥ ५८ ॥

---

१. ख, चिदानन्दकरी । २. ख, अरूपा सर्वरूपा च तथाऽनन्दप्रदा शिवा । ३. ख, सर्वदायिका । ४. ग, सर्वमंत्रमयी । ५. ख, परा । ६. ख, रजनी रञ्जिता रामा । ग, रञ्जिनी रञ्जिता रागा । ७. ख, ग, धूर्तजनप्रिया । ८. ग, साधुमाधवरूपिका । ९. ख, सुषुम्णा । १०. ख, स्तम्भिका ।

आकाशगामिनी देवी ज्योतिश्चक्रनिवासिनी ।
ग्रहाणां स्थितिरूपा च रुद्राणी चक्रसम्भवा[1] ॥ ५९ ॥
ऋषीणां ब्रह्मपुत्राणां[2] तपःसिद्धिप्रदायिनी ।
अरुन्धती च गायत्री सावित्री सत्वरूपिणी[3] ॥ ६० ॥
चितासंस्था चितारूपा चित्तसिद्धिप्रदायिनी[4] ।
शवस्था शवरूपा च शवशत्रुनिवासिनी[5] ॥ ६१ ॥
योगिनी योगरूपा च योगिनां मलहारिणी[6] ।
सुप्रसन्ना महादेवी यामुनी[7] मुक्तिदायिनी ॥ ६२ ॥
निर्मला विमला शुद्धा शुद्धसत्वा जयप्रदा ।
महाविद्या महामाया[8] मोहिनी विश्वमोहिनी ॥ ६३ ॥
कार्यसिद्धिकरी देवी सर्वकार्यनिवासिनी ।
कार्याकार्यकरी रौद्री महाप्रलयकारिणी ॥ ६४ ॥
स्त्रीपुंभेदाद्यभेद्या च[9] भेदिनी भेदनाशिनी ।
सर्वरूपा सर्वमयी अद्वैतानन्दरूपिणी[10] ॥ ६५ ॥
प्रचण्डा चण्डिका चण्डा चण्डासुरविनाशिनी ।
सुमस्ता[11] बहुमस्ता च छिन्नमस्ताऽसुनाशिनी[12] ॥ ६६ ॥
अरूपा च विरूपा च चित्ररूपा चिदात्मिका[13] ।
बहुशस्त्रा अशस्त्रा च[14] सर्वशस्त्रप्रहारिणी ॥ ६७ ॥
शास्त्रार्था शास्त्रवादा च नाना शास्त्रार्थवादिनी ।
काव्यशास्त्रप्रमोदा च काव्यालङ्कारवासिनी ॥ ६८ ॥
रसज्ञा रसना जिह्वा रसामोदा रसप्रिया ।
नानाकौतुकसंयुक्ता नानारसविलासिनी ॥ ६९ ॥
अरूपा च स्वरूपा च विरूपा च सुरूपिणी[15] ।
रूपावस्था तथा जीवा वेश्याद्या[16] वेशधारिणी ॥ ७१ ॥

---

१. ख. रुद्रादीनाञ्च सम्भवा । २. ग. व्रतपात्राणां । ३. ख. ग. सत्यरूपिणी । ४. ख. चित्तसंस्था चित्तिरूपा चिन्ता सिद्धिप्रदायिनी । ५. ख. शब्दस्था शब्दरूपा च शब्दचक्रनिवासिनी ग. शवचक्रनिवासिनी । ६. ख. वरधारिणी । ७. ख. मायिनी । ८. ख. ग. महामाया विष्णुमाया । ९. ग. स्त्रीपुंभेदाभेदरूपा । १०. ख. अद्वैतानन्तरूपिणी । ११. ख. ग. सुमत्ता । १२. ख. असुनासिका । ग. छिन्नमध्या सुनासिका । १३. ख. सुरूपा रूपवर्जिता । चित्ररूपा महारूपा वि.चत्रा च चिदात्मिका । १४. ख. प्यशस्त्रा च । १५. ख. ग. अव्यक्ताव्यक्तरूपा च विश्वरूपा च रूपिणी । १६. ख. ग. जीवावेशाढ्या ।

नानावेशधरा[1] देवी नानावेशेषु संस्थिता ।
कुरूपा कुटिला[2] कृष्णा कृष्णारूपा च कालिका ॥ ७१ ॥

लक्ष्मीप्रदा महालक्ष्मीः सर्वलक्षणसंयुता ।
कुबेरगृहसंस्था[3] च धनरूपा धनप्रदा ॥ ७२ ॥

नानारत्नप्रदा देवी रत्नखण्डेषु संस्थिता ।
वर्णसंस्था वर्णरूपा सर्ववर्णमयी सदा[4] ॥ ७३ ॥

ॐकाररूपिणी वाच्या[5] आदित्यज्योतीरूपिणी ।
संसारमोचिनी देवी संग्रामे जयदायिने ॥ ७४ ॥

जयरूपा जयाख्या च जयिनी जयदायिनी ।
मानिनी मानरूपा च मानभङ्गप्रणाशिनी ॥ ७५ ॥

मान्या मानप्रिया मेधा मानिनी मानदायिनी ।
साधकासाधकासाध्या साधिका साधनप्रिया ॥ ७६ ॥

स्थावरा जङ्गमा प्रोक्ता[6] चपला चपलप्रिया ।
ऋद्धिदा ऋद्धिरूपा च सिद्धिदा सिद्धिदायिनी ॥ ७७ ॥

क्षेमङ्करी शङ्करी च सर्वसम्मोहकारिणी ।
रञ्जिता रञ्जिनी या च सर्ववाञ्छाप्रदायिनी ॥ ७८ ॥

भगलिङ्गप्रमोदा च भगलिङ्गनिवासिनी ।
भगरूपा भगाभाग्या लिङ्गरूपा च लिङ्गिनी ॥ ७९ ॥

भगगीतिर्महाप्रीतिर्लिङ्गगीतिर्महासुखा ।
स्वयंभूः कुसुमाराध्या स्वयंभूः कुसुमाकुला[7] ॥ ८० ॥

स्वयंभूः पुष्परूपा च स्वयंभूः कुसुमप्रिया ।
शुक्रकूपा[8] महाकूपा शुक्रासवनिवासिनी[9] ॥ ८१ ॥

शुक्रस्था शुक्रिणी शुक्रा शुक्रपूजकपूजिता ।
कामाक्षा कामरूपा च योगिनी पीठवासिनी ॥ ८२ ॥

---

१. ख. वेशधरी । २. ख. ग. कुत्सिता । ३. ख. कुबेरग्रह । ४. ग. पुस्तके नास्ति । ५. ग. आद्या । ६. ख. ग. सूक्ष्मा । ७. स्वयंभूः कुसुमाकला । ८. ख. ग. शुक्ररूपा । ९. ख. ग. महाशुक्रा शुक्रबिन्दु-निवासिनी ।

सर्वपीठमयी देवी पीठपूजानिवासिनी[1] ।
अक्षमालाधरा देवी पानपात्रविधारिणी[2] ॥ ८३ ॥
शूलिनी शूलहस्ता च पाशिनी पाशरूपिणी ।
खड्गिनी गदिनी चैव तथा सर्वास्त्रधारिणी ॥ ८४ ॥
भाव्या भव्या भवानी सा भवमुक्तिप्रदायिनी ।
चतुरा चतुरप्रीता चतुराननपूजिता ॥ ८५ ॥
देवस्तव्या देवपूज्या सर्वपूज्या सुरेश्वरी ।
जननी जनरूपा च जनानां चित्तहारिणी ॥ ८६ ॥
जटिला केशबद्धा च सुकेशी केशबद्धिका[3] ।
अहिंसा द्वेषिका द्वेष्या सर्वद्वेषविनाशिनी ॥ ८७ ॥
उच्चाटिनी द्वेषिनी[4] च मोहिनी मधुगह्वरा[5] ।
क्रीडा क्रीडकलेखाङ्कारणाकारकारिका[6] । ८८ ॥
सर्वज्ञा सर्वकार्या च सर्वभक्ता सुरारिहा ।
सर्वरूपा सर्वशान्ता[7] सर्वेषां प्राणरूपिणी ॥ ८९ ॥
सृष्टिस्थितिकरी देवी तथा[8] प्रलयकारिणी ।
मुग्धा साध्वी तथा रौद्री नानामूर्तिविधारिणी[9] ॥ ९० ॥
उक्तानि यानि देवेशि अनुक्तानि महेश्वरि ।
यत् किञ्चिद् दृश्यते देवि तत् सर्वं भुवनेश्वरी ॥ ९१ ॥
इति श्रीभुवनेश्वर्या नामानि कथितानि ते ।
सहस्राणि महादेवि फलं तेषां निगद्यते ॥ ९२ ॥
यः पठेत् प्रातरुत्थाय चार्द्धरात्रे तथा प्रिये ।
प्रातःकाले तथा मध्ये सायाह्ने हरवल्लभे ॥ ९३ ॥
यत्र तत्र पठित्वा च भक्त्या सिद्धिर्न संशयः ।
पठेद् वा पाठयेद् वापि शृणुयाच्छ्रावयेत्तथा ९४ ॥
तस्य सर्वं भवेत् सत्यं मनसा यच्च वाञ्छितम् ।
अष्टम्यां च चतुर्दश्यां नवम्यां वा विशेषतः ॥ ९५ ॥

---

१ ख. पीठमध्यनिवासिनी । २. ख. ग. विधायिनी ३. ख. केशवात्मिका, ग. केशवा शिवा । ४. ग. स्तम्भिनी । ५. ग. मधुरासना । ६. ख. ग. क्रीडा क्रीडनखेला च खेलाकरणकारिका ७. ग. सर्वसीता । ८. ग. माया । ९. ग. पुस्तके नास्ति ।

सर्वमङ्गलसंयुक्ते संक्रातौ शनिभौमयोः ।
यः पठेत् परया भक्त्या देव्या नामसहस्रकम् ॥ ९६ ॥
तस्य देहे च संस्थानं कुरुते भुवनेश्वरी ।
तस्य कार्यं भवेद् देवि अन्यथा न कथञ्चन ॥ ९७ ॥
श्मशाने प्रान्तरे वापि शून्यागारे चतुष्पथे ।
चतुष्पथे चैकलिङ्गे मेरुदेशे तथैव च ॥ ९८ ॥
जलमध्ये वह्निमध्ये संग्रामे ग्रामशान्तये[1] ।
जप्त्वा मंत्रसहस्रं तु[2] पठेन्नामसहस्रकम् ॥ ९९ ॥
धूपदीपादिभिश्चैव बलिदानादिकैस्तथा ।
नानाविधैस्तथा देवि नैवेद्यै[3] भुवनेश्वरीम् ॥ १०० ॥
सम्पूज्य विधिवज्जप्त्वा स्तुत्वा नामसहस्रकैः[4] ।
अचिरात् सिद्धिमाप्नोति साधको नात्र संशयः ॥ १०१ ॥
तस्य तुष्टा भवेद् देवी सर्वदा भुवनेश्वरी ।
भूर्जपत्रे समालिख्य कुंकुमाद् रक्तचन्दनैः ॥ १०२ ॥
तथा गोरोचनाद्यैश्च विलिख्य साधकोत्तमः ।
सुतिथौ शुभनक्षत्रे लिखित्वा दक्षिणे भुजे ॥ १०३ ॥
धारयेत् परया भक्त्या देवीरूपेण पार्वति ! ।
तस्य सिद्धिर्महेशानि अचिराच्च भविष्यति ॥ १०४ ॥
रणे[5] राजकुले वाऽपि सर्वत्र विजयी भवेत् ।
देवता वशमायाति किं पुनर्मानवादयः ॥ १०५ ॥
विद्यास्तम्भं जलस्तम्भं[6] करोत्येव न संशयः ।
पठेद् वा पाठयेद् वाऽपि देवीभक्त्या[7] च पार्वति ॥ १०६ ॥
इह भुक्त्वा वरान्[8] भोगान् कृत्वा काव्यार्थविस्तरान्[9] ।
अन्ते देव्या गणत्वं च साधको मुक्तिमाप्नुयात् ॥ १०७ ॥
प्राप्नोति देवदेवेशि सर्वार्थान्नात्र संशयः ।
हीनाङ्गे चातिरिक्ताङ्गे शठाय परशिष्यके ॥ १०८ ॥

---

१. ख. प्राणसंशये । २. ख. वै । ३. ख. पक्वान्नैः । ४. ख. श्रुत्वा नामसहस्रकम् । ५. ग. वने । ६. ख. ग. वाय्वग्न्योश्च गतिस्तम्भम् । ७. ख. ग. बुद्ध्या । ८. ख. कलौ । ९. ग. काव्यान् सुदुस्तरान् ।

न दातव्यं महेशानि प्राणान्तेऽपि कदाचन ।
शिष्याय मतिशुद्धाय[1] विनीताय महेश्वरि ॥ १०९ ॥
दातव्यः स्तवराजश्च सर्वसिद्धिप्रदो भवेत् ।
लिखित्वा धारयेद् देहे दुःखं तस्य न जायते ॥ ११० ॥
य इदं भुवनेश्वर्याः स्तवराजं महेश्वरि ।
इति ते कथित देवि भुवनेश्याः सहस्रकम् ॥ १११ ॥
यस्मै कस्मै न दातव्यं विना शिष्याय पार्वति[2] ।
सुरतरुवरकान्तं सिद्धिसाध्यैकसेव्यं[3]
यदि पठति मनुष्यो नान्यचेताः सदैव ।
इह हि सकलभोगान्[4] प्राप्य चान्ते शिवाय
व्रजति परसमीपं सर्वदा मुक्तिमन्ते[5] ॥ ११२ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे भुवनेश्वरीसहस्रनामाख्यं स्तोत्रं सम्पूर्णम् ॥ श्रीरस्तु ॥

---

१. ख. ग. भक्तियुक्ताय । २. ग. पुस्तके नास्ति । ३. ख. ग. सिद्धसङ्घैकसेव्यं ।
४. ख. निखिलभोगान् । ५. ख. परिसमीपं किन्नरैः स्तूयमानः ।

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्रीभुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम

ईश्वर उवाच

महासम्मोहिनी देवी सुन्दरी भुवनेश्वरी ।
एकाक्षरी एकमन्त्री एकाकी लोकनायिका ॥ १ ॥
एकरूपा महारूपा स्थूलसूक्ष्मशरीरिणी ।
बीजरूपा महाशक्तिः सङ्ग्रामे जयवर्द्धिनी ॥ २ ॥
महारतिर्महाशक्तिर्योगिनी पापनाशिनी ।
अष्टसिद्धिः कलारूपा वैष्णवी भद्रकालिका ॥ ३ ॥
भक्तिप्रिया महादेवी हरिब्रह्मादिरूपिणी ।
शिवरूपी विष्णुरूपी कालरूपी सुखासिनी ॥ ४ ॥
पुराणी पुण्यरूपा च पार्वती पुण्यवर्द्धिनी ।
रुद्राणी पार्वतीन्द्राणी शङ्करार्द्धशरीरिणी ॥ ५ ॥
नारायणी महादेवी महिषी सर्वमङ्गला ।
अकारादिक्षकारान्ता ह्यष्टात्रिंशत्कलाधरी ॥ ६ ॥
सप्तमा त्रिगुणा नारी शरीरोत्पत्तिकारिणी ।
आकल्पान्तकलाव्यापिसृष्टिसंहारकारिणी ॥ ७ ॥
सर्वशक्तिर्महाशक्तिः शर्वाणी परमेश्वरी ।
हृल्लेखा भुवना देवी महाकविपरायणा ॥ ८ ॥
इच्छाज्ञानक्रियारूपा अणिमादिगुणाष्टका ।
नमः शिवायै शान्तायै शाङ्करि भुवनेश्वरि ॥ ९ ॥
वेदवेदाङ्गरूपा च अतिसूक्ष्मा शरीरिणी ।
कालज्ञानी शिवज्ञानी शैवधर्मपरायणा ॥ १० ॥
कालान्तरी कालरूपी संज्ञाना प्राणधारिणी ।
खड्गश्रेष्ठा च खट्वाङ्गी त्रिशूलवरधारिणी ॥ ११ ॥

अरूपा बहुरूपा च नायिका लोकवश्यगा ।
अभया लोकरक्षा च पिनाकी नागधारिणी ॥ १२ ॥
वज्रशक्तिर्महाशक्तिः पाशतोमरधारिणी ।
अष्टादशभुजा देवी हृल्लेखा भुवना तथा ॥ १३ ॥
खड्गधारी महारूपा सोमसूर्याग्निमध्यगा ।
एवं शताष्टकं नाम स्तोत्रं रमणभाषितम् ॥ १४ ॥
सर्वपापप्रशमनं सर्वारिष्टनिवारणम् ।
सर्वशत्रुक्षयकरं सदा विजयवर्द्धनम् ॥ १५ ॥
आयुष्करं पुष्टिकरं रक्षाकरं यशस्करम् ।
अमरादिपदैश्वर्यममत्त्वांशकलापहम् ॥ १६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे भुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनाम समाप्तम् ।
संवत् १६४३ फाल्गुनवदि १०मी गुरुवारः ॥

श्रीगणेशाय नमः

अथ श्रीभुवनेश्वर्यष्टकम्

श्रीदेव्युवाच

प्रभो श्रीभैरवश्रेष्ठ दयालो भक्तवत्सल ।
भुवनेशीस्तवम् ब्रूहि यद्यहन्तव वल्लभा ॥ १ ॥

ईश्वर उवाच

शृणु देवि ! प्रवक्ष्यामि भुवनेश्यष्टकं शुभम् ।
येन विज्ञातमात्रेण त्रैलोक्यमङ्गलम्भवेत् ॥ २ ॥
ॐ नमामि जगदाधारां भुवनेशीं भवप्रियाम् ।
भुक्तिमुक्तिप्रदां रम्यां रमणीयां शुभावहाम् ॥ ३ ॥
त्वं स्वाहा त्वं स्वधा देवि ! त्वं यज्ञा यज्ञनायिका ।
त्वं नाथा त्वं तमोहर्त्री व्याप्यव्यापकवर्जिता ॥ ४ ॥
त्वमाधारस्त्वमिज्या च ज्ञानज्ञेयं परं पदम् ।
त्वं शिवस्त्वं स्वयं विष्णुस्त्वमात्मा परमोऽव्ययः ॥ ५ ॥
त्वं कारणञ्च कार्यञ्च लक्ष्मीस्त्वञ्च हुताशनः ।
त्वं सोमस्त्वं रविः कालस्त्वं धाता त्वञ्च मारुतः ॥ ६ ॥
गायत्री त्वं च सावित्री त्वं माया त्वं हरिप्रिया ।
त्वमेवैका पराशक्तिस्त्वमेव गुरुरूपधृक् ॥ ७ ॥
त्वं काला त्वं कलाऽतीता त्वमेव जगतांश्रियः ।
त्वं सर्वकार्यं सर्वस्य कारणं करुणामयि ! ॥ ८ ॥
इदमष्टकमाद्याया भुवनेश्या वरानने ।
त्रिसन्ध्यं श्रद्धया मर्त्यो यः पठेत् प्रीतमानसः ॥ ९ ॥
सिद्धयो वशगास्तस्य सम्पदो वशगा गृहे ।
राजानो वशमायान्ति स्तोत्रस्याऽस्य प्रभावतः ॥ १० ॥

भूतप्रेतपिशाचाद्या नेक्षन्ते तां दिशं ग्रहाः ।
यं यं कामं प्रवाञ्छेत साधकः प्रीतमानसः ।। ११ ।।
तं तमाप्नोति कृपया भुवनेश्या वरानने !
अनेन सदृशं स्तोत्रं न समं भुवनत्रये ।। १२ ।।
सर्वसम्पत्प्रदमिदं (स्तोत्रं) पावनानाञ्च पावनम् ।
अनेन स्तोत्रवर्येण साधितेन वरानने ! ।
सम्पदो वशमायान्ति भुवनेश्याः प्रसादतः ।। १३ ।।

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे श्रीभुवनेश्वर्यष्टकं सम्पूर्णम् । संवत् १६४३
फाल्गुन वदि १० गुरुवारः ।

अथ श्रीभुवनेश्वर्या भकरादिसहस्रनाम स्तोत्रम्

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीसहस्रनामस्तोत्रमंत्रस्यसदाशिव ऋषिः, अनुष्टुप् छंदः, भुवनेश्वरी देवता, लज्जा बीजम्, कमला शक्तिः, वाग्भवं कीलकम्, सर्वार्थसाधने पाठे विनियोगः ॥

ॐ भुवनेशी भुवाराध्या भवानी भयनाशिनी ।
भवरूपा भवानन्दा भवसागरतारिणी ॥ १ ॥

भवोद्भवा भवरता भवभारनिवारिणी ।
भव्यास्या भव्यनयना भव्यरूपा भवौषधिः ॥ २ ॥

भव्याङ्गना भव्यकेशी भवपाशविमोचिनी ।
भव्यासना भव्यवस्त्रा भव्याभरणभूषिता ॥ ३ ॥

भगरूपा भगानन्दा भगेशी भगमालिनी ।
भगविद्या भगवती भगक्लिन्ना भगावहा ॥ ४ ॥

भगाङ्कुरा भगक्रीडा भगाढ्या भगमङ्गला ।
भगलीला भगप्रीता भगसम्पद्भगेश्वरी ॥ ५ ॥

भगालया भगोत्साहा भगस्था भगपोषिणी ।
भगोत्सवा भगविद्या भगमाता भगस्थिता ॥ ६ ॥

भगशक्तिर्भगनिधिर्भगपूजा भगेषणा ।
भगस्वापा भगाधीशा भगाच्र्या भगसुन्दरी ॥ ७ ॥

भगरेखा भगस्नेहा भगस्नेहविवर्धिनी ।
भगिनी भगबीजस्था भगभोगविलासिनी ॥ ८ ॥

भगाचारा भगाधारा भगाकारा भगाश्रया ।
भगपुष्पा भगश्रीपा भगपुष्पनिवासिनी ॥ ९ ॥

भव्यरूपधरा भव्या भव्यपुष्पैरलङ्कृता ।
भव्यलीला भव्यमाला भव्याङ्गी भव्यसुन्दरी ॥ १० ॥

भव्यशीला भव्यलीला भव्याक्षी भव्यनाशिनी ।
भव्याङ्गिका भव्यवाणी भव्यकान्तिर्भगालिनी ॥ ११ ॥
भव्यत्रपा भव्यनदी भव्यभोगविहारिणी ।
भव्यस्तनी भव्यमुखी भव्यगोष्ठी भयापहा ॥ १२ ॥
भक्तेश्वरी भक्तिकरी भक्तानुग्रहकारिणी ।
भक्तिदा भक्तिजननी भक्तानन्दविवर्द्धिनी ॥ १३ ॥
भक्तिप्रिया भक्तिरता भक्तिभावविहारिणी ।
भक्तिशीला भक्तिलीला भक्तेशा भक्तिपालिनी ॥ १४ ॥
भक्तिविद्या भक्तविद्या भक्तिर्भक्तिविनोदिनी ।
भक्तिरीतिर्भक्तिप्रीतिर्भक्तिसाधनसाधिनी ॥ १५ ॥
भक्तिसाध्या भक्तसाध्या भक्तिराली भवेश्वरी ।
भटविद्या भटानन्दा भटस्था भटरूपिणी ॥ १६ ॥
भटमान्या भटस्थान्या भटस्थाननिवासिनी ।
भटिनी भटरूपेशी भटरूपविवर्द्धिनी ॥ १७ ॥
भटवेशी भटेशी च भटभाग्भवसुन्दरी ।
भटप्रीत्या भटरीत्या भटानुग्रहकारिणी ॥ १८ ॥
भटाराध्या भटबोध्या भटबोधविनोदिनी ।
भटैः सेव्या भटवरा भटाचर्या भटबोधिनी ॥ १९ ॥
भटकीर्त्या भटकला भटपा भटपालिनी ।
भटैश्वर्य्या भटाधीशा भटेच्छा भटतोषिणी ॥ २० ॥
भटेशी भटजननी भटभाग्यविवर्द्धिनी ।
भटभुक्तिर्भटयुक्तिर्भटप्रीतिविवर्द्धिनी ॥ २१ ॥
भाग्येशी भाग्यजननी भाग्यस्था भाग्यरूपिणी ।
भावना भावकुशला भावदा भाववर्द्धिनी ॥ २२ ॥
भावरूपा भावरसा भवान्तरविहारिणी ।
भवाङ्कुरा भवकला भावस्थाननिवासिनी ॥ २३ ॥
भावान्तरा भावधृता भावमध्यव्यवस्थिता ।
भावऋद्धिर्भावसिद्धिर्भावादिर्भावभाविनी ॥ २४ ॥

भावालया भावपरा भावसाधनतत्परा ।
भावेश्वरी भावगम्या भावस्था भावगर्विता ।। २५ ।।
भाविनी भावरमणी भारती भारतेश्वरी ।
भागीरथी भाग्यवती भाग्योदयकरी कला ।। २६ ।।
भाग्याश्रया भाग्यमयी भाग्या भाग्यफलप्रदा ।
भाग्याचारा भाग्यसारा भाग्यधारा च भाग्यदा ।। २७ ।।
भाग्येश्वरी भाग्यनिधिर्भाग्या भाग्यसुमातृका ।
भाग्येच्छा भाग्यना भाग्यभाग्यदा भाग्यमातृका ।। २८ ।।
भाग्येच्छा भाग्यमनसा भाग्यादिर्भाग्यमध्यगा ।
भ्रात्रीश्वरी भ्रातृमती भ्रात्रम्बा भ्रातृपालिनी ।। २९ ।।
भ्रातृस्था भ्रातृकुशला भ्रामरी भ्रमराम्बिका ।
भिल्लरूपा भिल्लवती भिल्लस्था भिल्लपालिनी ।। ३० ।।
भिल्लमाता भिल्लधात्री भिल्लिनी भिल्लकेश्वरी ।
भिल्लकीर्तिर्भिल्लकला भिल्लमन्दरवासिनी ।। ३१ ।।
भिल्लक्रीडा भिल्ललीला भिल्लाचर्या भिल्लवल्लभा ।
भिल्लस्नुषा भिल्लपुत्री भिल्लिनी भिल्लपोषिणी ।। ३२ ।।
भिल्लपौत्री भिल्लगोष्ठी भिल्लाचारनिवासिनी ।
भिल्लपूज्या भिल्लवाणी भिल्लाणी भिल्लभीतिहा ।। ३३ ।।
भीतस्था भीतजननी भीतिर्भीतिविनाशिनी ।
भीतिदा भीतिहा भीत्या भीत्याकारविहारिणी ।। ३४ ।।
भीतेशी भीतिशमनी भीतिस्थाननिवासिनी ।
भीतिरीत्या भीतिकला भीतीच्छा भीतिहारिणी ।। ३५ ।।
भीमेशी भीमजननी भीमा भीमनिवासिनी ।
भीमेश्वरी भीमरता भीमाङ्गी भीमपालिनी ।। ३६ ।।
भीमनादा भीमतन्त्री भीमैश्वर्य्यविवर्द्धिनी ।
भीमगोष्ठी भीमधात्री भीमविद्याविनोदिनी ।। ३७ ।।
भीमविक्रमदात्री च भीमविक्रमवासिनी ।
भीमानन्दकरी देवी भीमानन्दविहारिणी ।। ३८ ।।

भीमोपदेशिनी नित्या भीमभाग्यप्रदायिनी ।
भीमसिद्धिर्भीमऋद्धिर्भीमभक्तिविवर्द्धिनी ॥ ३९ ॥
भीमस्था भीमवरदा भीमधर्मोपदेशिनी ।
भीष्मेश्वरी भीष्मभृतिर्भीष्मबोधप्रबोधिनी ॥ ४० ॥
भीष्मश्रीर्भीष्मजननी भीष्मज्ञानोपदेशिनी ।
भीष्मस्था भीष्मतपना भीष्मेशी भीष्मतारिणी ॥ ४१ ॥
भीष्मलीला भीष्मशीला भीष्मरोधोनिवासिनी ।
भीष्माश्रया भीष्मवरा भीष्महर्षविवर्द्धिनी ॥ ४२ ॥
भुवना भुवनेशानी भुवनानन्दकारिणी ।
भुविस्था भुविरूपा च भुविभारनिवारिणी ॥ ४३ ॥
भुक्तिस्था भुक्तिदा भुक्तिर्भुक्तेशी भुक्तिरूपिणी ।
भुक्तेश्वरी भुक्तिदात्री भुक्तिराकाररूपिणी ॥ ४४ ॥
भुजङ्गस्था भुजङ्गेशी भुजङ्गाकाररूपिणी ।
भुजङ्गी भुजगावासा भुजङ्गानन्ददायिनी ॥ ४५ ॥
भूतेशी भूतजननी भूतस्था भूतरूपिणी ।
भूतेश्वरी भूतलीला भूतवेषकरी सदा ॥ ४६ ॥
भूतदात्री भूतकेशी भूतधात्री महेश्वरी ।
भूतरीत्या भूतपत्नी भूतलोकनिवासिनी ॥ ४७ ॥
भूतसिद्धिर्भूतऋद्धिर्भूतानन्दनिवासिनी ।
भूतकीर्तिर्भूतलक्ष्मीर्भूतभाग्यविवर्द्धिनी ॥ ४८ ॥
भूताचार्या भूतरमणी भूतविद्याविनोदिनी ।
भूतपौत्री भूतपुत्री भूतभार्य्या विधीश्वरी ॥ ४९ ॥
भूतस्था भूतरमणी भूतेशी भूतपालिनी ।
भूपमाता भूपनिभा भूपैश्वर्य्यप्रदायिनी ॥ ५० ॥
भूपचेष्टा भूपनेष्टा भूपभावविवर्द्धिनी ।
भूपस्वसा भूपभूरी भूपपौत्री तथा वधूः ॥ ५१ ॥
भूपकीर्तिर्भूपनीतिर्भूपभाग्यविवर्द्धिनी ।
भूपक्रिया भूपक्रीडा भूपमन्दरवासिनी ॥ ५२ ॥

भूपार्च्या भूपसंराध्या भूपभोगविवर्द्धिनी ।
भूपाश्रया भूपकला भूपकौतुकदण्डिनी ॥ ५३ ॥
भूषणस्था भूषणेशी भूषा भूषणधारिणी ।
भूषणाधारधर्मेशी भूषणाकाररूपिणी ॥ ५४ ॥
भूपताचारनिलया भूपताचारभूषिता ।
भूपताचाररचना भूपताचारमण्डिता ॥ ५५ ॥
भूपताचारधर्मेशी भूपताचारकारिणी ।
भूपताचारचरिता भूपताचारवर्जिता ॥ ५६ ॥
भूपताचारवृद्धिस्था भूपताचारवृद्धिदा ।
भूपताचारकरणा भूपताचारकर्मदा ॥ ५७ ॥
भूपताचारकर्मेशी भूपताचारकर्मदा ।
भूपताचारदेहस्था भूपताचारकर्मिणी ॥ ५८ ॥
भूपताचारसिद्धिस्था भूपताचारसिद्धिदा ।
भूपताचारधर्माणी भूपताचारधारिणी ॥ ५९ ॥
भूपतानन्दलहरी भूपतेश्वररूपिणी ।
भूपतेर्नीतिनीतिस्था भूपतिस्थानवासिनी ॥ ६० ॥
भूपतिस्थानगीर्वाणा भूपतेर्वरधारिणी ।
भेषजानन्दलहरी भेषजानन्दरूपिणी ॥ ६१ ॥
भेषजानन्दमहिषी भेषजानन्दधारिणी ।
भेषजानन्दकर्मेशी भेषजानन्ददायिनी ॥ ६२ ॥
भेषजी भेषजा कन्दा भेषजस्थानवासिनी ।
भेषजेश्वररूपा च भेषजेश्वरसिद्धिदा ॥ ६३ ॥
भेषजेश्वरधर्मेशी भेषजेश्वरकर्मदा ।
भेषजेश्वरकर्मेशी भेषजेश्वरकर्मिणी ॥ ६४ ॥
भेषजाधीशजननी भेषजाधीशपालिनी ।
भेषजाधीशरचना भेषजाधीशमङ्गला ॥ ६५ ॥
भेषजारण्यमध्यस्था भेषजारण्यरक्षिणी ।
भैषज्यविद्या भैषज्या भैषज्येप्सितदायिनी ॥ ६६ ॥

भैषजस्था भैषजेशी भैषज्यानन्दवर्द्धिनी ।
भैरवी भैरवाचारा भैरवाकाररूपिणी ॥ ६७ ॥
भैरवाचारचतुरा भैरवाचारमण्डिता ।
भैरवा च भैरवेशी भैरवानन्ददायिनी ॥ ६८ ॥
भैरवानन्दरूपेशी भैरवानन्दरूपिणी ।
भैरवानन्दनिपुणा भैरवानन्दमन्दिरा ॥ ६९ ॥
भैरवानन्दतत्वज्ञा भैरवानन्दतत्परा ।
भैरवानन्दकुशला भैरवानन्दनीतिदा ॥ ७० ॥
भैरवानन्दप्रीतिस्था भैरवानन्दप्रीतिदा ।
भैरवानन्दमहिषी भैरवानन्दमालिनी ॥ ७१ ॥
भैरवानन्दमतिदा भैरवानन्दमातृका ।
भैरवाधारजननी भैरवाधाररक्षिणी ॥ ७२ ॥
भैरवाधाररूपेशी भैरवाधाररूपिणी ।
भैरवाधारनिचया भैरवाधारनिश्चया ॥ ७३ ॥
भैरवाधारतत्वज्ञा भैरवाधारतत्त्वदा ।
भैरवाश्रयतन्त्रेशी भैरवाश्रयमन्त्रिणी ॥ ७४ ॥
भैरवाश्रयरचना भैरवाश्रयरञ्जिता ।
भैरवाश्रयनिर्धारा भैरवाश्रयनिर्भरा ॥ ७५ ॥
भैरवाश्रयनिर्धारा भैरवाश्रयनिर्धरा ।
भैरवानन्दबोधेशी भैरवानन्दबोधिनी ॥ ७६ ॥
भैरवानन्दबोधस्था भैरवानन्दबोधदा ।
भैरव्यैश्वर्य्यवरदा भैरव्यैश्वर्य्यदायिनी ॥ ७७ ॥
भैरव्यैश्वर्य्यरचना भैरव्यैश्वर्य्यवर्द्धिनी ।
भैरव्यैश्वर्य्यसिद्धिस्था भैरव्यैश्वर्य्यसिद्धिदा ॥ ७८ ॥
भैरव्यैश्वर्य्यसिद्धेशी भैरव्यैश्वर्य्यरूपिणी ।
भैरव्यैश्वर्यसुपथा भैरव्यैश्वर्य्यसुप्रभा ॥ ७९ ॥
भैरव्यैश्वर्य्यवृद्धिस्था भैरव्यैश्वर्य्यवृद्धिदा ।
भैरव्यैश्वर्य्यकुशला भैरव्यैश्वर्य्यकामदा ॥ ८० ॥

भैरव्यैश्वर्य्यसुलभा भैरव्यैश्वर्य्यसम्प्रदा ।
भैरव्यैश्वर्य्यविशदा भैरव्यैश्वर्य्यविक्रिया ॥ ८१ ॥
भैरव्यैश्वर्य्यविनया भैरव्यैश्वर्य्यवेदिता ।
भैरव्यैश्वर्य्यमहिमा भैरव्यैश्वर्य्यमानिनी ॥ ८२ ॥
भैरव्यैश्वर्य्यनिरता भैरव्यैश्वर्य्यनिर्मिता ।
भोगेश्वरी भोगमाता भोगस्था भोगरक्षिणी ॥ ८३ ॥
भोगक्रीडा भोगलीला भोगेशी भोगवर्द्धिनी ।
भोगाङ्गी भोगरमणी भोगाचारविचारिणी ॥ ८४ ॥
भोगाश्रया भोगवती भोगिनी भोगरूपिणी ।
भोगाङ्कुरा भोगविधा भोगाधारनिवासिनी ॥ ८५ ॥
भोगाम्बिका भोगरता भोगसिद्धिविधायिनी ।
भोजस्था भोजनिरता भोजनानन्ददायिनी ॥ ८६ ॥
भोजनानन्दलहरी भोजनान्तर्विहारिणी ।
भोजनानन्दमहिमा भोजनानन्दभोग्यदा ॥ ८७ ॥
भोजनानन्दरचना भोजनानन्दहर्षिता ।
भोजनाचारचतुरा भोजनाचारमण्डिता ॥ ८८ ॥
भोजनाचारचरिता भोजनाचारचर्चिता ।
भोजनाचारसम्पन्ना भोजनाचारसंयुता ॥ ८९ ॥
भोजनाचारचित्तस्था भोजनाचाररीतिदा ।
भोजनाचारविभवा भोजनाचारविस्तृता ॥ ९० ॥
भोजनाचाररमणी भोजनाचाररक्षिणी ।
भोजनाचारहरिणी भोजनाचारभक्षिणी ॥ ९१ ॥
भोजनाचार सुखदा भोजनाचारसुस्पृहा ।
भोजनाहारसुरसा भोजनाहारसुन्दरी ॥ ९२ ॥
भोजनाहारचरिता भोजनाहारचञ्चला ।
भोजनास्वादविभवा भोजनास्वादवल्लभा ॥ ९३ ॥
भोजनास्वादसंतुष्टा भोजनास्वादसम्प्रदा ।
भोजनास्वादसुपथा भोजनास्वादसंश्रया ॥ ९४ ॥

भोजनास्वादनिरता भोजनास्वादनिर्णता ।
भौत्वरा भौत्वरेशानी भौकागत्वररूपिणी ॥ ९५ ॥
भौत्वरस्था भौत्वरादिर्भौत्वरस्थानवासिनी ।
भङ्कारी भर्मिणी भर्मी भस्मेशी भस्मरूपिणी ॥ ९६ ॥
भङ्कारा भञ्जना भस्मा भस्मस्था भस्मवासिनी ।
भत्वरी भत्वराकारा भत्वरस्थानवासिनी ॥ ९७ ॥
भत्वराढ्या भत्वरेशी भरूपा भस्वरूपिणी ।
भूधरस्था भूधरेशी भूधरी भूधरेश्वरी ॥ ९८ ॥
भूधरानन्दरमणी भूधरानन्दपालिनी ।
भूधरानन्दजननी भूधरानन्दवासिनी ॥ ९९ ॥
भूधरानन्दरमणी भूधरानन्दराञ्चिता ।
भूधरानन्दमहिमा भूधरानन्दमन्दिरा ॥ १०० ॥
भूधरानन्दसर्वेशी भूधरानन्दसर्वसूः ।
भूधरानन्दमहिषी भूधरानन्ददायिनी ॥ १०१ ॥
भूधराधीशधर्मेशी भूधरानन्दधर्मिणी ।
भूधराधीशधर्म्मेशी भूधराधीशसिद्धिदा ॥ १०२ ॥
भूधराधीशकर्मेशी भूधराधीशकामिनी ।
भूधराधीशनिरता भूधाराधीशनिर्णिता ॥ १०३ ॥
भूधराधीशनीतिस्था भूधराधीशनीतिदा ।
भूधराधीशभाग्येशी भूधराधीशभामिनी ॥ १०४ ॥
भूधराधीशबुद्धिस्था भूधराधीशबुद्धिदा ।
भूधराधीशवरदा भूधराधीशवन्दिता ॥ १०५ ॥
भूधराधीशसंराध्या भूधराधीशचर्चिता ।
भङ्गेश्वरी भङ्गमयी भङ्गस्था भङ्गरूपिणी ॥ १०६ ॥
भङ्गाञ्चता भङ्गरता भङ्गार्च्या भङ्गरञ्जिणी ।
भङ्गावती भङ्गलीला भङ्गभोगविलासिनी ॥ १०७ ॥
भङ्गारङ्गप्रतीकाशा भङ्गारङ्गनिवासिनी ।
भङ्गाशिनी भङ्गमूली भङ्गभोगविधायिनी ॥ १०८ ॥

भङ्गाश्रया भङ्गबीजा भङ्गबीजाङ्कुरेश्वरी ।
भङ्गयंत्रचमत्कारा भङ्गयंत्रेश्वरी तथा ॥ १०६ ॥
भङ्गयंत्रविमोहस्था भङ्गयंत्रविनोदिनी ।
भङ्गयंत्रविचारस्था भङ्गयंत्रविचारिणी ॥ ११० ॥
भङ्गयंत्ररसानन्दा भङ्गयंत्ररसेश्वरी ।
भङ्गयंत्ररसस्वादा भङ्गयंत्ररसस्थिता ॥ १११ ॥
भङ्गयंत्ररसाधारा भङ्गयंत्ररसाश्रया ।
भूधरात्मजरूपेशी भूधरात्मजरूपिणी ॥ ११२ ॥
भूधरात्मजयोगेशी भूधरात्मजपालिनी ।
भूधरात्मजमहिमा भूधरात्मजमालिनी ॥ ११३ ॥
भूधरात्मजभूतेशी भूधरात्मजरूपिणी ।
भूधरात्मजसिद्धिस्था भूधरात्मजसिद्धिदा ॥ ११४ ॥
भूधरात्मजभावेशी भूधरात्मजभाविनी ।
भूधरात्मजभोगस्था भूधरात्मजभोग्यदा ॥ ११५ ॥
भूधरात्मजभोगेशी भूधरात्मजभोगिनी ।
भव्या भव्यतरा भव्यभाविनी भववल्लभा ॥ ११६ ॥
भावातिभावा भावाख्या भातिभा भीतिभान्तिका ।
भासातिभासा भासस्था भासाभा भास्करोपमा ॥ ११७ ॥
भास्करस्था भास्करेशी भास्करैश्वर्य्यवर्द्धिनी ।
भास्करानन्दजननी भास्करानन्ददायिनी ॥ ११८ ॥
भास्करानन्दमहिमा भास्करानन्दमातृका ।
भास्करानन्दनैश्वर्य्या भास्करानन्दनेश्वरा ॥ ११९ ॥
भास्करानन्दसुपथा भास्करानन्दसुप्रभा ।
भास्करानन्दनिचया भास्करानन्दनिर्मिता ॥ १२० ॥
भास्करानन्दनीतिस्था भास्करानन्दनीतिदा ।
भास्करोदयमध्यस्था भास्करोदयमध्यगा ॥ १२१ ॥
भास्करोदयतेजःस्था भास्करोदयतेजसा ।
भास्कराचारचतुरा भास्कराचारचन्द्रिका ॥ १२२ ॥

भास्कराचारपरमा भास्कराचारचण्डिका ।
भास्कराचारपरमा भास्कराचारपारदा ॥ १२३ ॥
भास्कराचारमुक्तिस्था भास्कराचारमुक्तिदा ।
भास्कराचारसिद्धिस्था भास्कराचारसिद्धिदा ॥ १२४ ॥
भास्कराचरणाधारा भास्कराचरणाश्रिता ।
भास्कराचारमन्त्रेशी भास्कराचारमन्त्रिणी ॥ १२५ ॥
भास्कराचारवित्तेशी भास्कराचारचित्रिणी ।
भास्कराधारधर्म्मेशी भास्कराधारधारिणी ॥ १२६ ॥
भास्कराधाररचना भास्कराधाररचिता ।
भास्कराधारकर्माणी भास्कराकर्म्मदा ॥ १२७ ॥
भास्कराधाररूपेशी भास्कराधाररूपिणी ।
भास्कराधारकाम्येशी भास्कराधारकामिनी ॥ १२८ ॥
भास्कराधारसांशेशी भास्कराधारसांशिनी ।
भास्कराधारधर्मेशी भास्कराधारधामिनी ॥ १२९ ॥
भास्कराधारचक्रस्था भास्कराधारचक्रिणी ।
भास्करेश्वरचेत्रेशी भास्करेश्वरचेत्रिणी ॥ १३० ॥
भास्करेश्वरजननी भास्करेश्वरपालिनी ।
भास्करेश्वरसर्वेशी भास्करेश्वरशर्वरी ॥ १३१ ॥
भास्करेश्वरसद्धीमा भास्करेश्वरसन्निभा ।
भास्करेश्वरसुपथा भास्करेश्वरसुप्रभा ॥ १३२ ॥
भास्करेश्वरयुवती भास्करेश्वरसुन्दरी ।
भास्करेश्वरमूर्तेशी भास्करेश्वरमूर्तिनी ॥ १३३ ॥
भास्करेश्वरमित्रेशी भास्करेश्वरमन्त्रिणी ।
भास्करेश्वरसानन्दा भास्करेश्वरसाश्रया ॥ १३४ ॥
भास्करेश्वरचित्रस्था भास्करेश्वरचित्रदा ।
भास्करेश्वरचित्रेशी भास्करेश्वरचित्रिणी ॥ १३५ ॥
भास्करेश्वरभाग्यस्था भास्करेश्वरभाग्यदा ।
भास्करेश्वरभाग्येशी भास्करेश्वरभाविनी ॥ १३६ ॥

भास्करेश्वरकीर्तीशी भास्करेश्वरकीर्तिनी ।
भास्करेश्वरकीर्तिस्था भास्करेश्वरकीर्तिदा ॥ १३७ ॥
भास्करेश्वरकरुणा भास्करेश्वरकारिणी ।
भास्करेश्वरगीर्वाणी भास्करेश्वरगारुडी ॥ १३८ ॥
भास्करेश्वरदेहस्था भास्करेश्वरदेहदा ।
भास्करेश्वरनादस्था भास्करेश्वरनादिनी ॥ १३९ ॥
भास्करेश्वरनादेशी भास्करेश्वरनादिनी ।
भास्करेश्वरकोशस्था भास्करेश्वरकोशदा ॥ १४० ॥
भास्करेश्वरकोशेशी भास्करेश्वरकोशिनी ।
भास्करेश्वरशक्तिस्था भास्करेश्वरशक्तिदा ॥ १४१ ॥
भास्करेश्वरतोषेशी भास्करेश्वरतोषिणी ।
भास्करेश्वरक्षत्रेशी भास्करेश्वरक्षत्रिणी ॥ १४२ ॥
भास्करेश्वरयोगस्था भास्करेश्वरयोगदा ।
भास्करेश्वरयोगेशी भास्करेश्वरयोगिनी ॥ १४३ ॥
भास्करेश्वरपद्मेशी भास्करेश्वरपद्मिनी ।
भास्करेश्वरहृद्बीजा भास्करेश्वरहृद्वरा ॥ १४४ ॥
भास्करेश्वरहृद्योनिर्भास्करेश्वरहृद्द्युतिः ।
भास्करेश्वरबुद्धिस्था भास्करेश्वरसद्धिधा ॥ १४५ ॥
भास्करेश्वरसद्वाणी भास्करेश्वरसद्वरा ।
भास्करेश्वरराज्यस्था भास्करेश्वरराज्यदा ॥ १४६ ॥
भास्करेश्वरराज्येशी भास्करेश्वरपोषिणी ।
भास्करेश्वरज्ञानस्था भास्करेश्वरज्ञानदा ॥ १४७ ॥
भास्करेश्वरज्ञानेशी भास्करेश्वरगामिनी ।
भास्करेश्वरलक्षेशी भास्करेश्वरलक्षिता ॥ १४८ ॥
भास्करेश्वरक्षालिता भास्करेश्वररक्षिता ।
भास्करेश्वरखड्गस्था भास्करेश्वरखड्गदा ॥ १४९ ॥
भास्करेश्वरखड्गेशी भास्करेश्वरखड्गिनी ।
भास्करेश्वरकार्य्येशी भास्करेश्वरकामिनी ॥ १५० ॥

भास्करेश्वरकायस्था भास्करेश्वरकायदा ।
भास्करेश्वरचक्षुःस्था भास्करेश्वरचक्षुषा ॥ १५१ ॥
भास्करेश्वरसन्नाभा भास्करेश्वरसार्चिता ।
भ्रूणहत्याप्रशमनी भ्रूणपापविनाशिनी ॥ १५२ ॥
भ्रूणदारिद्र्यशमनी भ्रूणरोगविनाशिनी ।
भ्रूणशोकप्रशमनी भ्रूणदोषनिवारिणी ॥ १५३ ॥
भ्रूणसंतापशमनी भ्रूणविभ्रमनाशिनी ।
भवाब्धिस्था भवाब्धीशा भवाब्धिभयनाशिनी ॥ १५४ ॥
भवाब्धिपारकरणी भवाब्धिसुखवर्द्धिनी ।
भवाब्धिकार्य्यकरणी भवाब्धिकरुणानिधिः ॥ १५५ ॥
भवाब्धिकालशमनी भवाब्धिवरदायिनी ।
भवाब्धिभजनस्थाना भवाब्धिभजनस्थिता ॥ १५६ ॥
भवाब्धिभजनाकारा भवाब्धिभजनक्रिया ।
भवाब्धिभजनाचारा भवाब्धिभजनाङ्कुरा ॥ १५७ ॥
भवाब्धिभजनानन्दा भवाब्धिभजनाधिपा ।
भवाब्धिभजनैश्वर्य्या भवाब्धिभजनेश्वरी ॥ १५८ ॥
भवाब्धिभजनासिद्धिर्भवाब्धिभजनारतिः ।
भवाब्धिभजनानित्या भवाब्धिभजनानिशा ॥ १५९ ॥
भवाब्धिभजनानिम्ना भवाब्धिभवभीतिहा ।
भवाब्धिभजना काम्या भवाब्धिभजनाकला ॥ १६० ॥
भवाब्धिभजनाकीर्तिर्भवाब्धिभजनाकृता ।
भवाब्धिशुभदानित्या भवाब्धिशुभदायिनी ॥ १६१ ॥
भवाब्धिसकलानन्दा भवाब्धिसकलाकला ।
भवाब्धिसकलासिद्धिर्भवाब्धिसकला निधिः ॥ १६२ ॥
भवाब्धिसकलासारा भवाब्धिसकलार्थदा ।
भवाब्धिभवनामूर्तिर्भवाब्धिभवनाकृतिः ॥ १६३ ॥
भवाब्धिभवना भव्या भवाब्धिभवनाम्भसा ।
भवाब्धिमदनारूपा भवाब्धिमदनातुरा ॥ १६४ ॥

भवाब्धिमदनेशानी भवाब्धिमदनेश्वरी ।
भवाब्धिभाग्यरचना भवाब्धिभाग्यदा सदा ॥ १६५ ॥
भवाब्धिभाग्यदाकाला भवाब्धिभाग्यनिर्भरा ।
भवाब्धिभाग्यनिरता भवाब्धिभाग्यभाविता ॥ १६६ ॥
भवाब्धिभाग्यसंचारा भवाब्धिभाग्यसंचिता ।
भवाब्धिभाग्यसुपथा भवाब्धिभाग्यसुप्रदा ॥ १६७ ॥
भवाब्धिभाग्यरीतिज्ञा भवाब्धिभाग्यनीतिदा ।
भवाब्धिभाग्यरीतीशी भवाब्धिभाग्यरीतिनी ॥ १६८ ॥
भवाब्धिभोगनिपुणा भवाब्धिभोगसम्प्रदा ।
भवाब्धिभाग्यगहना भवाब्धिभोगगुम्फिता ॥ १६९ ॥
भवाब्धिभोगगान्धारी भवाब्धिभोगगुम्फिता ।
भवाब्धिभोगसुरसा भवाब्धिभोगसुस्पृहा ॥ १७० ॥
भवाब्धिभोगग्रंथिनी भवाब्धिभोगयोगिनी ।
भवाब्धिभोगरसना भवाब्धिभोगराजिता ॥ १७१ ॥
भवाब्धिभोगविभवा भवाब्धिभोगविस्तृता ।
भवाब्धिभोगवरदा भवाब्धिभोगवन्दिता ॥ १७२ ॥
भवाब्धिभोगकुशला भवाब्धिभोगशोभिता ।
भवाब्धिभेदजननी भवाब्धिभेदपालिनी ॥ १७३ ॥
भवाब्धिभेदरचना भवाब्धिभेदरक्षिता ।
भवाब्धिभेदनियता भवाब्धिभेदनिःस्पृहा ॥ १७४ ॥
भवाब्धिभेदरचना भवाब्धिभेदरोपिता ।
भवाब्धिभेदराशिघ्नी भवाब्धिभेदराशिनी ॥ १७५ ॥
भवाब्धिभेदकर्मेशी भवाब्धिभेदकर्मिणी ।
भद्रेशी भद्रजननी भद्रा भद्रनिवासिनी ॥ १७६ ॥
भद्रेश्वरी भद्रवती भद्रस्था भद्रदायिनी ।
भद्ररूपा भद्रमयी भद्रदा भद्रभाषिणी ॥ १७७ ॥
भद्रकर्णा भद्रवेषा भद्राम्बा भद्रमन्दिरा ।
भद्रक्रिया भद्रकला भद्रिका भद्रवर्द्धिनी ॥ १७८ ॥

भद्रक्रीडा भद्रकला भद्रलीलाऽभिलाषिणी ।
भद्राङ्करा भद्ररता भद्राङ्गी भद्रमंत्रिणी ॥ १७६ ॥
भद्रविद्याऽभद्रविद्या भद्रवाग्भद्रवादिनी ।
भूपमङ्गलदा भूपा भूलता भूमिवाहिनी ॥ १८० ॥
भूपभोगा भूपशोभा भूपाशा भूपरूपदा ।
भूपाकृतिर्भूपरतिर्भूपश्रीर्भूपश्रेयसी ॥ १८१ ॥
भूपनीतिर्भूपरीतिर्भूपभीतिर्भयङ्करी ।
भवदानन्दलहरी भवदानन्दसुन्दरी ॥ १८२ ॥
भवदानन्दकरणी भवदानन्दवर्द्धिनी ।
भवदानन्दरमणी भवदानन्ददायिनी ॥ १८३ ॥
भवदानन्दजननी भवदानन्दरूपिणी ।
य इदं पठते स्तोत्रं प्रत्यहं भक्तिसंयुतः ॥ १८४ ॥
गुरुभक्तियुतो भूत्वा गुरुसेवापरायणः ।
जितेन्द्रियः सत्यवादी ताम्बूलपूरिताननः ॥ १८५ ॥
दिवारात्रौ च सन्ध्यायां स भवेत्परमेश्वरः ।
स्तवमात्रस्य पाठेन राजा वश्यो भवेद् ध्रुवम् ॥ १८६ ॥
सर्वागमेषु विज्ञानी सर्वतन्त्रे स्वयं हरः ।
गुरोर्मुखात् समभ्यस्य स्थित्वा च गुरुसन्निधौ ॥ १८७ ॥
शिवस्थानेषु सन्ध्यायां शून्यागारे चतुष्पथे ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि स योगी नात्र संशयः ॥ १८८ ॥
सर्वस्वदक्षिणां दद्यात्स्त्रीपुत्रादिकमेव च ।
स्वच्छन्दमानसो भूत्वा स्तवमेनं समुद्धरेत् ॥ १८६ ॥
एतत्स्तोत्ररतो देवि हररूपो न संशयः ।
यः पठेच्छृणुयाद्वापि एकचित्तेन सर्वदा ॥ १६० ॥
स दीर्घायुः सुखी वाग्मी वाणी तस्य न संशयः ।
गुरुपादरतो भूत्वा कामिनीनां भवेत्प्रियः ॥ १६१ ॥
धनवान्गुणवान् श्रीमान् धीमानिव गुरुः प्रिये ।
सर्वेषां तु प्रियो भूत्वा पूजयेत्सर्वदा स्तवम् ॥ १६२ ॥

मंत्रसिद्धिः करस्थैव तस्य देवि न संशयः ।
कुबेरत्वं भवेत्तस्य तस्याधीना हि सिद्धयः ॥ १९३ ॥
मृतपुत्रा च या नारी दौर्भाग्यपरिपीडिता ।
वन्ध्या वा काकवन्ध्या वा मृतवत्सा च याऽङ्गना ॥ १९४ ॥
धनधान्यविहीना च रोगशोकाकुला च या ।
ताभिरेतन्महादेवि भूर्जपत्रे विलिख्य वै ॥ १९५ ॥
सव्ये भुजे धारणीयं तेन सौख्यप्रदं भवेत् ।
एवं पुनः पुनर्यायाद्दुःखेन परिपीडिता ॥ १९६ ॥
सभायां व्यसने वाणीविवादे शत्रुसङ्कटे ।
चतुरङ्गे तथा युद्धे सर्वत्रापदि पीडने ॥ १९७ ॥
स्मरणादस्य कल्याणि संशया यान्ति दूरतः ।
न देयं परशिष्याय नाभक्ताय च दुर्जने ॥ १९८ ॥
दाम्भिकाय कुशीलाय कृपणाय सुरेश्वरि ।
दद्याच्छिष्याय शान्ताय विनीताय जितात्मने ॥ १९९ ॥
भक्ताय शान्तियुक्ताय रजःपूजारताय च ।
जन्मान्तरसहस्रैस्तु वर्णितुं नैव शक्यते ॥ २०० ॥
स्तवमात्रस्य माहात्म्यं वक्त्रकोटिशतैरपि ।
विष्णवे कथितं पूर्वं ब्रह्मणापि प्रियंवदे ॥ २०१ ॥
अधुनापि तव स्नेहात्कथितं परमेश्वरि ।
गोपितव्यं पशुभ्यश्च सर्वथा न प्रकाशयेत् ॥ २०२ ॥

इति महातन्त्रार्णवे ईश्वरपार्वतीसंवादे भुवनेश्वरीभकारादिसहस्रनाम स्तोत्रं समाप्तम् ।

श्रीभुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रम्

श्रीदेव्युवाच—भगवन् ब्रूहि तत्स्तोत्रं सर्वकामप्रसाधनम् ।
यस्य श्रवणमात्रेण नान्यच्छ्रोतव्यमिष्यते ॥ १ ॥
यदि मेऽनुग्रहः कार्यः प्रीतिश्चापि ममोपरि ।
तदिदं कथय ब्रह्मन् विमलं यन्महीतले ॥ २ ॥

ईश्वर उवाच—शृणु देवि प्रवक्ष्यामि सर्वकामप्रसाधनम् ।
हृदयं भुवनेश्वर्याः स्तोत्रमस्ति यशःप्रदम् ॥ ३ ॥

ॐ अस्य श्रीभुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रमंत्रस्य शक्तिर्ऋषिः, गायत्री छन्दः, भुवनेश्वरी देवता, हकारो बीजम्, ईकारः शक्तिः, रेफः कीलकम्, सकलमनोवाञ्छितसिद्ध्यर्थे पाठे विनियोगः ॥ ॐ ह्रीं हृदयाय नमः १, ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा २, ॐ ऐं शिखायै वषट् ३, ॐ ह्रीं कवचाय हुं ४, ॐ श्रीं नेत्रत्रयाय वौषट् ५, ॐ ऐं अस्त्राय फट् । इति हृद्यादिषडङ्गन्यासः ।

ॐ ह्रीं अंगुष्ठाभ्यां नमः १, ॐ श्रीं तर्जनीभ्यां नमः २, ॐ ऐं मध्यमाभ्यां नमः ३, ॐ ह्रीं अनामिकाभ्यां नमः ४, ॐ श्रीं कनिष्ठिकाभ्यां नमः ५, ॐ ऐं करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ६ । इति करन्यासः ।

अथ ध्यानम्

ध्यायेद् ब्रह्मादिकानां कृतजनिजननीं योगिनीं योगयोनिं
देवानां जीवनायोज्ज्वलितजयपरज्योतिरुग्राङ्गधात्रीम् ।
शंखं चक्रं च बाणं धनुरपि दधतीं दोश्चतुष्काम्बुजातै-
र्मायामाद्यां विशिष्टां भवभवभुवनां भूभुवाभारभूमिम् ॥ ४ ॥
यदाज्ञयेदं गगनाद्यशेषं सृजत्यजः श्रीपतिरौरसं वा ।
बिभर्ति संहर्ति भवस्तदन्ते भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ५ ॥
जगज्जनानन्दकरीं जयाख्यां यशस्विनीं यंत्रसुयज्ञयोनिम् ।
जितामितामित्रकृतप्रपञ्चां भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ६ ॥
हरौ प्रसुप्ते भुवनत्रयान्ते अवातरन्नाभिजपद्मजन्मा ।
विधिस्ततोऽन्धे विदधार यत्पदं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ७ ॥
न विद्यते क्वापि तु जन्म यस्या न वा स्थितिः सान्ततिकीह यस्याः ।
न वा निरोधेऽखिलकर्म्म यस्या भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ८ ॥
कटाक्षमोक्षाचरणोग्रवित्ता निवेशिताार्णा करुणार्द्रचित्ता ।
सुभक्तये एति समीप्सितं या भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ९ ॥

यतो जगज्जन्म बभूव योनेस्तदेव मध्ये प्रतिपाति या वा ।
तदत्ति याऽन्तेऽखिलमुग्रकाली भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १० ॥
सुषुप्तिकाले जनमध्ययन्त्या यया जनः स्वप्नमवैति किंचित् ।
प्रबुध्यते जाग्रति जीव एष भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ ११ ॥
दयास्फुरत्कोरकटाक्षलाभान्नैकत्र यस्याः प्रलभन्ति सिद्धाः ।
कवित्वमीशित्वमपि स्वतंत्रा भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १२ ॥
लसन्मुखाम्भोरुहमुत्स्फुरंतं हृदि प्रणिध्याय दिशि स्फुरंतः ।
यस्याः कृपार्द्रं प्रविकाशयंति भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १३ ॥
यदानुरागानुगतालिचित्राश्चिरंतनप्रेमपरिप्लुताङ्गाः ।
सुनिर्भयाः सन्ति प्रमुद्य यस्याः भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १४ ॥
हरिर्विरञ्चिर्हर ईशितारः पुरोऽवतिष्ठंति प्रपन्नभङ्गाः ।
यस्याः समिच्छन्ति सदानुकूल्यं भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १५ ॥
मनुं यदीयं हरमग्निसंस्थं ततश्च वामश्रुतिचन्द्रसक्तम् ।
ज न्ति ये स्युर्हि सुवंदितास्ते भजामहे श्रीभुवनेश्वरीं ताम् ॥ १६ ॥
प्रसीदतु प्रेमरसार्द्रचित्ता सदा हि सा श्रीभुवनेश्वरी मे ।
कृपाकटाक्षेण कुबेरकल्पा भवंति यस्याः पदभक्तिभाजः ॥ १७ ॥
मुदा सुपाठ्यं भुवनेश्वरीयं सदा सतां स्तोत्रमिदं सुसेव्यम् ।
सुखप्रदं स्यात्कलिकल्मषघ्नं सुशृण्वतां संपठतां प्रशस्यम् ॥ १७ ॥
एतत्तु हृदयं स्तोत्रं पठेद्यस्तु समाहितः ।
भवेत्तस्येष्टदा देवी प्रसन्ना भुवनेश्वरी ॥ १८ ॥
ददाति धनमायुष्यं पुण्यं पुण्यमतिं तथा ।
नैष्ठिकीं देवभक्तिं च गुरुभक्तिं विशेषतः ॥ १९ ॥
पूर्णिमायां चतुर्दश्यां कुजवारे विशेषतः ।
पठनीयमिदं स्तोत्रं देवसद्मनि यत्नतः ॥ २० ॥
यत्र कुत्रापि पाठेन स्तोत्रस्यास्य फलं भवेत् ।
सर्वस्थानेषु देवेश्याः पूतदेहः सदा पठेत् ॥ २१ ॥

इति नीलसरस्वतीतन्त्रे भुवनेश्वरीपटले श्रीदेवीश्वरसंवादे श्रीभुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीभुवनेश्वरीस्तोत्रम्

अथानन्दमयीं साक्षाच्छब्दब्रह्मस्वरूपिणीम् ।
ईडे सकलसम्पत्यै जगत्कारणमम्बिकाम् ॥ १ ॥

आद्यामशेषजननीमरविन्दयोनेर्विष्णोः शिवस्य च वपुःप्रतिपादयित्रीम् ।
सृष्टिस्थितिक्षयकरीं जगतां त्रयाणां स्तुत्वा गिरं विमलयाम्यहमम्बिके ! त्वाम् ॥ २ ॥

पृथ्व्या जलेन शिखिना मरुतां वरेण होत्रेन्दुना दिनकरेण च मूर्तिभाजः ।
देवस्य मन्मथरिपोरपिशक्तिमत्ताहेतुस्त्वमेव खलु पर्वतराजपुत्रि ! ॥ ३ ॥

त्रिस्रोतसः सकलदेवसमर्चिताया वैशिष्ट्यकारणमवैमि तदेव मातः !
त्वत्पादपङ्कजपरागपवित्रितासु शम्भोर्जटासु सततं परिवर्तनं यत् ॥ ४ ॥

आनन्दयेत् कुमुदिनीमधिपः कलानां नान्यामिनः कमलिनीमथ नेतरां वा ।
एकत्र मोदनविधौ परमे क ईष्टे त्वन्तु प्रपञ्चमभिनन्दयसि स्वदृष्ट्या ॥ ५ ॥

आद्याऽप्यशेषजगतां नवयौवनाऽसि शैलाधिराजतनयाऽप्यतिकोमलाऽसि ।
त्रय्याःप्रसूरपि तथा न समीक्षिताऽसि ध्येयाऽसि गौरि ! मनसो न पथि स्थिताऽसि ॥६॥

आसाद्य जन्म मनुजेषु चिराद्दुरापं तत्रापि पाटवमवाप्य निजेन्द्रियाणाम् ।
नाभ्यर्चयन्ति जगतां जनयित्रि ! ये त्वां निःश्रेणिकाग्रमधिरुह्य पुनः पतन्ति ॥ ७ ॥

कर्पूरचूर्णहिमवारिविलोडितेन ये चन्दनेन कुसुमैश्च सुगन्धिगन्धैः ।
आराधयन्ति हि भवानि ! समुत्सुकास्त्वां ते खल्वशेषभुवनाधिभुवः प्रथन्ते ॥ ८ ॥

आविश्य मध्यपदवीं प्रथमे सरोजे सुप्ताहिराजसदृशी विरचय्य विश्वम् ।
विद्युल्लतावलयविभ्रममुद्वहन्ती पद्मानि पञ्च विदलय्य समश्नुवाना ॥ ९ ॥

तन्निर्गतामृतरसैः परिषिक्तगात्रमार्गेण तेन निलयं पुनरप्यवाप्ता ।
येषां हृदि स्फुरसि जातु न ते भवेयुर्मातर्महेश्वरकुटुम्बिनि ! गर्भभाजः ॥ १० ॥

आलम्बिकुण्डलभरामभिरामवक्त्रामापीवरस्तनतटीं तनुवृत्तमध्याम् ।
चिन्ताक्षसूत्रकलशालिखिताढ्यहस्तामावर्तयामि मनसा तव गौरि ! मूर्तिम् ॥ ११ ॥

आस्थाय योगमवजित्य च वैरिषट्कमाबद्ध्य चेन्द्रियगणं मनसि प्रसन्ने ।
पाशाङ्कुशाभयवराढ्यकरां सुवक्त्रामालोकयन्ति भुवनेश्वरि ! योगिनस्त्वाम् ॥ १२ ॥

उत्तप्तहाटकनिभाकरिभिश्चतुर्भिरावर्तितामृतघटैरभिषच्यमाना ।
हस्तद्वयेन नलिने रुचिरे वहन्ती पद्माऽपि साऽभयवरा भवसि त्वमेव ॥ १३ ॥

अष्टाभिरुग्रविविधायुधवाहिनीभिर्दोर्वल्लरीभिरधिरुह्य मृगाधिराजम् ।
दूर्वादलद्युतिरमर्त्यविपक्षपक्षान् न्यक्कुर्वती त्वमसि देवि ! भवानि ! दुर्गा ॥ १४ ॥
आविर्निदाघजलशीकरशोभिवक्त्रां गुञ्जाफलेन परिकल्पितहारयष्टिम् ।
पीतांशुकामसितकान्तिमनङ्गतन्द्रामाद्यां पुलिन्दतरुणीमसकृत् स्मरामि ॥ १५ ॥
हंसैर्गतिक्वणितनूपुरदूरदृष्टे मूर्तैरिवार्थवचनैरनुगम्यमानौ ।
पद्माविवोर्ध्वमुखरूढसुजातनालौ श्रीकण्ठपत्नि ! शिरसा विदधे तवाङ्घ्री ॥ १६ ॥
द्वाभ्यां समीक्षितुमतृप्तिमतेव दृग्भ्यामुत्पाट्य भालनयनं वृषकेतनेन ।
सान्द्रानुरागतरलेन निरीक्ष्यमाणे जङ्घे शुभे अपि भवानि ! तवानतोऽस्मि ॥ १७ ॥
ऊरू स्मरामि जितहस्तिकरावलेपौ स्थौल्येन मार्दवतया परिभूतरम्भौ ।
श्रोणीभरस्य सहनौ परिकल्प्य दत्तौस्तम्भाविवाङ्ग वयसा तव मध्यमेन ॥ १८ ॥
श्रोण्यौस्तनौ च युगपत् प्रथयिष्यतोच्चैर्बाल्यात्परेण वयसा परिहृष्टसारौ ।
रोमावलीविलसितेन विभाव्य मूर्तिं मध्यं तव स्फुरतु मे हृदयस्य मध्ये ॥ १९ ॥
सख्यः स्मरस्य हरनेत्रहुताशशान्त्यै लावण्यवारिभरितं नवयौवनेन ।
आपाद्य दत्तमिव पल्लवमप्रविष्टं नाभिं कदापि तव देवि ! न विस्मरेयम् ॥ २० ॥
ईशेऽपि गेहपिशुनं भसितं दधाने काश्मीरकर्दममनुस्तनपङ्कजे ते ।
स्नातोत्थितस्य करिणः क्षणलक्ष्यफेनौ सिन्दूरितौ स्मरयतः समदस्य कुम्भौ ॥ २१ ॥
कण्ठातिरिक्तगलदुज्ज्वलकान्तिधाराशोभौ भुजौ निजरिपोर्मकरध्वजेन ।
कण्ठग्रहाय रचितौ किल दीर्घपाशौ मातर्मम स्मृतिपथं न विलङ्घयेताम् ॥ २२ ॥
नात्यायतं रचितकम्बुविलासचौर्यं भूषाभरेण विविधेन विराजमानम् ।
कण्ठं मनोहरगुणं गिरिराजकन्ये ! सञ्चिन्त्य तृप्तिमुपयामि कदापि नाहम् ॥ २३ ॥
अत्यायताक्षमभिजाततलाटपट्टम् मन्दस्मितेन दरफुल्लकपोलरेखम् ।
बिम्बाधरं वदनमुन्नतदीर्घनासं यस्ते स्मरत्यसकृदम्ब ! स एव जातः ॥ २४ ॥
आविस्तुषारकरलेखमनल्पगन्धपुष्पोपरिभ्रमदलिव्रजनिर्विशेषम् ।
यश्चेतसा कलयते तव केशपाशं तस्य स्वयं गलति देवि पुराणपाशः ॥ २५ ॥
श्रुतिसुचरितपाकं श्रीमतां स्तोत्रमेतत् पठति य इह मर्त्यो नित्यमार्द्रान्तरात्मा ।
स भवति पदमुच्चैः सम्पदां पादनम्रक्षितिपमुकुटलक्ष्मीलक्षणानां चिराय ॥ २६ ॥

इति श्रीरुद्रयामले तन्त्रे श्रीभुवनेश्वरीस्तोत्रं समाप्तम् ।

अथ श्रीपृथ्वीधराचार्यपद्धतौ

श्रीभुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिका

॥ श्रीः ॥ चित्प्रकाशं गुरुं वन्दे परमानन्दविग्रहम् ।
क्रियते स्वप्रकाशेन भुवनेशीक्रमं महत् ॥ १ ॥

अथ मन्त्री ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय स्वशिरसि श्रीगुरुचरणारविन्दं ध्यात्वा—

प्रशास्महे नमोवाकमाकाशानन्दमूर्तये ।
शिवाय करुणार्द्राय गुरुरूपमुपेयुषे ॥ २ ॥
स्वप्रकाशविमर्शाख्यबीजाङ्कुरलतां पराम् ।
शृङ्गारपीठनिलयां वन्दे श्रीभुवनेश्वरीम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते चोत्थाय ब्रह्मरन्ध्रे सिताम्बुजे ।
चिच्चन्द्रमण्डले शुद्धे स्फटिकाभं वराभये ॥ ४ ॥
दधानं रक्तया शक्त्या श्लिष्टं वामाङ्कसंस्थया ।
धारयन्त्योत्पलं दीर्घं नेत्रत्रयविभूषितम् ॥ ५ ॥
प्रसन्नवदनं शान्तं स्मरेत्तन्नामपूर्वकम् ।
रक्तशुक्लात्मकं तस्य संस्मृत्य चरणद्वयम् ॥ ६ ॥
गुरुञ्च गुरुपत्नीञ्च देवं देवीं विभावयेत् ।
पादुकामन्त्रमुच्चार्य यथास्वगुरुरुक्तितः ॥ ७ ॥
तत्तन्मुद्रान्वितैर्गन्धाद्युपचारैः प्रपूजयेत् ।

तद्यथा—लं पृथिव्यात्मने परमात्मने गन्धतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय गन्धं समर्पयामि कनिष्ठयोः । हं आकाशात्मने परमात्मने शब्दतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय पुष्पं समर्पयामि अङ्गुष्ठयोः । यं वायव्यात्मने परमात्मने स्पर्शतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय धूपं समर्पयामि तर्जन्योः । रं अग्न्यात्मने परमात्मने रूपतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय दीपं समर्पयामि मध्यमयोः । वं अबात्मने परमा-

त्मने रसतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय नैवेद्यं समर्पयामि अनामिकयोः। सं शक्त्यात्मने परमात्मने सर्वतन्मात्रप्रकृत्यात्मने श्रीगुरुनाथाय ताम्बूलं समर्पयामि करसम्पुटयोरित्युपचारैः श्रीगुरुनाथं सम्पूज्य प्रार्थयेत्--

प्रातः प्रभृति सायान्तं सायादि प्रातरन्ततः।
यत्करोमि जगन्नाथ! तदस्तु तव पूजनम्॥

इत्युक्तरीत्या स्वगुरुं तन्नामपूर्वकं प्रणम्य तद्यथा-ऐं ह्रीं श्रीं अमुकानन्दनाथसंविदं वा शक्तियुक्तश्रीपादुकां पूजयामि नम इति नमस्कृत्य-

हेरम्बं क्षेत्रपालञ्च वागीशं वटुकं तथा।
श्रीगुरुं नाथमानन्दं भैरवं भैरवीं पराम्॥

इति क्रमेण गुरुपादुकास्तोत्रं पठित्वा-

तस्यै दिशे सततमञ्जलिरेष पौष्पः
प्रक्षिप्यते मुखरितो भ्रमरैर्द्विरेफैः।
जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वोदयप्रलयनाटकनित्यसाक्षी॥

इति पञ्चमुद्राभिर्नमस्कृत्य मूलविद्यां ध्यायेत्। तद्यथा-

मूलादिब्रह्मरन्ध्रान्तं संस्मरेन्निजदेवताम्।
सूर्यकोटिप्रतीकाशां चन्द्रकोटिसुशीतलाम्॥
उद्यद्दिवाकरद्योतां यावच्छ्वासं दृढासनः।
ध्यात्वा तदैकरस्येन कञ्चित् कालं सुखीभवेत्॥

इत्युक्तरीत्या मूलविद्यां विभाव्य अजपासंकल्पं कुर्यात्। तद्यथा-अस्य श्रीअजपानामगायत्रीमन्त्रस्य हंस ऋषिः परमहंसो देवता अव्यक्तगायत्री छन्दः हं बीजम् सः शक्तिः सोऽहं कीलकम् प्रणवस्तत्वम् नादः स्थानम् उदात्तः स्वरः श्वेतो वर्णः मम समस्तपापक्षयार्थं स्वस्वरूपसंवित्प्राप्त्यर्थमद्याहोरात्रमध्ये श्वासोच्छ्वासरूपेण षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रमजपानाम गायत्रीजपमहं करिष्ये इति संकल्प्य हंसः सोऽहमिति मन्त्रेण प्राणायामं करशुद्धिं षडङ्गन्यासं कुर्यात्। ह्सां सूर्यात्मने हृदयाय नमः

अङ्गुष्ठयोः । ह्सीं सोमात्मने शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ह्सूं निरञ्जनात्मने शिखायै वषट् मध्यमयोः । ह्सैं निराभासात्मने कवचाय हुं अनामिकयोः । ह्सैं अतनुसूक्ष्म-प्रचोदयात्मने नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः । ह्सः अव्यक्तप्रबोधात्मने अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोरिति षडङ्गः । अथ ध्यानम् ।

.... हंसरूपं विभावयेत् ।
आत्मानमग्निसोमाख्यपक्षयुक्तं शिवात्मकम् ॥
सकारेण बहिर्यातं विशन्तञ्च हकारतः ।
हंसः सोऽहमिति स्मृत्वा सोऽहं व्यञ्जनहीनतः ॥
पक्षौ संहृत्य चात्मानमण्डरूपं विभावयेत् ।

तारमभ्यस्येति ॐ काररूपं परमात्मानं ध्यात्वा । ॐ आधारचक्रं पृथिवीस्थानं रक्तवर्णं चतुर्दलं चतुरक्षरं चतुःशक्तियुक्तम् वं शं षं सं तन्मध्ये गणेशं सिद्धिबुद्धिसहितं पूर्वेद्युः कृतमजपाजपं षट्शताधिकमेकविंशतिसहस्रं तन्मध्ये षट्शतम् हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं परब्रह्मस्वरूपाय महागजवदनाय समर्पयामि नमः । ततः स्वाधिष्ठानं चक्रं अग्निस्थानं पीतवर्णं षडक्षरं बं भं मं यं रं लं तत्कमलकर्णिकामध्ये षट्सहस्रं ६००० हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं परब्रह्मस्वरूपाय श्रीब्रह्मणे सावित्री-सहिताय अजपाजपं समर्पयामि नमः । ततो मणिपूरचक्रं नाभिस्थानं दशदलं श्यामवर्णं दशाक्षरं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं तन्मध्ये षट्सहस्रं ६००० हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतमजपाजपं श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय विष्णवे लक्ष्मीसहिताय अजपाजपं समर्पयामि नमः । अथ अनाहतचक्रं हृदयस्थानं द्वादशदलं शुभ्रवर्णं द्वादशाक्षरं कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं तन्मध्ये षट्सहस्रं ६००० हंसः सोऽहमितिसिद्धमन्त्रेण कृतं अजपाजपं श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय रुद्राय गौरीसहिताय अजपा-जपं समर्पयामि नमः । अथ विशुद्धचक्रं कण्ठस्थानं षोडशदलं स्फटिकवर्णं षोडशाक्षरं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं लॄं एं ऐं ओं औं अं अः तन्मध्ये सहस्रमेकं १०००हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं अजपाजपं श्रीपरब्रह्मस्वरूपाय जीवात्मने ईश्वरक्रियाशक्ति सहिताय अजपाजपं समर्पयामि नमः । अथ आज्ञाचक्रं भ्रूमध्यस्थानं द्विदलं विद्युद्वर्णं द्व्यक्षरं हं क्षं कमलकर्णिकामध्ये सहस्रमेकं हंसः सोऽहमिति सिद्धमन्त्रेण कृतं श्रीपर-ब्रह्मपरमशिवशक्तिसहिताय अजपाजपं समर्पयामि नम इति समर्प्य परेऽहन्येवं कुर्यात् ।

एवं प्राभातिकं कृत्वा स्वस्थाने गुरुमुद्वास्य महीं नत्वा बहिर्व्रजेत् । तद्यथा—

समुद्रमेखले देवि पर्वतस्तनमण्डले !
विष्णुपत्न्यै नमस्तुभ्यं पादस्पर्शं क्षमस्व मे ॥

इत्यनेन हस्तपुटाभ्यां नमस्कृत्य बहिर्गच्छेत् ।

वक्ष्ये प्रत्याह्निकं कर्म मन्त्राराधनचेतसाम् ।
अरुणोदयवेलायामुत्थाय प्रत्यहं प्रिये !
निजग्रामाद् बहिर्दूरं गन्तव्यं नियतेन्द्रियः ।
विलोक्य निर्मलं देशमुर्वरं तृणवर्जितम् ।
तृणैराच्छाद्य तं देशं मृदमाहृय नूतनाम् ॥
तीर्थात्तज्जलमाहृत्य बृहत्पात्रे च पूरयेत् ॥

तद्यथा—बृहत्पात्रं जलपूर्णं मृत्तिकाञ्च गृहीत्वा सिञ्चनपूर्वकं भूमौ संस्थाप्य मृदं त्रिधा विभज्याथ भागमेकं प्रगृह्य च एकं भागं मूत्रशौचार्थमेकं पुरीषशौचार्थमेकं हस्त-पादादि शौचार्थमिति त्रिधा विभज्य पात्रान् (णि) नैर्ऋत्यकोणे तृणास्तरित (स्तीर्ण - भूम्यां कर्णस्थब्रह्मसूत्रः सन् दक्षिणाभिमुखः मलोत्सर्जनं कुर्यात् । तत्र संकल्पः—

गच्छन्तु ऋषयो देवाः पिशाचा यक्षराक्षसाः ।
पितृभूतगणाः सर्वे करिष्ये मलमोचनम् ॥

इत्युक्त्वा तालत्रयं दत्वा मस्तकं वाससाऽपवृत्य मलविमोचनं कुर्यात् । प्रातःकाल उत्तराभिमुखो रात्रौ चेद्दक्षिणाभिमुखः तत उत्थाय शौचं कुर्यात् ।

अपसर्पन्तु भूतानि कुर्यात्तालत्रयं ततः ।
स्थूलामलकमानेन गृहीत्वा मृदमादरात् ॥
शौचं कार्यं प्रयत्नेन गन्धलेपक्षयावधि ॥

तत्र शौचनियमः—

एका लिङ्गे करे तिस्र उभयोर्मृद्द्वयं स्मृतम् ।
एकैकं पादयोर्दद्यान् मूत्रशौचं प्रकीर्तितम् ॥

इति मूत्रशौचः ।

पञ्चापाने दश करे उभयोः सप्त मृत्तिकाः ।
त्रिवारं पादयोर्दद्याद् गुदशौचं प्रकीर्तितम् ॥

इति पुरीषशौचः । ततो गण्डूषान् त्यजेत् । तत्र नियमः-

चतुरष्टत्रिषड्भिश्च गण्डूषैः शुद्धयति क्रमात् ।
मूत्रे पुरीषे भुक्त्यन्ते रेतःप्रस्रवणेऽपि च ॥

अस्यायमर्थः-

मूत्रे चतुरः, पुरीषेऽष्ट, भोजने त्रिः (त्रीन्ः) रेतः-प्रस्रवणे षट् ६ गण्डूषान् त्यजेत् । इत्थं शौचविधिं विधाय । अथ दन्तधावनक्रमः-

चूतचम्पकजम्बूकापामार्गादि वा प्रिये !
बदरं जातिवृक्षस्य दन्तकाष्ठं समाहरेत् ॥

तत्र प्रार्थना-

आयुर्बलं यशो वर्चः प्रजापशुवसूनि च ।
श्रियं प्रज्ञाञ्च मेधाञ्च त्वन्नो देहि वनस्पते !

इति वनस्पतिं प्रार्थ्य अष्टादशाङ्गुलं द्वादशाङ्गुलं नवाङ्गुलं षडङ्गुलं वा दन्तकाष्ठं गृहीत्वा "ॐ नमो भगवते मणिभद्राय यक्षसेनाधिपतये किलि किलि स्वाहा' इत्यनेन मन्त्रेण षोडशवारमभिमन्त्र्य "क्लीं कामदेवाय नमः" इत्यनेन मन्त्रेण दन्तान् जिह्वया सह संशोध्य मूलेन मुखं त्रिःप्रक्षालयेत् । ततः स्नानसामग्रीं गृहीत्वा प्रातःस्मरणादिकं पठन्नद्यादि जलाशयं गच्छेत् स्नायाच्च । तद्यथा हस्तौ पादौ प्रक्षाल्याचम्य तिथ्यादिकं सङ्कीर्त्य मम समस्तपापक्षयार्थं देवताप्रसादसिद्ध्यर्थं स्नानमहं करिष्य इति संकल्प्य । तत्रादौ मृत्तिकास्नानम्-मूलमन्त्रेण पादावारभ्य जानुपर्यन्तं जान्वादि नाभिपर्यन्तं नाभ्यादि वक्षोऽन्तं वक्षआदि कण्ठान्तं कण्ठादारभ्य मूर्धान्त मित्थं मृत्तिकास्नानं विधाय ततो वैदिकस्नानमघमर्षणान्तं कृत्वा तान्त्रिकस्नानं कुर्यात् । तद्यथा-ॐ ह्रीं आत्मतत्वं शोधयामि स्वाहा ॐ ह्रीं विद्यातत्वं शोधयामि स्वाहा ॐ ह्रीं शिवतत्वं शोधयामि स्वाहा । द्विःप्रमृज्य नासिकायां नयनयोः शिरसि दक्षिणकर्णे सकृत् स्पृष्ट्वा एवमाचम्य ।

स्नानप्रकारो द्विविधो बाह्याभ्यन्तरभेदतः ।

तत्रादौ अन्तःस्नानम्-

आन्तरं स्नानमत्यन्तं रहस्यमपि पार्वति ।
कथयामि भवध्वंस्यै (ध्वस्त्यै) पञ्चवर्गाप्तयेऽपि च ॥

सरित्त्रयमनुस्मृत्य चरणत्रयमध्यतः ।
स्रवन्तं सच्चिदानन्दं प्रवाहं भावगोचरम् ॥
विमुक्तिसाधनं पुंसां स्मरणादेव योगिनाम् ।
तेनाप्लावितमात्मानं भावयेद् भावशान्तये ॥
इडा गङ्गेति विख्याता पिङ्गला यमुना नदी ।
मध्ये सरस्वती ज्ञेया तत्प्रयागमिति स्मृतम् ॥

इति भावनाक्रमेणाऽन्तरं स्नानं निर्वर्त्य बहिर्मन्त्रस्नानं कुर्यात् । तद्यथा—पूर्वाशाभिमुखो भूत्वा भूमिं गुरुञ्चाभ्यां मन्त्राभ्याम् प्रार्थयेत्—

धारणं पोषणं त्वत्तो भूतानां देवि ! सर्वदा ।
तेन सत्येन मां पाहि पाशान् मोचय धारिणि !
अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

एताभ्यां नमस्कृत्य नाभिमात्रे जले स्थित्वा जलमध्ये कनिष्ठया त्रिकोणं षट्कोणं अष्टदलं षोडशदलं चतुरश्रं लिखित्वा त्रिकोणमध्ये मूलबीजं विलिख्य । तीर्थंसूर्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया "ऐं हृदयाय नमः" इति मन्त्रेणाकृष्य तीर्थे क्षिप्त्वा तत्र तीर्थमावाहयेत् । मन्त्रः—

ब्रह्माण्डोदरतीर्थानि करैः स्पृष्टानि ते रवे !
तेन सत्येन मे देव ! तीर्थं देहि दिवाकर !
गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !
नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥
इमं मे गङ्गे यमुने.......... ...इति ।

आवाहयामि तां देवीं स्नानार्थमिह सुन्दरि ।
एहि गङ्गे ! नमस्तुभ्यं सर्वतीर्थसमन्विते ॥

"ऐं ह्रीं श्रीं सर्वानन्दमये तीर्थशक्ते एहि एहि स्वाहा" इति मन्त्रेणाङ्कुशमुद्रया संयोज्यावाहनादिमुद्राः प्रदर्श्य आवाहनी १ स्थापनी २ सन्निरोधिनी ३ अवगुण्ठनी ४ सम्मुखीकरणी ५ धेनुः ६ योनिः ७ एताः सप्त मुद्राः प्रदर्श्य षडङ्गं कुर्यात् ।

तद्यथा–ॐ ह्रां हृदयाय अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। ह्रीं शिरसे स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः। ह्रूं शिखायै वषट् मध्यमाभ्यां नमः। ह्रैं कवचाय हुं अनामिकाभ्यां नमः। ह्रौं नेत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः। ह्रः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नम इत्थं षडङ्गं विधाय पाणिभ्यामाच्छाद्य मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य। अमृतेश्वरीं सप्तशो जपित्वा ध्यात्वाऽचम्य स्नायात्। तद्यथा–ॐ ह्रीं क्लीं आं अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय स्रावय सां जूं जूं सः अमृतेश्वर्यै स्वाहा।

प्रसृतामृतरश्म्यौघसन्तर्पितचराचरम्।
भवानि! भवशान्त्यै त्वां भावयाम्यमृतेश्वरीम्॥
अन्तःशक्तिमभिध्यायन्नाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रगाम्।
तस्याः पीयूषवर्षेण स्नानमन्तः समाचरेत्॥

इत्युक्तरीत्या ध्यात्वा निमज्योन्मज्य मूलेन सप्तवारं मार्जनं कृत्वा ततः अघमर्षणं कुर्यात्। तद्यथा–दक्षिणपाणितले जलं गृहीत्वा मूलेन सप्तवारमभिमन्त्रितं चिद्रूपं स्मृत्वा वामपाणिना संघट्टमुद्रया मूलविद्यया त्रिवारं मूर्ध्नि अभिषिच्यावशिष्टमुदकमिडया संगृह्य अन्तर्नाडीं प्रक्षाल्य कलुषं कज्जलाभं पिङ्गलया विरेच्य वामे वज्रशिलां ध्यात्वा हुं फट् इति मन्त्रेण वामभागस्थवज्रशिलायामास्फालयेत्। ततो योनिमुद्रया शिरसि मूलेन त्रिवारमभिषिच्य हृदि बाहोस्त्रिरभिषिञ्चयेत्। ततो जलतर्पणम्। तान् देवांस्तर्पयामीति जलतर्पणं कृत्वा। ॐ ऐं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वर्यम्बाश्रीपादुकां तर्पयामीति त्रिः सन्तर्प्य बहिर्निर्गच्छेत्। मूलेन धौते अनाहतवाससी संप्रोक्षिते परिधायाचम्य विभूतिधारणं कुर्यात्। तद्यथा–

प्रक्षाल्य पाणिचरणावाचमेन्मूलविद्यया।
उपवीतोत्तरीयाणि नवानि विमलानि च॥
भस्मस्नानं पुरा कृत्वा त्रिपुण्ड्रं धारयेत्ततः।
ततः सम्यक् कुशासीनो कुर्यादुद्धूलनं क्रमात्॥
आपादमस्तकं देवि! सितार्द्रनवभस्मना।
सर्वाङ्गोद्धूलनं कुर्यात् प्रणवेन शिवेन वा॥
ततस्त्रिपुण्ड्रं रचयेत् त्रियायुषसमाह्वयम्॥

तद्यथा–विभूतिं वामहस्ते निधाय दक्षिणेन पाणिना पिधाय जातवेदसे[1]

---

१. ॐ जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः।
स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः॥ ऋग्वेदः १।७।७।१।

"गायत्र्या[1]" "त्र्यम्बकं[2]" "अग्निरस्मि[3]" "मा न स्तोके[4]" "त्र्यायुषम् जमदग्ने[5]" रिति षट् अग्निरिति भस्म वायुरिति भस्म जलमिति भस्म स्थलमिति भस्म व्योमेति सर्वं ह वा इदं भस्म। मन एतानि चक्षूंषि भस्मानि भवन्ति। ततो मूलविद्यया सप्तवारमभिमन्त्र्य। ईशान इति[6] शिरसि भस्म निधाय "तत्पुरुषाये[7]" ति वक्त्रे "अघोरेभ्य[8]" इति हृदये "वामदेवाये[9]" ति गुह्ये "सद्यो जात[10]" मिति पादयोः। पुनः मूलविद्यया शिरसि भस्म निधाय मूलेन मुखे मूलेन वक्षसि मूलेन ऊर्वोः मूलेन जङ्घयोः मूलेन पादयोः मूलेन सर्वसन्धिप्रदेशेषु स्नायात्। अङ्गुष्ठेन सम्मर्द्य कनिष्ठिकया त्रिकोणं विलिख्य तन्मध्ये भुवनेश्वरीबीजं लिखित्वा मूलमन्त्रेण सप्तवारमभिमन्त्र्य अङ्गुष्ठेन शिरः प्रदक्षिणीकृत्य ॐ दीप्तचण्डाय नमः ललाटमध्ये रेखां कृत्वा मध्यमया अनामिकया

....तर्जन्या तु त्रिपुण्ड्रकम्।
ललाटे भगवान् ब्रह्मा हृदये हव्यवाहनः॥
नाभौ स्कन्धे गले पूषा बाह्वोर्वामे च दक्षिणे।
रुद्रादित्यौ तथा मध्ये मणिबन्धे प्रभञ्जनः॥

---

१. ॐ भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्।

२. ॐ त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्व्वारुकमिव बन्धनान् मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥ ३। ६०।

३. ॐ अग्निरस्मि जन्मना जातवेदा घृतम्मे चक्षुरमृतम्म ऽआसन्। अर्कस्त्रिधातू रजसो विमानोऽजस्रो धर्मो हविरस्मि नाम। १८। ६६।

४. ॐ मा नस्तोके तनये मा न आयुषि मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः। मा नो वीरान् रुद्र भामिनो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे। १६। १६।

५. ॐ त्र्यायुषं जमदग्नेः कश्यपस्य त्र्यायुषम्। यद् देवेषु त्र्यायुषम्। तन्नो अस्तु त्र्यायुषम्।

६. ॐ ईशानः सर्वविद्यानामीश्वरः सर्वभूतानाम्। ब्रह्माधिपतिर्ब्रह्मणोऽधिपतिर्ब्रह्मा शिवो मे अस्तु सदा शिवोम्॥ ३८। ८।

७. ॐ तत्पुरुषाय विद्महे। महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ ३८। ७।

८. ॐ अघोरेभ्योऽथ घोरेभ्यो घोरघोरतरेभ्यः।
सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः॥ ३८। ६।

९. ॐ वामदेवाय नमो ज्येष्ठाय नमः श्रेष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कलविकरणाय नमो बलविकरणाय नमः॥ ३८। ४।

१०. ॐ सद्योजातं प्रपद्यामि सद्योजाताय वै नमो नमः।
भवे भवे नाति भवे भवस्वमां भवोद्भवाय नमः॥ ३८। ३।

वामभूले वामदेवो मध्ये चैव शशिप्रभः ।
वसवो मणिबन्धे च पृष्ठे चैव हरिः स्मृतः ॥
शिरस्यात्मा महादेवो परमात्मा सदाशिवः ।
सर्वेष्वङ्गेषु दिक्पालाः शक्तिमातृगणादयः ॥
सर्वे देवाश्च रक्षन्तु विभूतेरभिधारणे ॥

अथ त्रिपुण्ड्रलक्षणम्—

वर्तुलेन भवेद् व्याधिर्दीर्घेणैव तपःक्षयः ।
नेत्रयुग्मप्रमाणेन त्रिपुण्ड्रं धारयेद् बुधः ॥
इति ज्ञात्वा विधानेन भस्मस्नानं समाचरेत् ।
सर्वाङ्गेष्वथवा कुर्यात् केवलं मूलविद्यया ॥

इति विभूतिस्नानधारणविधिः ।

अथ सन्ध्याविधिरुच्यते । आदौ स्वशाखोक्तवैदिकसन्ध्यां निर्वर्त्य मन्त्रसन्ध्यामारभेत् । तद्यथा—ॐ ह्रीं आत्मतत्वं शोधयामि नमः स्वाहा । ॐ ह्रीं विद्यातत्वं शोधयामि नमः स्वाहा । ॐ ह्रीं शिवतत्वं शोधयामि नमः स्वाहा । एवमाचम्य ।

त्रिरुन्मृज्य सकृत् स्पृष्ट्वा नासिके नयने शिरः ।
हृदयं दक्षिणं कर्णं संस्पृशेदयमाचमः ॥

मूलेन प्राणायामं कुर्यात् । ततः षडङ्गमङ्गपञ्चकन्यासं कुर्यात् । ॐ ह्रां हृदयाय नम अङ्गुष्ठाभ्यां नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः, ॐ ह्रू शिखायै वषट् मध्यमाभ्यां नमः, ॐ ह्रैं कवचाय हुं अनामिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः, ॐ ह्रः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नम इति षडङ्गः । अथाङ्गपञ्चकन्यासः । ॐ ह्रीं हृल्लेखायै नमो मूर्ध्नि, ॐ ह्रुं गगनायै नमो मुखे, ॐ ह्रैं रक्तायै नमो हृदये, ॐ ह्रौं करालिकायै नमो गुह्ये, ॐ ह्रः महोच्छुष्मायै नमः पादयोरिति विन्यस्य । ॐ ह्रीं शिवाय नमः दक्षकरे ॐ ह्रां शक्तये नमो वामकरे । ततो जले त्रिकोणं षट्कोणं यन्त्रं विधाय तीर्थं सूर्यमण्डलादङ्कुशमुद्रया "ऐं हृदयाय नम" इत्याकृष्य तीर्थे क्षिप्त्वा पूर्वोक्ता वाहनादिसप्तमुद्राः प्रदर्श्य तीर्थान्यावाह्य—

गङ्गे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति !
नर्मदे सिन्धु कावेरि ! जलेऽस्मिन् सन्निधिं कुरु ॥

ततो दक्षकरतले जलं गृहीत्वा वामपाणिनाच्छाद्य मूलेन सप्तवारमभिमन्त्र्य तज्जलं वामहस्ते गृहीत्वा अङ्गुलिसन्धिगलितोदकेन यादिभिर्दशभिर्वर्णैः यं रं लं वं शं षं सं हं लं क्षं मूलविद्यासहितैरात्मनः शिरसि मार्जयित्वा तज्जलं सन्त्यज्य अन्यजलं पूर्ववद् गृहीत्वा कादिमान्तैः स्पर्शवर्णैः (कं खं गं घं ङं चं छं जं झं ञं टं ठं डं ढं णं तं थं दं धं नं पं फं बं भं मं) मूलविद्यासहितैर्जलं पीत्वा अन्यजलं पूर्ववद् गृहीत्वा षोडशस्वरैः सबिन्दुभिः (अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः) मूलविद्यासहितैरात्मनः शिरसि पुनर्मार्जयित्वा तज्जलं दक्षकरे संरुद्ध्य मूलेन दक्षनासिकायामिडया नाड्या चन्द्रमण्डलवाहिन्या जलं पूरकप्रयोगेण नीत्वाऽन्तर्नाडीं प्रक्षाल्य तेन नाभिप्रविष्टेन तमःकल्लोलं कज्जलाभं दक्षनासिकया सूर्यमण्डलवाहिन्या पिङ्गलया पापपुरुषं रेचकप्रयोगेण विरेच्य अस्त्रमन्त्रेण "श्लीं पशु हुं फट्" इत्यस्त्रेण चक्रीकृतकरेण वामभागे भूमौ वाऽऽस्फालयेत् । तत उत्थायाऽर्घ्यत्रयं दद्यात् । तद्यथा—

"ऐं कामेश्वरीं विद्महे ह्रीं भुवनेश्वरीं धीमहि तन्नः शक्तिः प्रचोदयात्" । उद्यदादित्यवर्तिन्यै श्रीभुवनेश्वर्यै इदमर्घ्यं समर्पयामि नम इत्यर्घ्यत्रयं दत्वा यथाशक्तिवारं गायत्रीं तर्पयेत् । पुनः पूर्ववदाचम्य मूलेन प्राणायामत्रयं पूर्ववन्न्यासं विधाय गायत्रीं ध्यायेत् ।

ततो जपन् महेशानीमाधारे कुङ्कुमप्रभाम् ।
मध्याह्ने हृद्याम्भोजे चिन्तयेच्चन्द्रसन्निभाम् ॥
ध्यायेच्च शिरसो मध्ये तमालश्यामलश्रियम् ॥

इति ध्यात्वा पूर्वोक्तगायत्रीमष्टोत्तरशतवारं जपित्वा पुनः षडङ्गन्यासध्यानं विधाय गुह्यातिगुह्यमिति जपं षडध्वव्यापिन्यै देवतायै समर्पयेत् । एवमुक्तकालत्रयेऽपि मार्जनाद्यर्घ्यान्तं कुर्यात् । ततः प्रातःसन्ध्यानन्तरं सौरपूजां कुर्यात् । तद्यथा—भूमौ गोमयेन चतुरश्रं मण्डलं कृत्वा तत्र रक्तचन्दनेनाष्टदलं विरच्य मध्ये दिवसेश्वरं मायाबीजसहितं विन्यस्य दलेषु सोमादीन् विन्यस्य पूजयेत् । तद्यथा—ह्रीं सूर्याय नमो मध्ये, दलेषु ह्रीं सोमाय नमः ह्रीं भौमाय नमः ह्रीं बुधाय नमः ह्रीं गुरवे नमः ह्रीं भार्गवाय नमः ह्रीं मन्दाय नमः ह्रीं राहवे नमः ह्रीं केतवे नम इति सम्पूज्याऽर्घ्यपात्रे चन्दनाक्षतकुसुमानि निक्षिप्य षड्दीर्घमायाबीजेन षडङ्गं कृत्वा दिवसेश्वरं ध्यायेत् ।

रत्नाङ्कं स्वर्णकोटिं च कटकादिविभूषितम् ।
स्वर्णं लम्बोदरं शोणं चारुपद्मकरद्वयम् ॥

इति ध्यात्वा सूर्यमन्त्रेणार्घ्यत्रयं दद्यात् । तत्र सूर्यमन्त्रः–'ॐ ह्रीं हंसः सूर्याय नम, इत्यर्घ्यत्रयं दत्वा ललाटमध्यगमादित्यं विन्दुरूपेण भावयेत् । इत्थं सौरपूजां विधाय तर्पणं कुर्यात् । तद्यथा–

जलान्तिके समुपविश्य पादौ पाणिं प्रक्षाल्याचम्य जलमध्ये यन्त्रं विभाव्य पूर्ववदङ्कुशमुद्रया तीर्थं सूर्यमण्डलादाकृष्यावाहनादिमुद्राः प्रदर्श्य मूलेन षडङ्गं विधाय तर्पयेत् । ॐ ह्रीं शिवस्तृप्यतु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिण्यो देवतास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं गुरवः पूर्वाचार्यास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं शक्तयस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं परममरीचयस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं षडध्वव्यापिदेवतास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं विघ्नेश्वरास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं मन्त्रेश्वरास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं सप्तस्रोता देवस्तृप्यतु, ॐ ह्रीं ब्रह्मविष्णुरुद्रास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं लोकपालास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं ग्रहास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं सिद्धास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं स्वर्गाधिकारिणस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिणश्चौषधयस्तृप्यन्तु इति देवतीर्थेन[1] । ॐ ह्रीं श्वसुरमहाश्वसुरवृद्धश्वसुरास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं चतुष्पीठाधिकारिणः सिद्धास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिण्यो देवतास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं गुरवः पूर्वाचार्यास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पीठाधिकारिण्यस्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं ओषधयस्तृप्यन्तु इति मनुष्यतीर्थेन[2] । ॐ ह्रीं पितृपितामहप्रपितामहास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं पितृवंशजास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं मातृवंशजास्तृप्यन्तु, ॐ ह्रीं श्वसुरवंशजास्तृप्यन्तु इति पितृतीर्थेन[3] । एकोच्चारणेन वा कार्यानुसारतः कुर्यात् । सर्वजनविहिते मार्गे न दोषः । ॐ ह्रीं शिवशक्तिपुरस्सरा मरीचयः षडध्ववासिन्यो देवता विद्या विद्येश्वरा मन्त्रा मन्त्रेश्वरा ब्रह्मादयो लोकपालमातर उग्रसिद्धा ओषधयस्तृप्यन्तु इति देवतीर्थेन । ॐ ह्रीं पीठाधिकाराः सिद्धा भूचर्य्यो गुरवः पूर्वाचार्यास्तृप्यन्तु इति मनुष्यतीर्थेन । ॐ ह्रीं पितृपितामहप्रपितामहमातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहश्वसुरवृद्धश्वसुरपितृवंशजमातृवंशजाः

---

१. "प्रागग्रेषु सुरांस्तृप्येन्मनुष्यांश्चैव मध्यतः ।
पितॄंश्च दक्षिणाग्रेषु दद्यादिति जलाञ्जलीन्" ॥ अग्निपुराणे ।
ऋषितर्पणन्तु–अङ्गुल्यग्रेण । "अङ्गुल्यग्रमार्षम्" इति यमोक्तेः ।

२. "तर्जन्यङ्गुष्ठमध्यस्थाने" इत्यमरः ।

३. पितृतीर्थः—"अन्तराङ्गुष्ठदेशिन्योः पितॄणां तीर्थमुत्तमम्" । कूर्मपुराणे ।

श्वसुरवंशजास्तृप्यन्तु इति पितृतीर्थेन। ततः पित्रादि स्वपितृक्रमं तर्पयेत्। ततो मूलबीजेन चतुस्तत्वाङ्कितैः शोधयाम्यन्तैः[1] सलिलं पिबेत्।

चतुर्विशेषाचमोऽयं देहतत्वविशोधकः।
(तत्) कृत्वा कुर्यान् महेशानि ! तर्पणं मूलविद्यया॥
पीठान्यादौ प्रतर्प्याथ देवीमावाह्य तर्पयेत्।
त्रिधा सन्तर्प्य देव्याश्च ततस्त्वावरणं यजेत्॥
वाङ्मया कमला पूर्वं सर्वमन्त्राः प्रकीर्तिताः॥
त्रितारमूलमन्त्रान्ते भुवनेश्वरी (भुवनेशी) पदं ततः।
नमः श्रीपादुकान्ते तु तर्पयामीति चोच्चरेत्।
अनेन क्रमयोगेन तर्पयेदावरणं क्रमात्॥

तद्यथा–ऐं ह्रीं श्रीं ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यम्बा [यै] नमः, श्रीपादुकां तर्पयामि इति त्रिःसन्तर्प्य ततः पीठदेवतानामावरणदेवतानां त्रितार नमः श्रीपादुकां तर्पयामीत्येकैकमञ्जलिं तर्पयेत्। तत्र पीठावरणदेवताश्चाग्रे वक्ष्यामः।

तर्पणान्ते साधकेन्द्रो दत्वा पञ्चोपचारकान्।
ततः समाहितो भूत्वा जपेत्तर्पणसंख्यया॥
निष्कलीकृत्य हृदये देवीमुद्वास्य सत्कृताम्।
सङ्कलीकृत्य संहृत्य तीर्थमार्तण्डमण्डले॥
स्तोत्रपाठं प्रकुर्वाणो ततो यागालयं व्रजेत्।
न बाह्यभाषमाणस्तु न स्पृशेन्नावलोकयेत्॥

इति पृथ्वीधराचार्यपद्धतौ शारदातिलकं नानातन्त्रमतमालंब्य श्रीदायीदेवसम्प्रदायिना मातृपुरस्थितेन अनन्तदेवेन विरचितायाम् भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिकायाम्प्रातरादि तर्पणान्तं विवरणं (नाम) प्रथमः कल्पः।

॥ श्रीः ॥ आचम्य प्राणानायम्य देशकालौ सङ्कीर्त्य मम सकलदोषपरिहारार्थं भुवनेश्वरीप्रसादसिद्ध्यर्थं भूतशुद्ध्यादि न्यासान् करिष्ये इति संकल्प्य। तत्रादौ आसननियमः–

विनासनेन मन्त्रज्ञः कृतं कर्म न सिद्ध्यति।
कृष्णाजिने ज्ञानसिद्धिस्तपःसिद्धिः कुशासने॥

---

१. शोधयामीत्यन्त्यपदैर्मन्त्रैः।

भूम्यासने यशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः ।
तृणासने न सिद्धिः स्याद् वैतसं कीर्तिदायकम् ॥
श्वेताविकं विना शान्तिः पाषाणे व्याधिरेव च ।
व्याघ्रचर्मणि मोक्षः स्याद्दौर्भाग्यं दारुकासने ॥
वैणवे बलहानिः स्यात् सर्वार्थश्चित्रकम्बले ।
अभिचारादिके कृष्णः चक्षुर्हानिश्च निद्रया ॥
महती देवहानिश्च जृम्भाभिः सर्वदा भवेत् ।
मनसा चञ्चलेनाशु न सिद्ध्यति कदाचन ॥

इत्यासनानि । अथ शुभे शुचौ देशे विधिप्रोक्तमृद्वासने ऐं बीजकर्णिकं स्वर-युग्मकिञ्जल्कं क च ट त प य श ल वर्गाष्टकदलं दिक्षु वं बीजान्वितं विदिक्षु ठं बीजमण्डितं मातृकाम्बुजं ध्यात्वा ऐं ह्रीं श्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम इति पुष्पाक्षतादिभिरभ्यर्च्य प्राङ्मुख उदङ्मुखो वा उपविश्य भूमिं प्रार्थयेत् ।

पृथिव्या मेरुपृष्ठ ऋषिः, कूर्मो देवता, सुतलं छन्दः, भूमिप्रार्थने विनियोगः ।

पृथ्वि ! त्वया धृता लोका देवि ! त्वं विष्णुना धृता ।
त्वं च धारय मां देवि ! पवित्रं कुरु चासनम् ॥

इति स्वशिरसि मृगीमुद्रया मातृकाब्जं ध्यात्वा दीपनाथं प्रपूजयेत् ।

तद्यथा—

क्षेत्राद्यक्षरमुच्चार्य अमुकक्षेत्रे मेदात्मकखड्गीशाय वर्णेशानन्दनाथाय अतिरक्तवर्णाय रक्तद्वादशशक्तियुक्ताय अस्मिन् क्षेत्रे इमां पूजां गृह्ण गृह्ण स्वाहा इति पुष्पाक्षतादिभिर्दीप-नाथमभ्यर्च्य—

तीक्ष्णदंष्ट्र ! महाकाय-कल्पान्तज्वलनोपम ।
भैरवाय नमस्तुभ्यमनुज्ञां दातुमर्हसि ॥

इति भैरवाज्ञां लब्ध्वा हस्ताभ्यामञ्जलिं विधाय सपुष्पं ऐं ह्रीं श्रीं शिवादिगुरुभ्यो नमः शिरसि ३, गं गणपतये नमो दक्षस्कन्धे ३, वं वटुकाय नमो वामस्कन्धे ३, दुं दुर्गायै नमः दक्षोरुमूले ३, क्षं क्षेत्रपालाय नमो वामोरुमूले ३, इति दक्षवाम-पार्श्वोर्ध्वाधोभागेषु विन्यसेत् ।

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥
चरणं पवित्रं विततं पुराणं येन पूतस्तरति दुष्कृतानि ।
तेन पवित्रेण शुद्धेन पूता अतिपाप्मानमरातिं तरेम ॥

इत्यादि वैदिकैर्मन्त्रैर्गुरुपादुकामुच्चार्य ऐं ह्रीं श्रीं अमुकानन्दनाथ-अमुकाम्बा-शक्तियुक्त-श्रीपादुकां पूजयामि नम इति सहस्रारविन्दे श्रीगुरुनाथं सम्पूज्य योनिमुद्रया प्रणमेत् । ततो भूतोत्सारणं कुर्यात्—

अपसर्पन्तु ते भूता ये भूता भूमिसंस्थिताः ।
ये भूता विघ्नकर्तारस्ते नश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

'ॐ श्लीं पशु हुं फट्' इति पाशुपतास्त्रेण नाराचमुद्रया विघ्नानुत्सार्य सिद्धार्थाक्षतकुसुमैः पातालभूनभोलीनान् विघ्नान् क्रमेण वामपार्ष्णिघातकरास्फोटसमुदञ्चितवक्त्रैरुत्सार्य उक्तपाशुपतास्त्रेण वामहस्ततलं द्विधा मणिबन्धात् समारभ्य सपृष्ठं दक्षपाणिना प्रमृज्य दक्षिणं पाणिं सकृदेवोक्तमार्गतः अनेन षट् करशोधनं कृत्वा नाभेरापादं हृदो नाभिपर्यन्तं शिरसो हृत्पर्यन्तं तेनैवास्त्रेण व्यापयित्वा अन्तस्तालत्रयं बहिस्तालत्रयं कृत्वा दशदिग्बन्धनं कृत्वा 'रं अग्निप्राकाराय नमः' 'ॐ सहस्रार हुं फट् स्वाहा' पूर्वोक्तास्त्रमन्त्राभ्यां प्राकारौ कृत्वा त्रिरग्निवेष्टनं कृत्वा "एवं रक्षां पुरा कृत्वा भूतशुद्धिमथाचरेत्" । तद्यथा—

प्रणवद्वादशावृत्या नाडीशुद्धिं विधाय "हृदिस्थं चैतन्यं हंसः" इति मन्त्रेण संघट्टमुद्रयोर्ध्वमुन्नीय द्वादशान्तःस्थिते परे तेजसि संयोज्य अस्त्रेण रक्षां कृत्वा भूतानि शोधयेत् । अस्य पार्थिवमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दः सोमो देवता पार्थिवाख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । पादादिजानुपर्यन्तं पृथ्वीस्थानम् तत्र पार्थिवमण्डलं पीतवर्णं चतुष्कोणं वज्रलाञ्छितम् ब्रह्मदैवत्यं तेन पञ्चगुणा पृथ्वी षड्उद्घातप्रयोगेण ॐ लं ६० बीजेन संशोध्य अप्सु लयं नयेत् ।

वारुणमन्त्रस्य गौतमऋषिर्वरुणो देवता त्रिष्टुप् छन्दो वरुणाख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । जान्वादिनाभिपर्यन्तं आपस्थानं वरुणमण्डलं धवलं धनुराकारं उभयोः कोट्योः श्वेतपद्मलाञ्छितं तन्मध्ये वं बीजं श्वेतवर्णं विष्णुदैवत्यं तेन चतुर्गुणा आपः पञ्चोद्घातप्रयोगेण शोषयामि । ॐ वं ४८ इति बीजेन तेजसि लयं नयेत् ।

आग्नेयमंत्रस्य कश्यप ऋषिः । अग्निर्देवता त्रिष्टुप् छन्द आग्नेयाख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । नाभ्यादिहृदयपर्यन्तं अग्निस्थानं तत्र वह्निमण्डलं त्रिकोणाकारं कोणत्रये स्वस्तिकाङ्कितं तन्मध्ये रं बीजं रक्तवर्णं रुद्रदैवत्यं तेन त्रिगुणो वह्निस्त्रिरुद्घातप्रयोगेण शोषयामि । ॐ रं ३६ इति वायौ लयं नयेत् ।

वायव्यमन्त्रस्य किष्कन्ध ऋषिर्वायुर्देवता त्रिष्टुप् छन्दो वायव्याख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । हृदयादिभ्रूमध्यपर्यन्तं वायुस्थानम् तत्र वायुमण्डलं षट्कोणाकारं षड्बिन्दुलाञ्छितम् तन्मध्ये यं बीजं नीलवर्णं सङ्कर्षणदैवत्यं त्रिगुणो वायुर्द्विरुद्घातप्रयोगेण शोषयामि ॐ यं २४ इति आकाशे लयं नयेत् ।

आकाशमन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः महदाकाशो देवता त्रिष्टुप् छन्द आकाशाख्यभूतशुद्ध्यर्थे जपे विनियोगः । भ्रूमध्याद् ब्रह्मरन्ध्रपर्यन्तमाकाशस्थानम् तत्र नभोमण्डलं वर्तुलाकारं ध्वजलाञ्छितं तन्मध्ये हं बीजम् धूम्रवर्णम् सदाशिवदैवत्यम् तेनैकगुण आकाश एकोद्घातप्रयोगेण शोषयामि ॐ हं १२ इति बीजेन परे शिवे लयं नयेत् ।

षष्टिसंख्या समारभ्य द्वादश द्वादश त्यजेत् ।
पृथिव्यादीनि भूतानि क्रमेण स्वस्वकारणे ॥

एवं पञ्चमहाभूतानि परे तत्वे एकीभूतानि विचिन्त्य पुनर्भूतानि प्रविलापयेत् । ॐ ल्हाँ ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा पादादिजानुपर्यन्तं व्याप्य पृथ्वीं शोधयेत् । ॐ ह्रीं विष्णवे अब्धिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा इति जान्वादिनाभिपर्यन्तं व्याप्य अपः शोधयेत् । ॐ ह्रुं अग्नये तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा इति नाभ्यादिवक्षःपर्यन्तं व्याप्य अग्निं शोधयेत् । ॐ ह्रैं ईश्वराय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा । हृदयादि भ्रूयुगान्तं व्याप्य वायुं शोधयेत् । ॐ ह्रौं सदाशिवाय व्योमाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा । भ्रुवादिब्रह्मरन्ध्रान्तं व्याप्य आकाशं शोधयेत् । इति व्यापकं कृत्वा योनिमुद्रां बद्ध्वा कुलकुण्डलिनीमुत्थाप्य षट्सरोजानि भित्वा जीवप्रदीपस्नेहरूपिणीं तां परे तेजसि संयोज्य वक्ष्यमाणक्रमेण शोषणादि समाचरेत् ।

तत्रादौ वामकुक्षौ पापपुरुषं ध्यायेत्—

ब्रह्महत्याशिरस्कं च स्वर्णस्तेयभुजद्वयम् ।
सुरापानहृदा युक्तं गुरुतल्पकटिद्वयम् ॥

उपपातकरोमाणं पातकोपाङ्गसंश्रयम् ।
खड्गचर्मधरं कृष्णं पापं कुक्षौ विचिन्तयेत् ॥

इत्यादि क्रमेण कुक्षौ पापपुरुषं ध्यात्वा तत्सहितस्य देहस्य शोषणादिकं कुर्यात् । तद्यथा—

वामनासापुटे वायुमण्डलं तद्बीजयुक्तं यं कादिमान्तैः स्पर्शवर्णैः सेवितं धूम्रवर्णं स्मृत्वा अं १६ मात्राषोडशकेन सम्पूर्य प्राणापानवायुभ्यां सह संयोज्य तदुत्थेनानिलेन सह शारीरैर्महापापै रोगैश्च सह संशोष्य द्वात्रिंशद्भिर्मात्राभिः ३२ कुम्भकं षोडशभिः १६ रेचकं ततो दाहनम् ।

दक्षनासापुटे वह्निमण्डलं तद्बीजयुक्तं यादिदशभिर्यं सेवितं विचिन्त्य प्राणापानवायुभ्यां सह संयोज्य तदुत्थेनानलेन च सह शारीरैर्महापापै रोगैश्च सह संदह्य पूर्ववत् कुम्भकरेचकौ । ततः प्लावनम् । वामनासापुटे आप्यमण्डलं तद्बीजयुक्तं धवलं धनुराकारं षोडशस्वर १६ सेवितं विचिन्त्य पूर्ववत् सम्पूर्य आधारगतेन वायुना वह्निकुण्डलिनीमुत्थाप्य तस्या ज्वालासमुदायेन आप्लाव्यमानं ब्रह्मरन्ध्रेन्दुमण्डलादमृतादाप्लाव्यमानं पूर्ववत् पूरककुम्भकरेचकाः । एवं शोषणदाहनप्लावनानि कृत्वा परस्मिन् शाम्भवे ब्रह्मणि स्वशरीरं तत्सारूप्यप्रतिबिम्बितं बुद्बुदाकारं ध्यात्वा लं पृथिवीबीजेन कठिनीकृत्य हं व्योमबीजेन बिभिद्य भूतोत्पत्तिं विचिन्तयेत् । अक्षरात् खम् । आकाशाद् वायुः । औषधिभ्यो अन्नम् । अन्नाद् रेतः । रेतसः पुरुष इति सृष्टिक्रमं विचिन्त्य । ॐ हं १२ ॐ हौं सदाशिवाय व्योमाधिपतये शान्त्यतीतकलात्मने हुं फट् स्वाहा इति ब्रह्मरन्ध्रभ्रूमध्यपर्यन्तं व्याप्यं यं २४ ॐ ह्यैं ईश्वराय वाय्वधिपतये शान्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा भ्रूमध्याद् हृदयपर्यन्तं व्याप्यं रं ३६ ॐ ह्रूं अग्नये तेजोऽधिपतये विद्याकलात्मने हुं फट् स्वाहा हृदादिनाभिपर्यन्तं व्याप्यं वं ४८ ॐ ह्रीं विष्णवे अब्धिपतये प्रतिष्ठाकलात्मने हुं फट् स्वाहा नाभ्यादिजानुपर्यन्तं व्याप्यं लं ६० ॐ ह्रां ब्रह्मणे पृथिव्यधिपतये निवृत्तिकलात्मने हुं फट् स्वाहा जान्वादिपादपर्यन्तं व्याप्यमिति क्रमेण द्वादशसंख्या समारभ्य षष्टिपर्यन्तं वर्द्धयन् सोऽहमित्युच्चार्य हृत्पद्मे शिवात्मानं जीवं षट्त्रिंशत्तत्त्वरूपं स्मरेत् । तत एकविंशतिवारं मायां जपित्वा अङ्कुशाकारतर्जन्या प्राणान् मूलाधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्ते प्राणप्रतिष्ठामन्त्रेण स्थापयेत् ।

अथ प्राणप्रतिष्ठां कुर्वीत वक्ष्यमाणप्रकारतः तद्यथा—प्राणप्रतिष्ठामन्त्रस्य ब्रह्मविष्णुशिवा ऋषयः शिरसि। ऋग्यजुःसामानि छन्दांसि मुखे। प्राणशक्तिर्देवता हृदये। द्वादशान्ते प्राणप्रतिष्ठापने विनियोगः। अं कं खं गं घं ङं ५ आं पृथिव्यप्तेजोवाय्वाकाशात्मने हृदयाय नमः। अङ्गुष्ठाभ्यां नमः। इं चं छं जं झं ञं ५ ईं शब्दस्पर्शरूपरसगन्धात्मने शिरसे स्वाहा। तर्जनीभ्यां नमः। उं टं ठं डं ढं णं ५ ऊँ श्रोत्रत्वक्चक्षुर्जिह्वाघ्राणात्मने शिखायै वषट्। मध्यमाभ्यां नमः। एं तं थं दं धं नं ५ ऐं वाक्पाणिपायूपस्थाने कवचाय हुं। अनामिकाभ्यां नमः। ओं पं फं बं भं मं ५ औं वचनादानगमनविसर्गानन्दात्मने नेत्रत्रयाय वौषट्। कनिष्ठिकाभ्यां नमः। अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं अः मनोबुद्ध्यहंकारचित्तात्मने[1] अस्त्राय फट्। करतलकरपृष्ठयोः। यं त्वगात्मने नमः। रं असृगात्मने नमः। लं मांसात्मने नमः। वं मेद आत्मने नमः। शं अस्थ्यात्मने नमः। षं मज्जात्मने नमः। सं शुक्रात्मने नमः। ॐ आं ह्रीं क्रों इति बीजत्रयैश्च त्रिर्व्यापकं कृत्वा। ततो ध्यानम्—

रक्ताम्भोधिस्थपोतोल्लसदरुणसरोजाधिरूढा कराब्जैः
पाशं कोदण्डमिक्षूद्भवमथ गुणमप्यङ्कुशं पञ्च बाणान्॥
बिभ्राणाऽसृक्कपालं त्रिनयनलसिता पीनवक्षोरुहाढ्या
देवी बालार्कवर्णा भवतु सुखकरी प्राणशक्तिः परा नः।

इति ध्यानम्।

हृदि हस्तं दत्वा मन्त्रं जपेत्। आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हों मम प्राणेन श्रीभुवनेश्वरीप्राणा इह प्राणाः १। मम जीवेन सह श्रीभुवनेश्वर्या जीव इह स्थितः १। मम सर्वेन्द्रियैः सह श्रीभुवनेश्वर्याः सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा इति प्राणप्रतिष्ठाविधिः।

अथ मातृकान्यासक्रमः।

गुदात्तु द्व्यङ्गुलादूर्ध्वं सुषुम्णामूलरन्ध्रगम्।
वादिवेदार्णलसितं पङ्कजं कनकप्रभम्॥
तत्स्थां विद्युल्लताकारां तेजोरेखामणीयसीम्।
कुलकुण्डलिनीमूर्ध्वं नयेत् षट्चक्रभेदिनीम्॥

---

1 चित्तविज्ञानात्मने इति आह्निककर्मसूत्रावलिपाठः।

द्वादशान्ते द्रुमध्यस्थं पूर्वोक्तं मातृकाम्बुजम् ।
नवनीतनिभं ध्यात्वा द्रुतं कुण्डलिनीत्विषा ॥
तेजोऽञ्जलौ विनिःसार्य मातृकान्यासमाचरेत् ॥

अं आं इं ईं उं ऊं इति षट् स्वरान् दक्षवामकरतलतत्पृष्ठतद्व्याप्तिक्रमेण न्यसेत् । शिष्टान् दश स्वरानङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तं दशस्वङ्गुलिषु न्यसेत् । दक्षप्रदेशिनीमारभ्य वामकनिष्ठिकापर्यन्तं पूर्वत्रयाग्रेषु चतुश्चतुरः कादिसान्तान् वर्णान् हलावङ्गुष्ठयोः अन्त्यं अङ्गुल्यग्रेषु न्यसेत् । ततो लिपिषडङ्गः ।

अं कं खं गं घं ङं ५ आं हृदयाय नमः अङ्गुष्ठाभ्यां नमः । इं चं छं जं झं ञं ५ ईं शिरसे स्वाहा तर्जनीभ्यां नमः । उं टं ठं डं ढं णं ५ ऊं शिखायै वषट् मध्यमाभ्यां नमः । एं तं थं दं धं नं ५ ऐं कवचाय हुं अनामिकाभ्यां नमः । ओं पं फं बं भं मं ५ औं नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकाभ्यां नमः । अं यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं १० अः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठाभ्यां नमः ।

अस्याः शुद्धविन्दुविसर्गमातृकायाः ब्रह्मा ऋषिः शिरसि । देवी गायत्री छन्दो मुखे । श्रीमातृका सरस्वती देवता हृदि । व्यञ्जनानि बीजानि गुह्ये । स्वराः शक्तयः पादयोः । शुद्धविन्दुविसर्गमातृकान्यासे विनियोगः ।

ह्सौं अं आं ५० स्हौं । इति मातृकां त्रिर्व्यापयेत् । तत्र न्यासे कारिका—

कानन्वृत्तद्वयक्षिश्रुतितो गण्डोष्ठदन्तमूर्धास्ये ।
दोःपत्सन्ध्यग्रेषु च पार्श्वयोश्च पृष्ठनाभिजठरेषु ॥
हृद्दोर्मूलापरगलकक्षे हृदादिपाणिपादयुगे ।
जठराननयोर्व्यापकसंज्ञां न्यसेदथाक्षरान् क्रमशः ॥

तत्र न्यासः । ॐ अ नमः शिरसि । ॐ आ नमो मुखवृत्ते । ॐ इ नमो दक्षनेत्रे । ॐ ई नमो वामनेत्रे । ॐ उ नमो दक्षकर्णे । ॐ ऊ नमो वामकर्णे । ॐ ऋ नमो दक्षनासापुटे । ॐ ॠ नमो वामनासापुटे । ॐ ऌ नमो दक्षगण्डे । ॐ ॡ नमो वामगण्डे । ॐ ए नम ऊर्ध्वोष्ठे । ॐ ऐ नमः अधरोष्ठे । ॐ ओ नम ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ । ॐ औ नमः अधोदन्तपंक्तौ । ॐ अं नमो जिह्वामूले । ॐ अः नमो जिह्वाग्रे । ॐ क नमो दक्षहस्तमूले । ॐ ख नमो दक्षहस्तकूर्परे । ॐ ग नमो

दक्षहस्तमणिबन्धे । ॐ घ नमो दक्षहस्ताङ्गुलिमूले । ॐ ङ नमो दक्षहस्ताङ्गुल्यग्रे । ॐ च नमो वामहस्तमूले । ॐ छ नमो वामहस्तकूर्परे । ॐ ज नमो वामहस्तमणिबन्धे । ॐ झ नमो वामहस्ताङ्गुलिमूले । ॐ ञ नमो वामहस्ताङ्गुल्यग्रे । ॐ ट नमो दक्षपादमूले । ॐ ठ नमो दक्षपादजानुनि । ॐ ड नमो दक्षपादगुल्फे । ॐ ढ नमो दक्षपादाङ्गुलिमूले । ॐ ण नमो दक्षपादाङ्गुल्यग्रे । ॐ त नमो वामपादमूले । ॐ थ नमो वामपादजानुनि । ॐ द नमो वामपादगुल्फे । ॐ ध नमो वामपादाङ्गुलिमूले । ॐ न नमो वामपादाङ्गुल्यग्रे । ॐ प नमो दक्षपार्श्वे । ॐ फ नमो वामपार्श्वे । ॐ ब नमः पृष्ठे । ॐ भ नमो नाभौ । ॐ म नमो जठरे । ॐ य नमो हृदि । ॐ र नमो दक्षस्कन्धे । ॐ ल नमो वामस्कन्धे । ॐ व नमः कण्ठे । ॐ श नमो दक्षकक्षे । ॐ ष नमो वामकक्षे । ॐ स नमो हृदादिपाणियुगे । ॐ ह नमो हृदादिपादयुगे ॐ ळ नमो जठरादि आनने । व्यापकम् । ॐ क्ष नमो मस्तकादिपादान्तं । व्यापकम् । पुनस्तत्रैव ॐ अं नमः शिरसि । ॐ आं नमो मुखवृत्ते इत्यादि क्रमेण बिन्दुमातृकां न्यसेत् । पुनस्तत्रैव ॐ अः नमः शिरसि । ॐ आः नमो मुखवृत्ते इत्यादि क्रमेण विसर्गमातृकामङ्गुष्ठानामिकायोगेन न्यसेत् । अथ ध्यानम्—

अर्कोन्मुक्तशशाङ्ककोटिसदृशीमापीनतुङ्गस्तनीं
चन्द्रार्धाहितमस्तकां मधुमदामालोलनेत्रत्रयाम् ।
बिभ्राणामनिशं वरं जपवटीं शूलं कपालं करै-
राद्यां यौवनगर्वितां लिपितनुं वागीश्वरीमाश्रये ॥

इति ध्यानम् । इति शुद्धबिन्दुविसर्गमातृकाश्चेति त्रिविधो मातृकान्यासक्रमः ।

अथ अन्तर्मातृकान्यासक्रमः । अस्य श्रीअन्तर्मातृकान्यासस्य ब्रह्मा ऋषिः शिरसि । गायत्री छन्दो मुखे । अन्तर्मातृका सरस्वती देवता हृदि । हलो बीजानि गुह्ये । स्वराः शक्तयः पादयोः । क्षः कीलकं नाभौ । अन्तर्मातृकान्यासे विनियोगः ।

अथ षडङ्गः । ॐ ह्रीं अं कं ५ आं हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ ह्रीं इं चं ५ ईं शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ॐ ह्रीं उं टं ५ ऊं शिखायै वषट् मध्यमयोः । ॐ ह्रीं एं तं ५ ऐं कवचाय हुं अनामिकयोः । ॐ ह्रीं ओं पं ५ औं नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठयोः ॐ ह्रीं अं यं ९ अः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । ध्यानम्—

बन्धूकाभां त्रिनेत्रां पृथुजघनलसच्छुक्तिमद्रक्तवस्त्रां
पीनोत्तुङ्गप्रवृद्धस्तनजघनभरां यौवनाभाररूढाम् ।

दिव्यालङ्कारयुक्तां सरसिजनयनामिन्दुसङ्क्रान्तिमूर्धां
देवीं पाशाङ्कुशाढ्यामभयवरकरां मातृकां तां नमामि ॥

इति ध्यानम् । तत्र विशुद्धौ षोडशदलकमलमूर्ध्वमुखं ध्यात्वा तत्तद्दलेषु प्रागादिप्रादक्षिण्येन बीजपूर्वकं न्यसेत् । ॐ ह्रीं अं नमः । ॐ ह्रीं आं नमः । ॐ ह्रीं इं नमः । ॐ ह्रीं ईं नमः । ॐ ह्रीं उं नमः । ॐ ह्रीं ऊं नमः । ॐ ह्रीं ऋं नमः । ॐ ह्रीं ॠं नमः । ॐ ह्रीं ऌं नमः । ॐ ह्रीं ॡं नमः । ॐ ह्रीं एं नमः । ॐ ह्रीं ऐं नमः । ॐ ह्रीं ओं नमः । ॐ ह्रीं औं नमः । ॐ ह्रीं अं नमः । ॐ ह्रीं अः नमः । एवं षोडशस्वरान् न्यसेत् ।

ततोऽनाहतचक्रं द्वादशदलकमलं ध्यात्वा तथैव ककारादिठकारान्तान् वर्णान् प्रादक्षिण्येन न्यसेत् । ॐ ह्रीं कं नमः । ॐ ह्रीं खं नमः । ॐ ह्रीं गं नमः । ॐ ह्रीं घं नमः । ॐ ह्रीं ङं नमः । ॐ ह्रीं चं नमः । ॐ ह्रीं छं नमः । ॐ ह्रीं जं नमः । ॐ ह्रीं झं नमः । ॐ ह्रीं ञं नमः । ॐ ह्रीं टं नमः । ॐ ह्रीं ठं नमः ।

ततो नाभौ मणिपूरकचक्रं दशदलकमलं ध्यात्वा तत्तद्दलेषु डकारादिफकारान्तान् दश वर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं डं नमः । ॐ ह्रीं ढं नमः । ॐ ह्रीं णं नमः । ॐ ह्रीं तं नमः । ॐ ह्रीं थं नमः । ॐ ह्रीं दं नमः । ॐ ह्रीं धं नमः । ॐ ह्रीं नं नमः । ॐ ह्रीं पं नमः । ॐ ह्रीं फं नमः ।

ततो लिङ्गमूले स्वाधिष्ठानचक्रं षड्दलकमलं ध्यात्वा तत्तद्दलेषु बकारादि लकारान्तान् षड्वर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं बं नमः । ॐ ह्रीं भं नमः । ॐ ह्रीं मं नमः । ॐ ह्रीं यं नमः । ॐ ह्रीं रं नमः । ॐ ह्रीं लं नमः ।

ततो मूलाधारे चतुर्दलकमलं ध्यात्वा तत्तद्दलेषु वकारादिसकारान्तान् चतुर्वर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं वं नमः । ॐ ह्रीं शं नमः । ॐ ह्रीं षं नमः । ॐ ह्रीं सं नमः ।

ततो भ्रूमध्ये आज्ञाचक्रं द्विदलकमलं ध्यात्वा तत्तद्दलयोर्द्विवर्णान् न्यसेत् । ॐ ह्रीं हं नमः । ॐ ह्रीं क्षं नमः ।

अथ षट्चक्रध्यानम्—

आधारे लिङ्गनाभौ प्रकटितहृदये तालुमूले ललाटे
द्वे पत्रे षोडशारे द्विदशदशयुते द्वादशार्द्धे चतुष्के ।

वासान्ते बालमध्ये ड फ क ठ सहिते कण्ठदेशे स्वराणां
हं क्षं तत्त्वार्थयुक्तं सकलदलगतं वर्णरूपं नमामि ॥

इति षट्चक्रध्यानम् । इत्यन्तर्मातृकान्यासः ।

अथ भुवनेश्वरीसम्पुटितबहिर्मातृकान्यासः । अस्य श्रीभुवनेश्वरीसम्पुटितबहिर्मातृकामन्त्रस्य ब्रह्मा ऋषिः शिरसि गायत्री छन्दो मुखे बहिर्मातृका सरस्वती देवता हृदये हलो बीजानि गुह्ये स्वराः शक्तयः पादयोः क्षः कीलकं नाभौ बहिर्मातृकान्यासे विनियोगः।

अथ षडङ्गः । ॐ ह्रं अं कं ५ आं ह्रां हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ ह्रिं इं चं ५ ईं ह्रीं शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ॐ ह्रुं उं टं ५ ऊं ह्रूं शिखायै वषट् मध्यमयोः । ॐ ह्रें एं तं ५ ऐं ह्रैं कवचाय हुं अनामिकयोः । ॐ ह्रों ओं पं ५ औं ह्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् कनिष्ठिकयोः । ॐ ह्रं अं यं १० अः ह्रः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । इति षडङ्गः ।

ध्यानम्–

पञ्चाशद्वर्णभेदैर्विहितवदनदोःपादयुक्कुक्षिवक्षो-
देशां भास्वत्कपर्दाकलितशशिकलामिन्दुकुन्दावदाताम् ।
अक्षस्रक्कुम्भचिन्तालिखितवरकरां त्र्यक्षरां पद्मसंस्था-
मच्छाकल्पावतुच्छस्तनजघनभरां भारतीं तां नमामि ॥
पुस्तकज्ञानमुद्राङ्कां त्रिनेत्रां चन्द्रशेखराम् ।
आधाराद् ब्रह्मरन्ध्रान्तां बिसतन्तुतनीयसीम् ॥
तां देवीं चिन्तयेदन्तः पापत्रयविनाशिनीम् ।
मन्त्रवित्तन्मयो भूत्वा भावमन्यं न भावयेत् ॥
ब्रह्मकेशवरुद्राद्यैर्लभते दुर्लभं पदम् ।
पादादिक्रोधपर्यन्तं वर्णचक्रं सुसंयुतम् ॥
निष्कलङ्कं सुधाकान्तिकमनीयं न्यसेत्तनौ ।

तत्र न्यासे कारिका–

आद्यो मौलिरथापरो मुखमिई नेत्रे च कर्णावुऊ
नासावंशपुटे ऋ ॠ तदनुजौ वर्णौ कपोलद्वयम् ।
दन्ताश्चोर्ध्वमधस्तथोष्ठयुगलं सन्ध्यक्षराणि क्रमात्
जिह्वामूलमुदग्रबिन्दुरपि च ग्रीवा विसर्गी स्वरः ॥

कादिर्दक्षिणतो भुजस्तदितरो वर्गश्च वामो भुज–
ष्टादिस्तादिरनुक्रमेण चरणौ कुक्षिद्वयं ते पफौ ।
वंशः पृष्ठभवोऽथ नाभिहृदये बादित्रयं धातवो
याद्याः सप्तसमीरणश्च सपरः क्षः क्रोध इत्यभ्धिके ! ॥

तद्यथा–ॐ ह्रीं अं नमः ह्रीं शिरसि । ॐ ह्रीं आं नमः ह्रीं मुखवृत्ते । ॐ ह्रीं इं नमः ह्रीं दक्षनेत्रे । ॐ ह्रीं ईं नमः ह्रीं वामनेत्रे । ॐ ह्रीं उं नमः ह्रीं दक्षकर्णे । ॐ ह्रीं ऊं नमः ह्रीं वामकर्णे । ॐ ह्रीं ऋं नमः ह्रीं दक्षनासापुटे । ॐ ह्रीं ॠं नमः ह्रीं वामनासापुटे । ॐ ह्रीं लृं नमः ह्रीं दक्षगण्डे । ॐ ह्रीं लॄं नमः ह्रीं वामगण्डे । ॐ ह्रीं एं नम ह्रीं ऊर्ध्वदन्तपङ्क्तौ । ॐ ह्रीं ऐं नमः ह्रीं अधोदन्तपङ्क्तौ । ॐ ह्रीं ओं नमः ह्रीं ऊर्ध्वोष्ठे । ॐ ह्रीं औं नमः ह्रीं अधरोष्ठे । ॐ ह्रीं अं नमः ह्रीं जिह्वामूले । ॐ ह्रीं अः नमः ह्रीं जिह्वाग्रे । ॐ ह्रीं कं नमः ह्रीं दक्षस्कन्धे । ॐ ह्रीं खं नमः ह्रीं दक्षबाहौ । ॐ ह्रीं गं नमः ह्रीं दक्षकूर्परे । ॐ ह्रीं घं नमः ह्रीं दक्षमणिबन्धे । ॐ ह्रीं ङं नमः ह्रीं दक्षकरतले । ॐ ह्रीं चं नमः ह्रीं वामस्कन्धे । ॐ ह्रीं छं नमः ह्रीं वामबाहौ । ॐ ह्रीं जं नमः ह्रीं वामकूर्परे । ॐ ह्रीं झं नमः ह्रीं वाममणिबन्धे । ॐ ह्रीं ञं नमः ह्रीं वामकरतले । ॐ ह्रीं टं नमः ह्रीं दक्षकट्याम् । ॐ ह्रीं ठं नमः ह्रीं दक्षोरौ । ॐ ह्रीं डं नमः ह्रीं दक्षजानुनि । ॐ ह्रीं ढं नमः ह्रीं दक्षजङ्घायाम् । ॐ ह्रीं णं नमः ह्रीं दक्षचरणे । ॐ ह्रीं तं नमः ह्रीं वामकट्याम् । ॐ ह्रीं थं नमः ह्रीं वामोरौ । ॐ ह्रीं दं नमः ह्रीं वामजानुनि । ॐ ह्रीं धं नमः ह्रीं वामजङ्घायाम् । ॐ ह्रीं नं नमः ह्रीं वामचरणे । ॐ ह्रीं पं नमः ह्रीं दक्षकुक्षौ । ॐ ह्रीं फं नमः ह्रीं वामकुक्षौ । ॐ ह्रीं बं नमः ह्रीं पृष्ठवंशे । ॐ ह्रीं भं नमः ह्रीं नाभौ । ॐ ह्रीं मं नमः ह्रीं हृदये । ॐ ह्रीं यं नमः ह्रीं त्वचि आधारे । ॐ ह्रीं रं नमः ह्रीं स्वाधिष्ठाने रक्ते लिङ्गे । ॐ ह्रीं लं नमः ह्रीं मांसे मणिपूरके नाभौ । ॐ ह्रीं वं नमः ह्रीं मेदसि हृदये । ॐ ह्रीं शं नमः ह्रीं अस्थ्नि कण्ठे विशुद्धौ । ॐ ह्रीं षं नमः ह्रीं मज्जायां तालौ । ॐ ह्रीं सं नमः ह्रीं शुक्रे भ्रूमध्ये आज्ञायाम् । ॐ ह्रीं हं नमः ह्रीं प्राणे ललाटे । ॐ ह्रीं क्षं नमः ह्रीं ब्रह्मरन्ध्रे क्रोधे । इति भुवनेश्वरीसम्पुटितबहिर्मातृकान्यासः ।

एवं न्यासे कृते मन्त्री सर्वपापैः प्रमुच्यते ।
त्रिभिर्मासैस्त्रिसन्ध्यन्तु जीवन् मुक्तिमवाप्नुयात् ॥

प्रतिदिनमपि कुर्याद् यस्तु न्यासेन वैकं
नृपतिसदनमान्यो योषितां कर्षमायात् ।
अपि च कमलवासा सुस्थिरा तस्य वेश्म-
न्यहरहरपि वृद्धिं याति विश्वोपकर्तुम् ॥

इतिमातृकान्यासफलम् ।

ततः प्राणायामत्रयं कुर्यात् । तस्य लक्षणम् ।

इडया पूरयेद् वायुं स्वरैर्वर्णैश्च कुम्भयेत् ।
रेचयेद् यादिकैर्वर्णैस्ततः पिङ्गलया सह ॥
इडा च वामनासास्था पिङ्गला दक्षिणेन तु ।
इडापिङ्गलयोर्मध्ये सुषुम्णा रन्ध्रवाहिनी ॥

इत्थं प्राणायामत्रयं अथवा मूलेन कुर्यात् । तत्रादौ कवचं पठित्वा ।

अस्य श्रीएकाक्षरभुवनेश्वरीमन्त्रस्य शक्तिऋषये नमः शिरसि । गायत्री छन्दसे नमो मुखे । श्रीभुवनेश्वरीदेवतायै नमो हृदये । हं बीजाय नमो गुह्ये । ईं शक्तये नमः पादयोः । रं कीलकाय नमः सर्वाङ्गेषु । श्रीभुवनेश्वरीप्रीत्यर्थं जपे विनियोगः ।

अथ हृल्लेखादिन्यासः । ॐ ह्रीं हृल्लेखायै नमो मूर्ध्नि । ॐ ह्रं गगनायै नमो मुखे । ॐ ह्रैं रक्तायै नमो हृदये । ॐ ह्रौं करालिकायै नमो गुह्ये । ॐ ह्रः महोच्छुष्मायै नमः पादयोः । इति हृल्लेखादिन्यासः ।

अथ मूलमन्त्रषडङ्गः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः अङ्गुष्ठयोः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा तर्जन्योः । ॐ ह्रूं शिखायै वषट् मध्यमयोः । ॐ ह्रैं कवचाय हुं अनामिकयोः । ॐ ह्रौं नेत्रत्राय वौषट् कनिष्ठिकयोः । ॐ ह्रः अस्त्राय फट् करतलकरपृष्ठयोः । इति षडङ्गः ।

अथ सावित्र्यादिन्यासः । ॐ ह्रां गायत्रीसहिताय ब्रह्मणे नमो भाले । ॐ ह्रीं सावित्रीसहिताय विष्णवे नमो दक्षकपोले । ॐ ह्रूं वागीश्वरीसहिताय महेश्वराय नमो वामकपोले । ॐ ह्रौं श्रिया सहिताय धनपतये नमो वामकर्णे । ॐ ह्रौं रतिसहिताय स्मराय नमो मुखे । ॐ ह्रं सिद्धिबुद्धिसहिताय गणपतये नमो दक्षकर्णे । ॐ ह्रः भुवनेश्वर्यै नमो मुखे । इति सावित्र्यादिन्यासः ।

पुनः पृथक्त्वेन एतांस्तनौ न्यसेत् । तद्यथा—ॐ ह्रां गायत्र्यै नमः कण्ठमूले । ॐ ह्रीं सावित्र्यैनमः सव्यस्तने । ॐ ह्रूं सरस्वत्यै नम अपरस्तने । ॐ ह्रैं ब्रह्मणे नमः सव्यांसे । ॐ ह्रौं विष्णवे नमो हृदये । ॐ ह्रः शिवाय नमो दक्षांसे इति विन्यस्य ।

ॐ ह्रौं हृल्लेखायै नमो हृदि । ॐ ह्रैं गगनायै नमः शिरसे स्वाहा । ॐ ह्रूं रक्तायै नमः शिखायै वषट् । ॐ ह्रीं करालिकायै नमः कवचाय हुं । ॐ ह्रां महोच्छुष्मायै नमो नेत्रत्रयाय वौषट् । ह्रः सर्वसिद्धिदायिन्यै अस्त्राय फट् । इति पञ्चवक्त्रन्यासलिपिः ।

अथ ब्राह्म्यादिन्यासः । ॐ ह्रां ब्राह्म्यै नमो मूर्ध्नि । ॐ ह्रीं माहेश्वर्यै नमः सव्यांसे । ॐ ह्रूं कौमार्यै नमो दक्षपार्श्वे । ॐ ह्रैं वाराह्यै नमो वामांसे । ॐ ह्रौं चण्डिकायै नमो वामपार्श्वे । ॐ ह्रः महालक्ष्म्यै नमो हृदये इति ब्राह्म्यादिन्यासः ।

केचित् स्वदेहे पीठन्यासमपि कुर्वन्ति ।

एवं न्यासं कृत्वा मूलेन त्रिर्व्यापकं कुर्यात् । अथ ध्यानम् । हृदि योनिमुद्रां बद्ध्वा ध्यायेत्—

उद्यद्भास्वत्समाभां विजितनवजपामिन्दुखण्डावनद्धां
द्योतन्मौलिं त्रिनेत्रां विविधमणिलसत्कुण्डलां पद्मगाञ्च ।
हारग्रैवेयकाञ्चीगुणमणिवलयां चित्रवासो वमाना-
मम्बां पाशाङ्कुशेष्टामभयवरकराम्बिकां तां नमामि ॥

अन्यच्च—

उद्यद्दिनद्युतिमिन्दुकिरीटां तुङ्गकुचां नयनत्रययुक्ताम् ।
स्मेरमुखीं वरदाङ्कुशपाशाभीतिकराम्प्रभजे भुवनेशीम् ॥

इति ध्यात्वा मानसैरुपचारैः सम्पूज्य प्रत्यहं ३२ द्वात्रिंशच्छतम् जपेत् । अथवाष्टोत्तरशतं जपेत् । जपानन्तरं पुनराचमनप्राणायामादिकं षडङ्गन्यासध्यानं विधाय दक्ष (करे) जलं गृहीत्वा—

गुह्यातिगुह्यगोप्त्री त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् ।
सिद्धिर्भवतु मे देवि ! त्वत्प्रसादात् सुरेश्वरि ॥

इति पुष्पाक्षतसहितं स्ववामभागे देव्या दक्षहस्ते जपं निवेदयेत् । पञ्चमुद्राभिः प्रणमेत् ।

स्तम्भनं चतुरश्रं च मत्स्यगोत्तुरमेव च ।
योनिमुद्रेति विख्याताः पञ्चमुद्राभिवादने ॥

इति नमस्कारं कुर्यात् ।

ततः स्तोत्रसहस्रनामादिपाठं कुर्यात् । अथ मन्त्रभेदोद्धारः ।

लकुलीशोऽग्निमारूढो वामनेत्रार्द्धचन्द्रमाः ।
बीजं तस्याः समाख्यातं सेवितं सिद्धिकाङ्क्षिभिः ॥

अथ द्वितीयो भेदोद्धारः–

वाग्भवं शम्भुवनितारमाबीजत्रयान्वितम् ।
मन्त्रं समुद्धरेद्धीमान् त्रिवर्गफलसाधनम् ॥

ऋष्यादिकं तु पूर्ववत् । पुरश्चरणे जपसंख्यास्तु अग्रे वक्ष्यामः ।

इति पृथ्वीधराचार्यपद्धतौ शारदातिलकनानातन्त्रमतमालम्ब्य श्रीदायिदेवमत-सम्प्रदायिना मातृपुरस्थितेन अनन्तदेवेन विरचितायाम्भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिकायाम्भूत-शुद्ध्यादिजपान्तविवरणं (नाम) द्वितीयः कल्पः ॥ श्रीगुरुनाथार्पणमस्तु ।

भुवनेश्वरीपूजाविवरणम्

॥ श्री (:) ॥ चित्प्रकाशं गुरुं वन्दे परब्रह्मस्वरूपिणम् ।
क्रियतेऽनन्तदेवेन भुवनेशीपूजनं महत् ॥१॥

अथ पूजायन्त्रदेवतास्थापनजपहोमपुरश्चरणादिप्रकारं लिख्यते ।

श्रीदेव्युवाच—सर्वं कथितं देव ! महाश्चर्यप्रदायकम् ।
अधुना कथयामास [कथयाशु त्वं] अर्चनं विधिपूर्वकम् ॥
शिव उवाच—पूजनं शृणु देवेशि ! साधके सिद्धिदायकम् ।
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं पूजनं त्रिविधं स्मृतम् ॥
सौवर्णेऽथवा रौप्ये वा ताम्रे वा भूर्जपत्रके ।
यन्त्रोद्धारः । बिन्दु त्रिकोणं षट्कोणं वसुपत्रं सुशोभनम् ।
वृत्तं षोडशभिः पद्मं चतुर्द्वारोपशोभितम् ॥

कर्पूरागुरुकस्तूरीश्रीखण्डकुङ्कमेन च ।
लिखेद्यन्त्रं प्रयत्नेन लेखन्या हेमतारयोः ॥

एवं यन्त्रं शोभनं कृत्वा स्वर्णरौप्याद्यभावे गोमयेनोपलिप्तायां भूमौ पीठं समचतुरस्रं चतुर्विंशतिभिः षोडशभिः द्वादशभिरङ्गुलैः परिमितं उत्तमं मध्यमं कनिष्ठं कर्पूरागुरुकस्तूरीश्रीखण्डकुंकुमादिना चतुरस्रं षोडशदलं अष्टदलं षट्कोणं त्रिकोणं बिन्दुं विलिख्य राज्यभोगवासनाकामेन हेमलेखन्या लिखेत्। दूर्वारसेन मृत्युं-जयति। कनकरसेन शत्रुं जयति। स्तम्भनं हरिद्रारसेन। तत्र लेखनीनियमः। पालासजातिविटपसारस्त्रतकाकपक्षादि साम्राज्यकामः सुवर्णरजतोद्भवया सामान्यसमृद्धिकामः रक्ताश्वत्थं मार्जारास्थ्ना वश्यं आकृष्टिप्रयोगे रक्तचन्दनं स्तम्भने हरिद्रालेखन्या लिखेत्। एवं यन्त्रोद्धारं विधाय। तत्र देवीं पूजयेत्। तदुक्तं स्मृतौ—

यन्त्रं देवमयं प्रोक्तं देवता यन्त्ररूपिणी।
कामक्रोधादिदोषोत्थसर्वदुःखनिम (य) न्त्रणात् ॥
यन्त्रमित्याहुरेतस्मिन् देवः प्रीणाति पूजितः।
शरीरमिव जीवस्य दीपस्य स्नेहवत् प्रिये ॥
सर्वेषामपि देवानां तथा यन्त्रं प्रतिष्ठितम्।
ज्ञात्वा गुरुमुखात् सर्वं पूजयेद् विधिना प्रिये ॥

अत उद्धारप्रामाण्येन यन्त्रोद्धारं कृत्वा पूजामारभेत्। तत्रादौ मण्डपार्चनम्। ततो देवतागारं मनोहरं सुधूपितं बहुदीपविराजितं कृत्वा, पुष्पं गृहीत्वा ऐं श्रीं ह्रीं भुवनेश्वरीमण्डपाय नम इति पुष्पाक्षतादिभिः सम्पूज्य द्वारपूजामारभेत्। मूलमन्त्र-मुच्चार्य शुद्धोदकेन चतुर्द्वारात् संप्रोक्ष्य द्वारदेवताः पूजयेत्। 'ऐं ह्रीं श्रीं द्वारश्रियै नमः' इति द्वारे सम्पूज्य ऊर्ध्वोदुंबरमध्ये ऐं ह्रीं श्रीं गं गणपतये नमः। ऐं ह्रीं श्रीं सां सरस्वत्यै नमस्तत्कोणयोः। ऐं ह्रीं श्रीं क्षां क्षेत्रपालाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं वां वटुकाय नमः, ऐं ह्रीं श्रीं धां धात्रे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं विधात्रे नमः, ऐं ह्रीं श्रीं गां गङ्गायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं यां यमुनायै नमः, ऐं ह्रीं श्रीं शं शङ्खनिधये नमः, ऐं ह्रीं श्रीं पं पद्मनिधये नमः, ऐं ह्रीं श्रीं डाकिनीभ्यो दक्षशाखायाम्, ऐं ह्रीं श्रीं शाकिनीभ्यो वामशाखायाम्, ऐं ह्रीं श्रीं दें देहल्यै नमो देहल्याम्, ऐं ह्रीं श्रीं वास्तुपुरुषाय नम इति मण्डपाभ्यन्तरे सम्पूज्य। एवं द्वाराणि पूजयित्वा

वामाङ्गसङ्कोचपूर्वकं वामशाखां स्पृशन् सन् वामाङ्घ्रिणान्तः प्रविश्य द्वारदेशे तिरस्करिणीं पूजयेत्। 'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं ईं नमस्त्रैलोक्यमोहिनि महामाये सकलपशुजनमनश्चक्षुस्ति स्करणं कुरु कुरु स्वाहा' इति तिरस्करिणीं पूजयित्वा 'मुक्तकेशीं विवसनां मदाघूर्णितलोचनां स्वयोनिदर्शनान्मुह्यत्पशुवर्गां स्मराम्यहम्'। मुक्तकेशीमिति ध्यात्वा तस्याः बलिं अलिपिशितगन्धपुष्पसहितं पूर्वोक्तमंत्रेण दद्यात्।

अथ देशिकः स्वदेशे भुवनेश्वरीकलामागद्धुकामो वाक्संयतो जितेन्द्रियो जितक्रोधो रक्तालङ्कारवसनो हृद्यवेशो गन्धाष्टकलिप्ततनुर्धृतपुष्पमालाविराजितः सन् रक्तासने उपविश्य 'ऐं ह्रीं श्रीं आधारशक्तिकमलासनाय नम' इत्यभ्यर्च्योपविश्य ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवाय महाशरभाय। ॐ ह्रीं ह्रौं नमः शिवायै महाशरभ्यै। विघ्नशान्तये आसनाधः शरभद्वयमभ्यर्च्य वामदक्षिणभागयोः दीपद्वयं संस्थाप्य पूजासंभारान् दक्षहस्ते निधाय मूलेन शिखां बद्ध्वा आचम्य 'ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वं शोधयामि नमः' 'ॐ ह्रीं विद्यातत्त्वं शोध०' 'ॐ ह्रीं शिवतत्त्वं शोध०' एवमाचम्य मूलेन पूरक १६ कुंभक ३२ रेचक १६ प्रयोगेण प्राणायामत्रयं कृत्वा तिथ्यादिकं संकीर्त्य "मम सकलमनोरथसिद्ध्यर्थं श्रीभुवनेश्वरीपूजनं करिष्ये तदङ्गभूतशुद्ध्यादिन्यासान् करिष्ये तदङ्गभूतपात्रस्थापनं करिष्ये" इति सङ्कल्प्य। तत्रायं पात्रक्रमः—

आदौ कुम्भं ततः शङ्खं श्रीपात्रं शक्तिपात्रकम्।
भोगं च गुरुपात्रं च बलिपात्राण्यपि क्रमात्॥

अथ यन्त्रात्मनोर्मध्ये शुद्धोदकेन स्ववामभागे वहन्नाडीकरश्चोर्ध्वहस्तेन मत्स्यमुद्रया मायाङ्कितं भूबिंबवृत्तषट्कोणत्रिकोणात्मकं मण्डलं विरच्य अपसव्याङ्गुष्ठे [नावष्टभ्य वामेन पुष्पाक्षतैर्मूलबीजेन व्यस्ताव्यस्तक्रमेण त्रिकोणमध्यं च [सं] पूज्य। षट्कोणे—'ऐं ह्रीं श्रीं हृदयदेवीश्रीपादुकां पूजयामि' '३ शिरोदेवीश्रीपा०' '३ शिखादेवीश्रीपा०' '३ कवचदेवीश्रीपा०' '३ नेत्रदेवीश्रीपा०' '३अस्त्रदेवीश्रीपा०' इति षडङ्गानि सम्पूज्य। वृत्ते—'३ लं लक्ष्म्यै नमः' '३ कं काल्यै' '३ सं सरस्वत्यै०'। चतुरस्रे—'३ क्षां क्षीरसागराय नमः' '३ इं इक्षुसागराय नमः' '३ मं मधुसागराय नमः' '३ पीं पीयूषसागराय०' इत्याग्नेयादीन् सम्पूज्य। मूलेन गन्धादिना सम्पूज्य 'हूं फट्' इत्यस्त्रप्रक्षालितमाधारं 'मूलबीजेन श्रीभुवनेश्वर्याः कलशाधारं स्थापयामि नम' इति संस्थाप्य। 'रां रीं रूं रमलवरयऊं रं धर्मप्रददशकलात्मने अग्निमण्डलाय कलशाधाराय नमः' इति सम्पूज्य। तदुपरि

प्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत्। तद्यथा--'३ यं धूम्रार्चिःकलाश्री०' '३ रं ऊष्माकलाश्री पा०' '३ लं ज्वलिनीकलाश्री मा०' '३ वं ज्वालिनीकला०' '३ शं विस्फुलिङ्गिनीक०' '३ षं सुश्रीक०' '३ सं स्वरूपक०' '३ हं कपिलाक०' '३ ळँ हव्यवहाक०' '३ क्षं कव्यवहाक०' इति गन्धादिना सम्पूज्य। ततो मूलेन कलशं गृहीत्वा 'ॐ ह्रीं ह्रीं ह्रूँ ह्रूँ ब्रह्माण्डचषकाय स्वाहा' इति वामहस्तेन कलशं प्रक्षाल्य दशाङ्गेन धूपयित्वा 'ॐ ऐं सन्दीपनी ज्वालामालिनी हूँ फट् स्वाहा' मन्त्रेण कलशे योनिमुद्रां विन्यस्य, प्रणवेनाभिमन्त्र्य, अवगुण्ठनमुद्रया अवगुण्ठ्य 'ॐ क्रीं नमः' 'ह्रीं नमः' हूँ नमः' क्रीं नमः' 'ह्रूं नमः' इति बीजपञ्चकं कलशे विन्यस्य। 'ॐ ह्रीं श्रीं ह्रीं ॐ नमो भगवति महालक्ष्मी भुवनेश्वरि परमधाम्नि ऊर्ध्वशून्यप्रकाशिनि परमाकाशभासुरसोमसूर्याग्निभक्षिणि आगच्छ आगच्छ पात्रं गृह्ण गृह्ण प्रस्फुर प्रस्फुर फट् वौषट्' इति पात्रविद्यामुच्चार्य श्रीमदनिरुद्धसरस्वत्याः कलशं स्थापयामि नम, इति संस्थाप्य। 'ह्रौं ह्रीं ह्रूँ ह्मलवरयऊं हं वसुप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय कलशाय नमः' इति सम्पूज्य। तदुपरिप्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत्। तद्यथा--'३ कं भं तपिनी कलाश्रीपा०' '३ खं बं तापिनीकला०' '३ गं फं धूम्रार्चिःकला०' '३ घं पं मरीचिकला०' '३ ङं नं ज्वालिनी०' चं धं रुचिकला०' '३ छं दं सुषुम्णाकला०' '३ जं थं भोगदाकला०' '३ झं तं विश्वा०' 'ञं णं बोधिनीक०' 'टं ढं धारिणीक०' 'ठं डं क्षमाकला०' इति द्वादशकलाः सम्पूज्य, अमृतपात्रं दक्षहस्ते गृहीत्वा मूलविद्या अनुलोमविलोममातृकाया वामहस्तद्वितीयाखण्डस्पृष्टधारया कलशमापूर्य। द्वितीयाशोधनम्--'ऐं ह्रीं जूं सः प्रतद्विष्णुस्तवे'ति द्वितीयां संशोध्य मूलेन किञ्चित् कलशे निक्षिपेत्। 'त्र्यम्बक'मिति मीनं संशोध्य, निक्षिप्य, 'तद्विष्णो' रिति मुद्रां संशोध्य, निक्षिप्य 'गङ्गे च यमुने चैव' इत्यभिमन्त्र्य ब्रह्मशापं मोचयेत्--'व्रौं व्रीं व्रूँ व्रैं व्रौं व्रः ब्रह्मशापविमोचितायै सुधादेव्यै नमः' इति द्रव्यशोधनम्। द्रव्योपरि दशधा जप्त्वा कृष्णशापविमोचनं कुर्यात्–'ॐ कृष्णशापं विमोचय विमोचय अमृतं स्रावय स्रावय स्वाहा' इति दशधा जप्त्वा—

'एकमेव परं ब्रह्म स्थूलसूक्ष्ममयं ध्रुवम्।
कचोद्भवां ब्रह्महत्यां तेन तत्पावयाम्यहम्॥
सूर्यमण्डलसंभूते वरुणालयसम्भवे।
अमाबीजमये देवि शुक्रशापात्प्रमुच्यताम्॥

वेदानां प्रणवो बीजं ब्रह्मानन्दमयं यदि ।
तेन सत्येन ते देवि ब्रह्महत्यां]+ व्यपोहतु ॥'

इत्याभ्यां शुक्रशापब्रह्महत्याभ्यां सुधां मोचयेत् ॥ अमृतविद्यया त्रिधा विलोड्य 'ॐ ह्वाँ ह्वीं ह्वूँ ह्वैं ह्वौं ह्वः अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतस्वरूपिणि अमृतं स्रावय स्रावय शुक्रशापात् सुधां मोचय मोचय मोचिकायै नमः' । ॐ ह्रीं जूं सः स्वाहा' इति त्रेधा विलोड्य तत्र अमृते दोषजालं 'यं' वायुबीजेन पूरकेन संशोष्य, 'रं' अग्निबीजेन कुम्भकेन सन्दह्य, 'वं' अमृतबीजेन रेचकेन अमृतं कृत्य तत्र दशदोषनिवारणं कुर्यात् । तद्यथा—'ह्स्ख्फ्रें पथिकदेवताभ्यो हुं फट् स्वाहा' । ह्म्ख्फ्रें आस्फालिग्रामचाण्डालिनी हुं०' । ह्स्ख्फ्रें दृष्टिचाण्डालिनी हुं० । 'ह्स्ख्फ्रें सृष्टिचाण्डालिनी हुं०' 'ह्सख्फ्रें स्पर्शचाण्डालिनी हुं०' ह्स्ख्फ्रें घटचाण्डालिनी हुं०' 'ह्स्ख्फ्रें तपनवेधचाण्डालिनी हुं०' 'ह्स्ख्फ्रें सर्वजनदृष्टिस्पर्शदोषचाण्डालिनी हुं०' 'ह्स्ख्फ्रें पशुपाशचाण्डालिनी हुं० फट् स्वाहा इति कलशामृते पुष्पाक्षतान्निक्षिपेत् । सां सीं सूं स म ल व र य ऊं सं कामप्रदषोडशकलात्मने सोममण्डलाय कलशामृताय नमः' इति सम्पूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत् ३ अं अमृताकला श्रीपादुकां पूजयामि नमः । ३ आं मानदाकला श्री० । ३ इं पूषाकला श्री० । [३] ईं तुष्टिकला श्री० । ३ उं पुष्टिकला श्री० । ३ ऊं रतिकला श्री० । ३ ॠं धृतिकला श्री० । ३ ॠं शशिकला श्री० । ३ लृं चन्द्रिकाकला श्री० । ३ लॄं कान्तिकला श्री० । ३ एं ज्योत्स्नाकला श्री० । ३ ऐं श्रीकला श्री० । ३ ओं प्रीतिकला श्री० । ३ औं अङ्गदाकला श्री० । ३ अं पूर्णाकला श्री० । ३ अः पूर्णामृताकला श्री० । इति सोमस्य षोडशकलाः सम्पूज्य कलाप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं सो हं हं सः अस्मिन्नाधारसहिते कलशे अग्निसूर्यसोमकलानां प्राणाः इह प्राणाः, पुनर्मंत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारसहिते कलशे अग्निसूर्यसोमकलानां जीव इह स्थितः, पुनर्मंत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारसहिते कलशे अग्निसूर्यसोमकलानां सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इति कलशोपरि पुष्पा-

+कोष्ठान्तवर्ती एतावान् भागस्तु आद्य पुस्तके नोपलब्धः पुस्तकस्य त्रुटितत्वात् । प्रत्यन्तराभावात् स एष भागो रा० प्रा० वि० प्र० सङ्ग्रहे २७३५ सङ्ख्याक—दक्षिण काली पद्धतिनाम्नो हस्तलिखित ग्रन्थादुद्धृत्य विनिवेशितः । एषोऽपिग्रन्थ एतत्पद्धतिकृतः श्रीमदनन्तदेवस्यैव कृतिरित्यवधेयं सुधीभिः । सम्पादकः

त्ततान्निक्षिपेत् । इत्थं प्राणप्रतिष्ठां विधाय कलशं गन्धादिभिः सम्पूज्य कण्ठे पुष्पमालां बद्ध्वा 'हंसः शुचिषदि'ति' जपेत् । तत्र चतुर्दिक्षु मध्ये–ग्लूं गगनरत्नाय नमः पूर्वे, स्लूं स्वर्गरत्नाय० दक्षिणे, म्लूं मनुष्यरत्नाय० पश्चिमे, ब्लूं पातालरत्नाय० उत्तरे, न्व्लीं नागरत्नाय० मध्ये, इत्थं पञ्चरत्नानि संपूज्य । तन्मध्ये अकथादि त्रिकोणात्मकं हं क्षं मध्ये विलिख्य पुनः पूर्वोक्तामृतविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य जातवेदसं गायत्रीं त्र्यम्बकं च जपेत् । ततः शुक्रशापविमोचिनीविद्ययाऽभिमन्त्र्य तद्यथा–'ॐ ऐं ह्रीं श्रीं सोऽहं हंसः ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रैं ह्रौं ह्रः तत्सवितुः ह्रां वरेण्यं ह्रीं भर्गो देवस्य ह्रूं धीमहि ह्रैं धियो यो नः ह्रौं प्रचोदयात् ह्रः वं अमृते अमृतोद्भवे अमृतवर्षिणि अमृतस्राविणि अमृतप्लाविनि पात्रं अमृतं पूरय पूरय चन्द्रमण्डलनिवासिनि शुक्रशापात् सुधां मोचय मोचय द्रव्यं पवित्रं कुरु कुरु शुक्रशापं नाशय नाशय छिन्धि छिन्धि-तन्मंगलं कुरु कुरु अमृतं वर्षय वर्षय पात्रजपापं भक्षय भक्षय पतितप्रेतपिशाचराक्षस-डाकिनीशाकिनी [भ्यो] रक्ष रक्ष यक्षगन्धर्वामरगणमुनिसेवितममृतं पवित्रं कुरु कुरु ह्रूं अमृतेश्वरि अमृतकलां वर्षय वर्षय हुं फट् स्वाहा क्रौं दैत्यनाथाय शुक्राय नमः' इति शुक्रशापविमोचिनिविद्यया सप्तवारमभिमन्त्र्य

अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणामत्र निधेह्यमृतरूपिणि ॥

ह स क्ष म ल व र य ऊं आनन्दभैरवाय वौषट्, स ह क्ष म ल व र य ईं सुधादेव्यै वौषट्, इति कलशमध्ये आनन्दभैरवमिथुनं तद्बिन्दुभिरेव सन्तर्प्य

अकुलस्थामृताकारे सिद्धिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन्वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तद्बिन्दुभिरेव संतर्प्य

'ह्रीं तद्रूपेणैक्यरस्यत्वं दत्वा ह्यनतस्वरूपिणि ।
भूत्वा कुलामृताकारे मयि चित्स्फुरणं कुरु' ॥

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तद्बिन्दुभिरेव संतर्प्य मूलेन सप्तधाभिमन्त्र्यास्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठ्य वं अमृतबीजेन अमृतीकृत्य धेनुयोनिमुद्राः प्रदर्श्य ब्राह्म्यादिमिथुनाष्टकं पूजयेत् । तद्यथा–अं असिताङ्गभैरवश्रीपादुकां पूजयामि नमः, आं ब्रह्माण्यम्बा श्री०, इं रुरु भैरव श्री०, ईं माहेश्वर्यम्बा श्री०, उं चण्डभैरव श्री०, ऊं

कौमार्यम्बा श्री०, ॠं क्रोधभैरव श्री०, ॠं वैष्णव्यम्बा श्री०, ऌं उन्मत्तभैरवश्री०, ॡं वाराह्यम्बा श्री०, एं कपालिभैरव श्री०, ऐं इन्द्राण्यम्बा श्री०, ओं भीषणभैरव श्री०, औं चामुण्डाम्बा श्री०, अं संहारभैरव श्री०, अः महालक्ष्म्यम्बा श्री०, इति ब्राह्म्यादिमिथुनाष्टकं सम्पूज्य । अथ कुम्भध्यानम्—

देवदानवसंवादे मथ्यमाने महोदधौ ।
उत्पन्नोऽसि महाकुम्भ ! विष्णुना विधृतःकरे !
त्वत्तो ये सर्वदेवाः स्युः सर्वे वेदाः समाश्रिताः ।
त्वयि तिष्ठन्ति भूतानि त्वयि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥
शिवः स्वयं त्वमेवासि त्वं विष्णुस्त्वं प्रजापतिः ।
आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे विश्वेदेवा सपैतृकाः ॥
त्वयि तिष्ठन्ति कलशे यतः कामफलप्रदः ।
त्वत्प्रसादादिमं यज्ञं कर्तुमीहे जलोद्भव ॥
त्वदालोकनमात्रेण भुक्तिमुक्तिफलं महत् ।
सान्निध्यं कुरु भो कुम्भ ! प्रसन्नो भव सर्वदा ॥

इति कलशध्यानम् । अथ सुधाध्यानम्—

समुद्रे मथ्यमाने तु क्षीरोधे[दे]सागरोत्तमे ।
तत्रोत्पन्नां सुधां देवीं कन्यकारूपधारिणीम् ॥
अष्टादशभुजैर्युक्तां रक्तां चायतलोचनाम् ।
शङ्खं खड्गं धनुश्चैव कपालं मुशलं तथा ॥
शक्तिं गदां वरं घण्टां दधानां सोत्तरैर्भुजैः ।
चक्रं मुष्टिं शरं शूलं लोहखेटं च तोमरम् ॥
अभयं भिण्डिमालां [भिन्दिपालं]च दधानां दक्षिणैर्भुजैः ।
त्रिनेत्रां दीर्घतन्वङ्गीं कालाग्निसदृशप्रभाम् ॥
मन्दारं वेष्टयित्वा [च] फेनिलावर्तभीषणाम् ।
गोमूत्रक्षीरवर्णाभां कृष्णवर्णपरां सुधाम् ॥
अपीतापीतवर्णाभां बहुरूपां परां सुधाम् ।
त्रासयन्न [न्त्य] सुरान् सर्वान् देवानामभयङ्करी ॥
या सुधा सा उमा देवी यो मदः सो महेश्वरः ।

यो वर्णः स भवेद् ब्रह्मा यो गन्धः स जनार्दनः ॥
स्वादौ च संस्थितः सोमः शब्दे देवो हुताशनः ।
इच्छायां मन्मथो देवो लीलायां किल भैरवः ॥
फेने गङ्गा स्थिता देवो बोधस्थाः सप्तसागराः ।
इच्छाशक्तिः सुधामोदे ज्ञानशक्तिस्तु तद्रसे ॥
तत्स्वादौ च क्रियाशक्तिः तदुल्लासे परा स्थितिः ॥
सुधादर्शनमात्रेण सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
तद्गन्धघ्राणमात्रेण शतक्रतुफलं लभेत् ।
सुधास्पर्शनमात्रेण तीर्थकोटिफलं लभेत् ॥
सुधास्वादनमात्रेण लभेन्मुक्तिं चतुर्विधाम् ।

इति सुधां ध्यात्वा सुधागायत्रीं जपेत्—

'ऐं सुधादेवि विद्महे ह्रीं समुद्रोद्भवे धीमहि श्रीं तन्नो रक्ताक्षी प्रचोदयात्'

इति सुधागायत्रीं कलशोपरि सप्तधा जपित्वा ततः कलशामृतं पात्रान्तरेणाच्छाद्य उद्धरणपात्रमादाय 'ॐ अमोघायै नमः, ॐ सूक्ष्मायै नमः, ॐ आनन्दायै नमः, ॐ शान्त्यै नम इति तस्मिन् पात्रे शक्तिचतुष्टयं संपूज्य कुम्भस्याच्छादनपात्रस्योपरि संस्थाप्य आवाहनादिमुद्राः प्रदर्शयेत् । आवाहनि १ स्थापनि २ सन्निरोधिनि ३ अवगुण्ठिनि ४ सुप्रसारिणि ५ सम्मुखीकरिणि ६ संकलरिणि ७ अमृतीकरणि ८ चक्र ९ योनि १० एताः दशमुद्राः दर्शयेत् । कलशं गन्धादिनैवेद्यान्तमुपचारैः पूजयेत् । इति कलशस्थापनम् ।

अथ शङ्खस्थापनम् । ततः कलशदक्षिणभागे शुद्धोदकेन वहन्नासाकरोर्ध्वपुटाभ्यां मछ (त्स्य) मुद्रया त्रिकोणवृत्तं चतुरस्रं मण्डलं विरच्य शङ्खमुद्रया दक्षकरेणावष्टभ्य वामेन पुष्पाक्षतैः मूलेन व्यस्ताव्यस्तक्रमेण संपूज्य, मध्ये अस्त्रप्रक्षालितमाधारं मूलेन संस्थाप्य रं अग्निमण्डलाय नमः, इति संपूज्य, मूलेन शङ्खं संस्थाप्य हं सूर्यमण्डलाय नमः, इति संपूज्य, मूलविद्यया शुद्धोदकैः पूरयित्वा, सं सोममण्डलाय नमः, इति संपूज्य, गन्धादिकं कलशबिन्दुं निक्षिप्य, ॐ ह्सौ वरुणाय स्हौं वरुणादेव्यै नमः, इति सप्तवारमभिमन्त्र्य, 'गङ्गे च यमुने :चैव० इमं मे गंगे०' इत्यभिमन्त्र्य । ध्यानम्—

पाञ्चजन्य महानादध्वस्तनिःशेषदानवान् । (१)
महाविष्णुकराग्रान्तं पयमानीय [पय आनयि] सर्वदा ॥

इति शङ्खध्यानम् । शङ्खस्थमुदकं दक्षकरतले गृहीत्वा वामकरेणाच्छाद्य मूलमन्त्रेण त्रिवारमभिमन्त्र्य आत्मानं शिरसि त्रिवारं नववारं वा प्रोक्ष्य पूजोपकरणानि प्रोक्ष्य शङ्खमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति सामान्यार्घ्यस्थापनम् ॥ अथ विशेषार्घ्यपात्रस्थापनम् । तत्पुरतो वहच्छ्वासोर्ध्वकराभ्यां शङ्खोदकेन अन्तर्मायाङ्कितं भूबिम्बवृत्तषट्कोणत्रिकोणात्मकं मण्डलं विरच्य अपसव्याङ्गुष्ठेनावष्टभ्य वामेन व्यस्ताव्यस्तक्रमेण मूलविद्यया त्रिकोणमध्यं च संपूज्य षट्कोणे ऐं ह्रीं श्रीं हृदयदेवि श्रीपादुकां पूजयामि नमः । ३ शिरोदेवि श्री० । ३ शिखादेवि श्री० । ३ कवचदेवि श्री० । ३ नेत्रदेवि श्री० । ३ अस्त्रदेवि श्री० । चतुरस्रे, ३ क्षां क्षीरसागराय नमः, ३ ईं इक्षुसागराय०, ३ मं मधुसागराय०, ३ पं पीयूषसागराय०, इत्याग्न्येयादीन् संपूज्य, त्रिकोणे ३ कामरूपपीठाय नमः, ३ जालंधरपीठाय नमः, ३ पूर्णगिरिपीठाय नमः, मध्ये ३ उड्यानपीठाय नम इति पीठचतुष्टयं संपूज्य मूलेन प्रक्षालितमाधारं 'श्रीभुवनेश्वरीविशेषार्घ्यपात्राधारं स्थापयामि नमः' इति संस्थाप्य, रां रीं रूं रं म ल व र य उं रं धर्मप्रददशकलात्मने अग्निमण्डलाय विशेषार्घ्यपात्राधाराय नम इति संपूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत् । ३ यं धूम्रार्चिः कला श्री०, ३ रं ऊष्माकला श्री०, ३ लं ज्वलिनिकला श्री०, ३ वं ज्वालिनिकला श्री०, ३ शं विस्फुलिङ्गिनीकला श्री०, ३ षं सुश्रीकला श्री०, ३ सं सुरूपाकला श्री०, ३ हं कपिलाकला श्री०, ३ ळं हव्यवहाकला श्री०, ३ क्षं कव्यवहाकला श्री०, इति गन्धादिना संपूज्य तदुपरि सौवर्णं राजतं ताम्रं विश्वामित्रमयं मूलेन प्रक्षालितं सुधूपितं श्रीभुवनेश्वरीविशेषार्घ्यपात्रं स्थापयामि नम इति संस्थाप्य । हां हीं हूं ह म ल व र य ऊं सं वसुप्रदद्वादशकलात्मने सूर्यमण्डलाय विशेषार्घ्यपात्राय नम इति सम्पूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन सूर्यद्वादशकलाः पूजयेत् । ३ कं भं तपिनिकला श्री०, ३ खं बं तापिनिकला श्री०, ३ गं फं धूम्राकला श्री०, ३ घं पं मरीचिकला श्री०, ३ ङं नं ज्वालिनिकला श्री०, ३ चं धं रुचिकला श्री०, ३ छं दं सुषुम्णा कला श्री०, ३ जं थं भोगदाकला श्रीं०, ३ झं तं विश्वाकला श्री०, ३ ञं णं बोधिनीकला श्री०, ३ टं ढं धारिणीकला श्री०, ३ ठं डं क्षमाकला श्री०, इति सम्पूज्य । ततः मूलविद्यया विलोममातृकया कलशस्थजलं उद्धरणपात्रेणोद्धृत्य वामहस्तद्वितीयाखण्डस्पृष्ट-

धारया श्रीभुवनेश्वरीविशेषार्घ्यपात्रामृतं पूरयामि नम इति संपूर्य मूलेन किञ्चिद् द्वितीयां निक्षिप्य ॐ ह्रीं इत्यङ्गुष्ठानामिकाभ्यां पुष्पेण तत्पात्रस्थं अमृतं आलोड्य तत्पुष्पं निरस्य तन्मध्ये गन्धाष्टकपङ्कलोलितं पुष्पं निक्षिप्य ॐ इति गालिनीमुद्रया निरीक्ष्य 'गङ्गे च यमुने चे'त्यभिमन्त्र्य तत्र दोषजालं यमिति वायुबीजेन पूरकेन संशोध्य, रमिति अग्निबीजेन कुम्भकेन सन्दह्य, वमिति अमृतबीजेन रेचकेन अमृतीकृत्य सां सीं सूं स म ल व र य ऊं स्रं कामप्रदषोडशकलात्मने सोममण्डलाय विशेषार्घ्यपात्रामृताय नम इति सम्पूज्य तदुपरि प्रादक्षिण्येन कलाः पूजयेत् । ३ अं अमृताकला श्री०, ३ आं मानदाकला श्री०, ३ इं पूषाकला श्री०, ३ ईं तुष्टिकला श्री०, ३ उं पुष्टिकला श्री०, ३ ऊं शक्तिकला श्री०, ३ ऋं धृतिकला श्री०, ३ ॠं शशिनिकला श्री०, ३ लृं चन्द्रिकाकला श्री०, ३ लॄं कान्तिकला श्री०, ३ एं ज्योत्स्नाकला श्री०, ३ ऐं श्रीकला श्री०, ३ ओं प्रीतिकला श्री०, ३ औं अंगदाकला श्री०, ३ अं पूर्णामृताकला श्री०, ३ अः अमृताकला श्री०, इति सोमस्य षोडशकलाः पूजयेत् । [ततः] कलाप्राणप्रतिष्ठां कुर्यात् । ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं सं हं ळं क्षं सोहं हंसः अस्मिन्नाधारसहिते विशेषार्घ्ये अग्निसूर्यसोमकलानां प्राणा इह प्राणाः, पुनर्मंत्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारसहिते विशेषार्घ्ये अग्निसूर्यसोमकलानां जीव इह स्थितः, पुनर्मन्त्रं पठित्वा अस्मिन्नाधारसहिते विशेषार्घ्ये अग्निसूर्यसोमकलानां सर्वेन्द्रियाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुः श्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा, इत्थं प्राणप्रतिष्ठां विधाय तत्र चतुर्दिक्षु मध्ये ग्लूं गगनरत्नाय नमः पूर्वे, स्लूं स्वर्गरत्नाय नमो दक्षिणे, म्लूं मनुष्यरत्नाय नमः पश्चिमे, ब्लूं पातालरत्नाय नम उत्तरे, न्लीं नागरत्नाय नमो मध्ये, इत्थं पञ्चरत्नानि संपूज्य तन्मध्ये अकथादि त्रिकोणात्मकं हं क्षं मध्ये वर्णकदम्बकं विलिख्य मूलविद्यामुच्चार्य--

ब्रह्माण्डखण्डसम्भूतमशेषरससम्भवम् ।
आपूरितमहापात्रं पीयूषरसमावहेत् ॥

'ॐ ह्रीं अमृते अमृतोद्भवे अमृतेश्वरि अमृतवर्षिणि अमृतं स्रावय सां जूं जूं सः अमृतेश्वर्यै स्वाहा' इत्यमृतविद्यया त्रिरभिमन्त्र्य जातवेदसं गायत्रीं त्र्यम्बकं च जपेत् । शां शीं शूं शैं शौं शः शुक्रशापविमोचिन्यै स्वाहा, इति शुक्रशापविमोचिन्या त्रिरभिमन्त्र्य—

अखण्डैकरसानन्दकरे परसुधात्मनि ।
स्वच्छन्दस्फुरणा तत्र निधेह्यमृतरूपिणि ॥

हसक्षलवरय ऊं आनन्दभैरवाय वौषट्, सहक्षमलवरयऊ सुधादेव्यै वौषट् इत्यर्घ्यमध्ये आनन्दभैरवमिथुनं तद्बिन्दुभिरेव संतर्प्य—

अकुलस्थामृताकारे सिद्धिज्ञानकरे परे ।
अमृतत्वं निधेह्यस्मिन् वस्तुनि क्लिन्नरूपिणि ॥

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तद्बिन्दुभिरेव सन्तर्प्य—

तद्रूपेणैक्यरस्यत्वं दत्वा ह्येतत्स्वरूपिणी ।
भूत्वा कुलामृताकारे मयि चित्स्फुरणं कुरु ।

पुनरानन्दभैरवमिथुनं तद्बिन्दुभिरेव सन्तर्प्य मूलेन सप्तधाऽभिमन्त्र्य अस्त्रेण संरक्ष्य कवचेनावगुण्ठ्य धेनुयोनिमुद्राः प्रदर्शयेत् । 'समुद्रे मथ्यमाने तु' इत्यनेन सुधां ध्यात्वा सुधागायत्रीं जपेत् । 'ऐं सुधादेवि विद्महे ह्रीं समुद्रोद्भवे धीमहि श्रीं तन्नो रक्ताक्षी प्रचोदयात्' इति सुधागायत्रीं सप्तवारं जपित्वा आवाहनादिमुद्राः प्रदर्श्य विशेषार्घ्यवारिणा आत्मानं पूजोपकरणानि च प्रोक्ष्य पात्रं गन्धादिनैवेद्यान्तं पूजयेत् । इति विशेषार्घ्यपात्रस्थापनम् । तत्पुरतः मूलेन शक्तिपात्रं स्थापयेत् । तत्पुरतः मूलेन भोगपात्रं स्थापयेत् । तत्पुरतः गुरुपादुकाविद्यया गुरुपात्रं स्थापयेत् । तत्पुरतः मूलेन आत्मपात्रं स्थापयेत् । पात्राणि कलशामृतेन मूलविद्यया पूरयेत् । गन्धाद्युपचारान्तं पूजयेत् । बलिपात्राणि च बलिदानसमये स्थापयेत् । इति पात्रस्थापनविधिः ॥

अथात्मपूजनम् । तत्रादौ संविद्वदनं ततः शिरः पीठे ह्रीं शिवशक्तिसदाशिवेश्वरशुद्धविद्यामायाकलारागकालनियतिपुरुषप्रकृतिअहङ्कारबुद्धिमनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणवाक्पाणिपादपायूपस्थशब्दस्पर्शरूपरसगन्धाकाशवायुवह्निसलिलभूम्यात्मने योगपीठासनाय नमः, इति शिरसि गन्धाक्षतपुष्पादिभिः श्री गुरोः पीठं संपूज्य । ॐ ह्रीं बीजेन आत्मपात्रं संस्पृश्य दक्षहस्ते गृहीत्वा वामे अक्षतान् गृहीत्वा मूलमंत्रमुच्चार्य मूलाधारं चतुर्दलं देवतासहितं पूजयामि तर्पयामि नमः, एकैकं चुलुकं ग्राहयेत् । मू० स्वाधिष्ठानं षड्दलं देवतासहितं पू० त० । मू० मणिपूरं दशदलं देवतासहितं पू० त०, मू० अनाहतं द्वादशदलं देवतासहितं पू० त०,

मू० विशुद्धं षोडशदलं देवतासहितं पू० त० । मू० आज्ञाचक्रं द्विदलं देवता-सहितं पू० त० । इति षट्चक्राणि संतर्प्य पुनस्तत्तेजस्त्रिपुष्कररूपेण त्रिधा कृत्वा-ऐं स्वयंभूलिङ्गश्रीपादुकां पूजयामि तर्पयामि नम इत्याधारे सम्पूज्य ३ ई वाण लिङ्ग श्री० त० हृदये । ३ औः इतरलिंग श्री० त० भ्रूमध्ये । ३ ऐं ईं औः पर-लिंग श्री० त० मूर्ध्नि । इत्याधारहृदयभ्रूमध्यमूर्द्धसु वह्निसूर्यसोमतत्समष्टीरूप-तयानुसंधाय । पुनस्तत्तेजो निष्कलीकृत्य—

सर्गद्वयपुटान्तस्था मनश्चक्रद्वयसंश्रयाम् ।
तेजोदण्डमयीं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥

ॐ ह्रीं भुवनेश्वरी पराम्बा श्री० पा० त० इति तां संतर्प्य । ॐ ऐं आत्मतत्व-रूपं स्थूलदेहं शोधयामि पू० त० । ॐ ह्रीं विद्यातत्वरूपं सूक्ष्मदेहं शोधयामि पू० त० । इति देहत्रयं सन्तर्प्य मूलविद्यामुच्चार्य श्रीभुवनेश्वरीपराम्बामयं जीवशिवं पू० त० । इत्यर्घ्यं निवेद्य—

प्रकाशैकघने धाम्नि विकल्पप्रसवादिकान् ।
निक्षिप्याभ्यर्चनद्वारा वह्नाविव घृताहुतिः ॥
प्रकाशाकाशहस्ताभ्यामवलम्ब्योन्मनि स्रुचम् ।
धर्माधर्मौ कलास्नेहं पूर्णावग्नौ जुहोम्यहम् ॥
धर्माधर्महविर्दीप्तमात्माग्नौ मनसा स्रुचा ।
सुषुम्णा वर्त्मना नित्यमक्षवृत्तिर्जुहोम्यहम् ॥

इत्यादिना चान्तर्हवनं कृत्वा मूलाधारे सर्वभूतानि तृप्यन्त्विति सन्तर्प्य । रोम-कूपेषु चतुःषष्टिकोटियोगिन्यस्तृप्यन्त्विति सन्तर्प्य । ॐ ह्रीं आत्मतत्वं शोध० । ॐ ह्रीं विद्यातत्वं शोध० । ॐ ह्रीं शिवतत्वं शोध० । ॐ ह्रीं सर्वतत्वं शोध० । इति तत्वचतुष्टयशोधनं कृत्वा आत्मानं विगलिततनुत्रयं तत्साक्षित्वाद् बन्धनिर्मुक्त-त्वादात्मानं परमशिवात्मानमनुसन्धाय—

मायान्ततत्वे सदहं शिवोऽहं शक्त्यन्ततत्वे चिदहं शिवोऽहम् ।
शिवान्ततत्वे च सुखं शिवोऽहमतः परं पूर्णमनुत्तरोऽहम् ॥

यस्मात् परं नापरमस्ति किञ्चित् । इति पठेत् । शिवो ऽस्मि शिवो ऽस्मीत्य-नुसन्धाय विगलिताखिलबन्धः सन् जीवन्मुक्तः सुखी विहरेत् । इत्यात्मपूजनम् ।

ततः पद्मामयागं कुर्यात् । अथ पीठावरणदेवतानां पूजाक्रमः । पूरकक्रमेण मनः संयोज्याकुञ्च्य प्राणापानसमानव्यानमध्यन्तः परिक्षुभ्यत्पवनं दण्डाहतभुजङ्गाकृति-विद्युद्विलासितोज्ज्वलां कुलकुण्डलिनीमाधारादिषट्चक्राणि निर्भिद्य मूलबीजोच्चारणेन द्वादशान्तेन्दुमण्डलं नीत्वा ध्यायेत् ।

सर्गद्वयपुटान्तस्थामनचकद्वयसंश्रयाम् ।
तेजोदण्डमयीं ध्यायेत् कुलाकुलनियोजनात् ॥

इत्थं कुण्डलिनीमुत्थाप्य ध्यायेत् । तत्र सामान्यार्घ्योदकेन यन्त्रमभ्युक्ष्य पीठ-देवताः पूजयेत् । तद्यथा—ऐं ह्रीं श्रीं गं गणपतये नमः । ३ मं मण्डूकाय० । ३ कच्छपाय० । ३ अनन्ताय० । ४ वाराहाय० ३ कालाय० ३ कूर्माय० । ३ अमृतार्णवाय० । ३ सुवर्णद्वीपाय० । ३ रत्नवेद्यै० । ३ रत्नसिंहासनाय० इत्यक्षतयुक्तैकादश-पुष्पाणि पीठोपरि निक्षिपेत् । आग्नेयादिकोणेषु, ३ धर्माय नमः । ३ ज्ञानाय० । ३ वैराग्याय० ३ ऐश्वर्याय० । पूर्वं दिक्षु, ३ अधर्माय० । ३ अज्ञानाय० । ३ अवैराग्याय० । ३ अनैश्वर्याय० । वायव्यादि ईशानान्तां गुरुपंक्तिं पूजयेत् । ३ ३ गुरुभ्यो नमः । ३ परमगुरुभ्यो नमः । ३ परात्परगुरुभ्यो नमः । ३ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः । शिवादिगुरुभ्यो नमः । ह्रीं चतुर्द्वाराय नमः । ३ चतुरस्राय० । ३ षोडशपद्माय० । ३ ह्रीं अष्टदलपद्माय० । ३ षट्कोणाय० । ३ त्रिकोणाय० । ३ वैन्दवाय नमः । ह्रीं प्रकाशात्मने सत्वाय० । ह्रीं प्रवृत्यात्मने रजसे० । ह्रीं प्रमोदात्मने तमसे नमः । ह्रीं अर्कमण्डलाय० । ह्रीं वह्निमण्डलाय० । ह्रीं चन्द्रमण्डलाय० । ह्रीं आत्मतत्वाय० । ह्रीं विद्यातत्वाय० । ह्रीं शिवतत्वाय० । ह्रीं परमतत्वाय० । ह्रीं आत्मने० । ह्रीं अन्तरात्मने० । ह्रीं परमात्मने० । ह्रीं पद्माय० । ह्रीं कन्दाय० । ह्रीं मलाय० । ह्रीं नालाय० । ह्रीं केसरेभ्यो० । ह्रीं कर्णिकायै० । इत्यासनं सम्पूज्य । ह्रीं आत्मशक्तिकमलासनाय० । ह्रीं शङ्खनिधये० । ह्रीं पं पद्मनिधये० । ततः प्राग्दिक्क्रमेण पीठदेवताः पूजयेत् । ह्रीं जयायै नमः । ह्रीं विजयायै नमः । ह्रीं अजितायै नमः । ह्रीं अपराजितायै नमः । ह्रीं नित्यायै नमः । ह्रीं विलासिन्यै नमः । ह्रीं दोग्ध्र्यै नमः । ह्रीं अघोरायै नमः । एताः सम्पूज्य । ह्रीं मंगलायै नमः । इति मध्ये संपूज्य । अथ पीठमन्त्रः । 'ॐ नमो भगवत्यै सर्वेश्वर्यै सर्वज्ञानात्मिकायै पद्मपीठायै नमः' । ततः पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा पूर्वोक्तध्यानपूर्वकं त्रिकोणमध्ये स्वहृदयाद् वा सूर्यमण्डलाद् वा परमेश्वरीं सर्वलक्षणसंपन्नां तेजोरूपां वहन्नासापुटेन पिंगलाद् बहिः० पूजार्थमानीय संचिन्त्य मूलमन्त्रं स्मृत्वा—

एह्येहि देवदेवेशि भुवनेशि सुरपूजिते !
परामृतप्रिये शीघ्रं सान्निध्यं कुरु सिद्धिदे ! ॥
महापद्मवनान्तस्थे करुणानन्द[1]विग्रहे ।
सर्वभूतहिते मातरेह्येहि परमेश्वरि ! ॥

अस्मिन् मण्डले सान्निध्यं कुरु कुरु नमः' इति बिन्दौ पुष्पाणिनिक्षिपेत् । सकलीकृत्य-ह्रीं भुवनेश्वरीं सकलीकरोमि स्वाहा । ह्रीं भुवनेश्वरीं आवाहयामि स्वाहा । ह्रीं भुवनेश्वरीं स्थापयामि स्वाहा । ह्रीं भुवनेश्वरीं संरोधयामि स्वाहा । ह्रीं भुवनेश्वरीं प्रसादयामि स्वाहा । एताः पञ्चमुद्राः प्रदर्शयेत् ।

ततः मूलविद्यायाः षडङ्गन्यासध्यानं विधाय यन्त्रमध्ये श्रीभुवनेश्वरीप्राण-प्रतिष्ठां कुर्यात् । तद्यथा "ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः सोहं अस्मिन् मण्डले श्री भुवनेश्वरी प्राणा इह प्राणाः, ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः सोहं अस्मिन् मण्डले श्रीभुवनेश्वरीजीव इह स्थितः, ॐ आं ह्रीं क्रों यं रं लं वं शं षं सं हं ळं क्षं हं सः सोहं अस्मिन् मण्डले श्रीभुवनेश्वरीसर्वेन्द्रयाणि वाङ्मनस्त्वक्चक्षुःश्रोत्रजिह्वाघ्राणप्राणा इहैवागत्य सुखं चिरं तिष्ठन्तु स्वाहा ।" इति यन्त्रोपरि पुष्पाक्षतान्निक्षिपेत् । ततः पञ्चदशमुद्राः प्रदर्शयेत् । ह्रीं भुवनेश्वर्यै अमृतमुद्रां परिकल्पयामि स्वाहा । एवमन्याः प्रदर्शयेत् । धेनुमुद्रा १, योनि २, महायोनि ३, नवयोनि ४, सिंह ५, महाक्रांतमुद्रा ६, ग्रंथित ७, सम ८, मुकुल ९, पद्म १०, पाश ११, अंकुश १२, अभय १३, वरद १४, एताः प्रदर्शयेत् । पुनः 'उद्यदिनद्युतिमिन्दुकिरीटा'मिति ध्यात्वा मूलमंत्रमुच्चार्य श्रीभुवनेश्वर्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि । त्रिःपादयोः पुष्पाञ्जलिं दत्वा सन्तर्प्य । ततो मूलमन्त्रेण देव्यै आसनं कल्पयेत् । तद्यथा ह्रीं भुवनेश्वर्यै आसनं नमः । ह्रीं भुवनेश्वर्यै अर्घ्यं स्वाहा । ह्रीं भुवनेश्वर्यै पाद्यं स्वधा । ह्रीं भुवनेश्वर्यै आचमनीयं स्वधा । ह्रीं भुवनेश्वर्यै मधुपर्कं स्वधा । ह्रीं भुवनेश्वर्यै स्वर्णपादुकां समर्पयामि नमः । उत्तरतः स्नानमण्डपं परिकल्प्य रत्नसिंहासने संस्थाप्य ह्रीं भुवनेश्वर्यै केशप्रसाद[ध]नमभ्यङ्गं सं०, ह्रीं भुवनेश्वर्यै गन्धामलकोद्वर्त्तनं स०, मूलबीजं भुवनेश्वर्यै इति सर्वत्र योजनीयम् ।

---

1. कारणानन्द इत्यपि पाठः ।

उष्णोदकस्नानं स०, पञ्चगव्यस्नानं सं०, पञ्चामृतस्नानं स०, फलरत्नादियुक्त-तीर्थस्नानं स०, अङ्गप्रोञ्छनार्थे वस्त्रं स०, केशसंस्कारचिकुरशोधनं स०, वसनं गृहाण मम इति वस्त्रयुग्मं स०, नीराजनादिमङ्गलाचारान् विधाय भूषितमण्डपे रत्नसिंहासने समुपवेशनं स०, मुकुटरत्नताटङ्कनासामौक्तिकग्रैवेयहारकेयूरकङ्कणाङ्गु-लीयकस्तनबन्धनमध्यबन्धन-काञ्चिकलापपादकटकनूपुरपादाङ्गुलीयकादिनानाजाती-यैर्विविधैर्भूषणैर्भूषयित्वा, सर्वाङ्गे महामृगमदालेपनं स०, कण्ठे कल्हारमालां स०, चक्षुषोर्दिव्याञ्जनं स०, भाले रक्षां स०, आदर्शदर्शनं स०, छत्रचामराणि समर्प्य पूजामण्डपमानीयशिवाङ्के समुपवेशनं स०, गन्धं स०, अक्षतान् स०, पुष्पाञ्जलित्रयं घण्टानादं स०, धूपं स०, दीपं स०, नैवेद्यं स०, करोद्वर्त्तनं स०, ताम्बूलं सं०, आरार्त्तिकं स० यथाशक्तिवारं प्रथमादिभिः सन्तर्प्य पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा—

संविन्मये परे देवि परामृतरसप्रिये ।
अनुज्ञां देहि देवेशि परिवारार्चनाय मे ॥

इति पुष्पाञ्जलिपुरःसरमनुज्ञां लब्ध्वा । अक्षतद्वितीयायुक्तबिन्दुना वामाचारेण वा दक्षिणाचारेण तत्वमुद्रया आवरणदेवताः पूजयेत् । तद्यथा—'ॐ ह्रीं बिन्दुचक्राय नमः,' इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा । ॐ ह्रीं भुवनेश्वर्यम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमस्त-र्पयामि । त्रिवारं संतर्प्य । एषा बिन्दुचक्राधिष्ठात्री श्रीभुवनेश्वरी सायुधा सवाहना सालङ्कारा सर्वोपचारैः सुपूजिता वरदा भवतु इत्यादिना गन्धादि पुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि भुवनेशि सुरपूजिते ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं प्रथमावरणार्चनम् ॥

इति योनिमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति प्रथमावरणम् ॥

अथ द्वितीयावरणम् । त्रिकोणस्य पुरतो मध्ये गुरुपात्रस्थद्रव्येण गुरुपंक्ति पूजयेत् । तद्यथा—'ॐ ह्रीं त्रिकोणचक्राय नमः' इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्त्वा ऐं ह्रीं श्री गुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ परमगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ परा-त्परगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ परमेष्ठिगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ३ शिवादिगुरुभ्यो नमः श्री० पू० त० । ततो विदिक्षु ह्रां हृदयाय नमः हृदयशक्ति श्री० पू० त० । आग्नेये । ह्रीं शिरसे स्वाहा शिरःशक्ति श्री० पू० त० । ईशान्ये ।

ह्वं शिखायै वषट् शिखाशक्ति श्री० पू० त० । नैर्ऋत्ये । ह्वैं कवचाय हुं कवचशक्ति श्री० पू० त० । वायौ । ह्वौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रशक्ति श्री० पू० त० । पुरतः । ह्वः अस्त्राय फट् अस्त्रशक्ति श्री० पू० त० । चतुर्दिक्षु । त्रिकोणमध्ये ह्वां हृल्लेखाम्बा श्री० पू० त० मध्ये । ह्वं गगनाम्बा श्री० पू० त० पूर्वे । ह्वैं रक्ताम्बा श्री० पू० त० दक्षिणे । ह्वौं करालिकाम्बा श्री० पू० त० पश्चिमे । ह्वः महोच्छुष्माम्बा श्री० पू० त० उत्तरे । एताः त्रिकोणगतद्वितीयावरणदेवताः साङ्गाः सायुधाः सवाहनाः सालङ्काराः सर्वोपचारैः सम्पूजिताः तर्पिताः संत्वित्यादिना गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् ।

अभीष्टसिद्धिं मे देहि भुवनेशि सुरपूजिते ।
भक्त्या समर्पये तुभ्यं द्वितीयावरणार्चनम् ॥

इति महायोनिमुद्रया नमस्कारं कुर्यात् । इति द्वितीयावरणम् ॥

अथ तृतीयावरणम् । ३ षट्कोणकेसरेषु । ह्रीं अनङ्गकुसुमाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गकुसुमातुराम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमदनाम्बा श्री० पू० त० ह्रीं भुवनपालाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं गगनाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं गगनमेखलाम्बा श्रीपादुकां पूजयामि नमः तर्पयामि । ततः षट्कोणपत्रेषु ह्रीं दण्डकमलाक्षमालाभयवरकरपितामहसहितायै गायत्र्यम्बायै श्री० इन्द्रकोणे । ह्रीं शङ्खचक्रगदापद्मधारिण्यै पीतवसनायै विष्णुसहितायै सावित्र्यम्बायै श्री० पू० त० रक्षःकोणे । ह्रीं परस्वधाक्षमालाभयवरदायै श्वेतवसनायै श्वेतायै रुद्रसहितायै सरस्वत्यम्बायै श्री० पू० त० वायुकोणे । ह्रीं रत्नकुम्भमणिकरण्डधारिण्यै धनदाङ्कस्थितायै दक्षिणहस्तेन धनदमालिङ्ग्य स्थितायै अपरेणाम्बुजधारिण्यै महालक्ष्म्यम्बायै श्री० पू० त० अग्निकोणे । ह्रीं बाणपाशांकुशशरासनधारिण्यै मदनसहितायै सव्येन पतिमालिङ्ग्य इतरेण नीलोत्पलधारिण्यै रमणाङ्कस्थितायै रत्यम्बायै श्री० पू० त० वरुणकोणे । ह्रीं विघ्नराजाय सृणिपाशधराय प्रियात्महितकान्तावराङ्गमङ्गुल्याश्रितस्थिताय माध्वीमदघूर्णिताय पुष्करे रत्नचषकधराय सिन्दूरवर्णाय अन्यां कान्तां पुष्टिं समदां धृतरक्तोत्पलां अन्यपाणिना तद्ध्वजस्पृशन्तोमालिङ्ग्य स्थिताय श्री० पू० त० ईशान्ये । षट्कोणपार्श्वयोर्निधी पूज्यौ । ह्रीं पद्मनिधि श्री० पू० त० । ह्रीं शङ्खनिधि श्री० पू० त० । एताः षट्कोणान्तर्गततृतीयावरणदेवताः सांगा इति गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि' इति नवयोनिमुद्राः प्रदर्शयेत् । इति तृतीयावरणम् ॥

अथ चतुर्थावरणम् । '३ अष्टदलपत्राय नमः ।' इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा अष्टदलपत्रेषु मूले ह्रीं अनङ्गरूपाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमदनाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमदनातुराम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं भुवनवेगाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं लोकपालिकाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं सर्वतोमुख्यम्बा श्री० पू० त० ह्रीं अनङ्गवसनाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं अनङ्गमेखलाम्बा श्री० पू० त० । अष्टपत्रमध्ये । ह्रां ब्राह्म्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं माहेश्वर्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रूं कौमार्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रैं वैष्णव्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रौं वाराह्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रः इन्द्राण्यम्बा श्री० पू० त० । ऐं चामुण्डाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं महालक्ष्म्यम्बा श्री० पू० त० । पत्राग्रेषु मातृका न्यसेत् । ह्रीं अं आं इं ईं उं ऊं ऋं ॠं लृं ॡं एं ऐं ओं औं अं अः पूर्वपत्रे । ह्रीं कं ४ आग्नेये । ह्रीं चं ४ दक्षिणे । ह्रीं टं ४ नैरृत्ये । ह्रीं तं ४ वायव्ये । ह्रीं पं ४ पश्चिमे । ह्रीं यं रं लं वं उत्तरे । ह्रीं शं षं सं हं ळं क्षं ईशान्ये । एता अष्टपत्रान्तर्गत-चतुर्थावरणदेवताः सांगा इति गन्धपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि' इति पाशमुद्रां प्रदर्शयेत् । इति चतुर्थावरणम् ।

अथ पञ्चमावरणम् । षोडशदलपत्रेषु करालिकाद्याः पूजयेत् । तद्यथा । ३ षोडशदलकमलाय नमः । इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा ह्रीं कराल्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं विकराल्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं उमाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं सरस्व-त्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं श्रयम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं दुर्गाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं ऊष्माम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं लक्ष्म्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं श्रुत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं स्मृत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं धृत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं श्रद्धाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं मेधाम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं भृत्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं कान्त्यम्बा श्री० पू० त० । ह्रीं आर्याम्बा श्री० पू० त० । एताः षोडशदलान्तगर्तपञ्चमावरणदेवताः सांगा इति गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि' इति अंकुशमुद्रां दर्शयेत् । इति पञ्चमावरणम् ।

अथ षष्ठावरणम् । इन्द्रादिलोकपालान् पूर्वादिक्रमेण पूजयेत् । ३ भूगृहचक्राय नमः, इति पुष्पाञ्जलित्रयं दत्वा 'ह्रीं इन्द्राय सुराधिपतये वज्रहस्ताय ऐरावताधिरूढाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्रीपादुकां पू० त० । ह्रीं अग्नये तेजोऽधिपतये मेषारूढाय शक्तिहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं यमाय

प्रेताधिपतये महिषारूढाय सपरिवाराय सशक्तिहस्ताय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं नैर्ऋतये रक्षोधिपतये प्रेतवाहनाय खड्गहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं वरुणाय जलाधिपतये पाशहस्ताय मकराधिरूढाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं वायवे प्राणाधिपतये ध्वजहस्ताय मृगाधिरूढाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं सोमाय यक्षाधिपतये अश्वारूढाय अंकुशहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं ईशानाय भूताधिपतये वृषाधिरूढाय त्रिशूलहस्ताय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ततः पूर्वादिक्रमेणायुधानि पूज्यानि । ह्रीं वज्राय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं शक्तये नमः श्री० पू० त० । ह्रीं दण्डाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं खड्गाय नमः श्री पू० त० । ह्रीं पाशाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं ध्वजाय नमः श्री पू० त० । ह्रीं गदायै नमः श्री० पू० त० । ह्रीं शूलाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनाय सायुधाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । ईशानपूर्वयोर्मध्ये । ह्रीं विष्णवे नागाधिपतये गरुडारूढाय सायुधाय सपरिवाराय सशक्तिकाय नमः श्री० पू० त० । पूर्वाग्नेययोर्मध्ये । तत्पुरतः आयुधानि पूज्यानि । ह्रीं शङ्खाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं चक्राय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं गदायै नमः श्री० पू० त० । ह्रीं पद्माय नमः श्री० पू० त० । त्रिकोणपुरतो देव्यायुधानि पूज्यानि । ह्रीं पाशाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं अंकुशाय नमः श्री० पू० त० । । ह्रीं अभयाय नमः श्री० पू० त० । ह्रीं वरदाय नमः श्री पू० त० । ततो देव्या वामभागे बटुकं पूजयेत् । ऐं ह्रीं क्लीं बटुकनाथाय नमः श्री पू० त० । आग्नेयकोणे गणेशं पूजयेत् । ऐं ह्रीं ग्लौं गणपतये नमः श्री० पू० त० । ऐं ह्रीं क्लीं द्वारदेवताभ्यो नमः श्री पू० त० । ह्रीं कामाख्यादिपीठेभ्यो नमः श्री० पू० त० । ऐं ह्रीं क्लीं पीठनाथेभ्यो नमः श्री० पू० त० । ऐं ह्रीं क्लीं पीठेश्वरीभ्यो नमः श्री० पू० त० । भूगृहस्य प्रथमरेखायां ह्रीं सत्वाय नमः श्री० पू० त० । द्वितीयायां ह्रीं रजसे नमः श्री पू० त० । तृतीयायां ह्रीं तमसे नमः श्री० पू० त० । एता भूगृहगतषष्ठावरणदेवताः सांगा इति गन्धादिपुष्पाञ्जल्यन्तं समर्पयेत् । 'अभीष्टसिद्धिं मे देहि' इति अभयवरदमुद्रां दर्शयेत् । इति षष्ठावरणम् ॥

पुनः ह्रीं भुवनेश्वर्यम्बा श्री० पू० त० बिन्दौ पुष्पाञ्जलिपूर्वकं मूलदेवीं त्रिवारं सन्तर्प्य गन्धाद्युपचारैः सम्पूज्य महानैवेद्यपात्रं सान्नं साधारं संस्थाप्य अस्त्रमन्त्रेण

संरक्ष्य गन्धादिभिरभ्यर्च्य धेनुमुद्रां बद्ध्वा 'ॐ जगद्ध्वनि मन्त्र मातः स्वाहा' इति घण्टां सम्पूज्य वामकरे धृत्वा धूनयन् नीचैर्धूपं वनस्पत्युद्भवेति मन्त्रेण मूलयुक्तेन समर्पयेत् । ततो दीपमुच्चैः —

सुप्रकाशमहादीपः सर्वत्र तिमिरापहः ।
सबाह्याभ्यन्तरज्योतिर्दीपोऽयं प्रतिगृह्यताम् ॥

इति मूलयुक्तेन समर्पयेत् । मूलेन नैवेद्यं सम्प्रोक्ष्य वायव्यादिबीजैः शोषणादिकं विधाय सुरभिमुद्रयाऽऽमृतीकृत्य—

नैवेद्यं षड्रसोपेतं पञ्चभक्ष्यसमन्वितम् ।
सुधारसमहोदारं शिवेन सह गृह्यताम् ॥

ॐ ह्रीं आत्मतत्त्वाधिपतिश्रीभुवनेश्वरी तृप्यतु । ह्रीं विद्यातत्त्वाधिपति श्री० । ह्रीं शिवतत्त्वाधिपति श्री० । इति चतुर्धा सन्तर्प्य अमृतोपस्तरणमसीत्युक्त्वा प्राणादिमुद्राः प्रदर्शयेत् । तद्यथा-ॐ प्राणाय स्वाहा इत्यङ्गुष्ठेन कनिष्ठानामिके स्पृशेत् । ॐ व्यानाय स्वाहा इत्यङ्गुष्ठेन तर्जनीमध्यमे स्पृशेत् । ॐ उदानाय स्वाहा इत्युङ्गुष्ठेनानामिकामध्यमातर्जनीः स्पृशेत् । ॐ समानाय स्वाहा इत्यङ्गुष्ठेन सर्वाः स्पृशेत् । जवनिकां मध्ये कृत्वा यावद्भोजनतृप्तिपर्यन्तं मूलमन्त्रं स्मरेत् । मूलेन मध्यपानीयमुत्तरापोशनं(षणं)करशुद्ध्यर्थं हस्तोदकमाचमनीयं करोद्वर्तनं फलताम्बूलदक्षिणां समर्प्य ॥

ततो नित्यहोमं कुर्यात् । तद्यथा—आत्मनो दक्षिणभागे चतुरस्रं मण्डलं कृत्वा अथवा सिद्धकुण्डमानीय तस्मिन् यन्त्रं सम्भाव्य तत्र मूलेन 'फट्' इति प्रोक्ष्य मूलेन अग्निं संस्थाप्य मूलेन अग्निं परिसमूह्य मूलविद्याषडङ्गं विधाय अग्नौ देवीं ध्यात्वा गन्धादिभिरभ्यर्च्य ज्वालिनिमुद्रां प्रदर्श्य घृतेन व्याहृतिभिर्हुत्वा मूलेन घृताहुतिभिः षोडशभिर्हुत्वा पुनः गन्धादिताम्बूलान्तं मूलेन समर्प्य पुनर्न्यासध्यानं विधाय—

भो भो वह्ने महाशक्ते सर्वकर्मप्रसाधक !
कर्मान्तरानियुक्तोऽसि गच्छ देव ! यथासुखम् ॥

इति विसर्जयेत् । संहारमुद्रया नमस्कारं कुर्यात् ।

इत्थं नित्यहोमं विधाय बलिदानं कुर्यात् । तद्यथा—यन्त्रस्याग्रे दक्षपृष्ठवाम-भागेषु भूबिम्बवृत्तषट्कोणत्रिकोणात्मकान् मण्डलचतुष्कान् विरच्य साधारं पात्र-चतुष्टयं संस्थाप्य तेषु क्रमेण बटुकयोगिनीगणेशक्षेत्रपालान् यजेत् । वां वटुकाय नमः । यां योगिनीभ्यो नमः । गं गणेशाय नमः । क्षां क्षेत्रपालाय नमः । एकं चेत् पात्रं तस्मिन्नेव चतुरो यजेत् । तत्तु शङ्खादुत्तरतः संस्थाप्य कलशस्थहेतुनाऽऽपूर्य प्रथमाद्वितीयायुक्तचरुकं गृहीत्वा मुख्यदेवताबलिं दद्यात् । तद्यथा—ततो देव्याः पुरतश्चतुरस्रं त्रिकोणं मण्डलं विधाय तस्योपरि 'ऐं ह्रीं श्रीं भुवनेश्वरि इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' बलिदानोपरि अंगुष्ठानामिकाभ्यां योगेन विशेषार्घ्यपात्रस्थद्रव्येण धारां दत्वा दीपं गन्धपुष्पाक्षतादीन् समर्पयेत् । ततो देव्याः पश्चिमे 'ॐ ह्रीं वां एहि एहि देविपुत्र बटुकनाथ पिङ्गलजटाभारभासुर त्रिनेत्र ज्वालामुख मम सर्वविघ्नान्ना-शय नाशय मम ईप्सितं कुरु कुरु इमं सर्वोपचारसहितं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा' इत्यनेन सदीपं चरुकं गन्धाक्षतपुष्पसहितं बटुकाय निवेद्य तत्पात्रस्थद्रव्येण वामतर्जन्यंगुष्ठाभ्यां धारां पातयन् ध्यायेत् ।

> या काचिद्योगिनी रौद्रा सौम्या घोरतरा परा ।
> खेचरी भूचरी व्योमचरी प्रीतास्तु मे सदा ॥

पूर्वे । 'ग्लां ग्लीं ग्लूं ग्लैं ग्लौं ग्लः गणपते एहि एहि मम विघ्नं नाशय मम ईप्सितं कुरु कुरु इमं बलिं गृह्ण गृह्ण स्वाहा' इत्यनेन सदीपं चरुकं गन्धाक्षत-पुष्पसहितं गणेशायदत्वा तत्पात्रस्थद्रव्येणवामेनाङ्गुष्ठयोगेन धारां पातयन् ध्यायेत्—

> बीजापूरगदेक्षुकार्मुकयुजा चक्राब्जपाशोत्पलं
> व्रीह्यग्रस्वविषाणरत्नकलशप्रोद्यत्कराम्भोरुहः ।
> ध्येयो वल्लभया च पद्मकरया श्लिष्टस्त्रिनेत्रो विभुः
> विश्वोत्पत्तिविनाशसंस्थितिकरोऽविघ्नो विशिष्टार्थदः ॥

दक्षिणे । 'क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षौं क्षः हुं स्थानक्षेत्रपाल मुकुटखर्परमुण्डमालाभूषण महाभीषणरूपधर बर्बरकेश जय जय दिगम्बर महाभूतपरिवारसंत्रासकर अग्निनेत्र मद्यपानमदोन्मत्त त्रिशूलायुधधर भृङ्गीवादनतत्पर एहि एहि मम विघ्नं नाशय नाशय अमुकं दुष्टं खादय खादय मम ईप्सितं कुरु कुरु इमं बलिं गृह्ण गृह्ण हुं फट् स्वाहा'

इत्यनेन सदीपं चरुकं गन्धाक्षतपुष्पसहितं क्षेत्रपालाय दत्वा तत्पात्रस्थद्रव्येण वामकनिष्ठाङ्गुष्ठयोगेन धारां पातयन् ध्यायेत्—

एकं खट्वाङ्गहस्तं भुजगमपि वरं पाशमेकं त्रिशूलं
कापालं खड्गहस्तं डमरुग[क]सहितं वामहस्ते पिनाकम् ।
चन्द्रार्द्धं केतुमालाकिरतिवरशरं सर्पयज्ञोपवीतं
कालं बिभ्रत्कपालं मम हरतु भयं भैरवः क्षेत्रपालः ॥
योऽस्मिन् क्षेत्रे निवासी च क्षेत्रपालस्य किङ्करः ।
प्रीतोस्तु बलिदानेन सर्वरक्षां करोतु मे ॥

इत्थं बलिदानं विधाय । के[षां]चिन्मतेन—'हुं सर्वविघ्नकृद्भ्यो भूतेभ्यो नमः' इति मन्त्रेण सदीपं अलिपिशितसहितं चरुकं गन्धाक्षतपुष्पसमन्वितं गृहाद्बहिर्निक्षिपेत् । इति भूतबलिः । ततः शालिगोधूमादिपिष्टेन सगुडेन सजीरकेन सालिद्वितीयेन सार्द्धं त्रिकोणाकारान् डमरुकरूपेण नव पञ्च त्रीन् वा विधाय घृतेन पाचयित्वा ताम्रादिभाजने अष्टदलं त्रिकोणं विधाय मूलेन सम्पूज्य अष्टदले अष्टदीपान् संस्थाप्य त्रिकोणे एकं दीपं संस्थाप्य एवं नवदीपान् संस्थाप्य मूलेन फलपुष्पताम्बूलसुवर्णादिकं पात्रे निक्षिप्य मूलेन प्रज्वाल्य सामयिकं श्लोकद्वयं पठन् मूलेन देव्युपरि सार्द्धत्रिवारं भ्रामयेत् ।

अन्तस्तेजो बहिस्तेज एकीकृत्य निरन्तरम् ।
त्रिधा देव्युपरिभ्राम्य कुलदीपं निवेदयेत् ॥
चन्द्रादित्यौ च धरणी विद्युदग्निस्तथैव च ।
त्वमेव सर्वज्योतींषि आर्तिक्यं प्रतिगृह्यताम् ॥

ततो मूलेन लवणनिम्बपत्राद्यैः अन्नपिष्टपिण्डादिभिर्वा दृष्टिमुत्तार्य पश्चाद् द्वात्रिंशत्संख्यया अथवाष्टोत्तरशतसङ्ख्यया मूलविद्यां जपेत् । गुह्यातिगुह्य'ेति देव्यै जपं निवेदयेत् । स्तोत्रसहस्रनामादिकं पठित्वा योनिमुद्रया नमस्कारं कुर्यात् ।

अथ शक्तिपूजनम् । स्वशक्तिं वा वीरशक्तिं चाहूय स्ववामभागे त्रिकोणं विधाय तस्योपरि आवाहयेत्—

आयाहि वरदे देवि मण्डलोपरि सत्वरम् ।
पूजां गृहाण देवेशि त्वत्कृपाभाजनस्य मे ॥

इत्यावाह्य तस्याश्चरणक्षालनपूर्वकं पूजां कृत्वा हरिद्राकुङ्कमकज्जलादिभिर्भूषयित्वा तस्यै मूलेनाभिमंत्रितं शक्तिपात्रं पिशितसहितं दत्वा, तत्र मन्त्रः—

अलिपात्रमिदं तुभ्यं दीयते पिशितान्वितम् ।
स्वीकृत्य सुभगे देवि जयं देहि रिपुं दह ॥

इत्यनेन मन्त्रेण निवेदयेत्—

वत्स तुभ्यं मया दत्तं पीतशेषं कुलामृतम् ।
तव शत्रुं हनिष्यामि सर्वाभीष्टं ददाम्यहम ॥

इत्यनेन मन्त्रेण तदवशेषं स्वयमङ्गीकृत्य तस्या वस्त्रकञ्चुकी आभरणादिकं यथाशक्त्या दत्वा नमस्कारं कुर्यात् । इति शक्तिपूजनम् । ततः कुमारं वटुकरूपं पूजयेत् । ततः कुमारीं पूजयेत् ।

अथ गुरुपूजनम् । ततः गुरुसन्निधौ चेत् तस्य पूजादिकं विधाय तस्मै गुरुपात्र निवेदयेत् । तत्र मन्त्रः—

ततः श्री गुरुरूपाय साक्षात् परशिवाय च ।
कराभ्यां पात्रमुद्धृत्य सद्वितीयं समर्पयेत् ॥

इत्यनेन निवेदयेत् । सन्निधौ गुरुर्नास्ति चेत् तत्स्थाने श्रेष्ठं पूर्णाभिषेकयुक्तं आचार्यं पूजयेत् । आचार्योऽपि नास्ति चेत् सहस्रदलकमले गुरुपात्रस्थद्रव्येण श्रीगुरुं त्रिःसन्तर्प्य स्वयं गृह्णीयात् । इति गुरुपूजनम् ।

ततो वीरपूजादिकं विधाय तेषां शङ्खोदकेन प्रोक्ष्य तेभ्यः पात्राणि दद्यात् । ततः पुष्पाञ्जलिं गृहीत्वा मूलेन स्तोत्रेणाथवा वैदिकमन्त्रेण देव्यै पुष्पाञ्जलिं समर्पयेत् । पञ्चमुद्राभिर्नमस्कारं कुर्यात् ।

स्तम्भनं चतुरस्रं च मत्स्यगोक्षुरमेव च ।
योनिमुद्रेयमाख्याता पञ्चमुद्राभिवादने ॥

इति पञ्चमुद्राः । अथ कुलदीपसमर्पणम् । वामहस्ते सचरुं दीपं गृहीत्वा दक्षहस्ते पात्रं गृहीत्वा मूलमन्त्रमुच्चार्य—

देहस्थाखिलदेवता गजमुखाः क्षेत्राधिपा भैरवा
योगिन्यो बटुकाश्च यक्षपितरो भूताः पिशाचा ग्रहाः ।
अन्ये दिक्चरभूचराश्चरवरा वेतालगास्तोयगा-
स्तृप्ताः स्युः कुलपुत्रकस्य पिबतां पानं सदीपं चरुम् ॥

इत्यनेन सचरुं दीपं भक्षयेत् । पात्रं गृह्णीयात् । इति कुलदीपसमर्पणम् ।

आवाहनं न जानामि न जानामि च पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षम्यतां परमेश्वरि ! ॥ १ ॥
मन्त्रहीनं क्रियाहीनं भक्तिहीनं च पार्वति !
यत्पूजितं मया देवि परिपूर्णं तदस्तु मे ॥ २ ॥
त्वमीशि विष्णुश्चतुराननश्च त्वमेव भक्तिः प्रकृतिस्त्वमेव ।
त्वमेव सूर्यो रजनीपतिश्च त्वमेव शक्तिः प्रकृतिस्त्वमेव ॥ ३ ॥
त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव ।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवि देवि ॥ ४ ॥
त्वमेव कर्ता करणस्य हेतुर्गोप्ता विधाता प्रलयस्त्वमेव ।
भूतान्यपि त्वं करणान्यपि त्वं त्वं ब्रह्मविद्या हि त्वमेव चात्मा ॥५॥
उमा ख्याता उमा भोक्ता उमा सर्वमिदं जगत् ।
उमा जयति सर्वत्र यदुमा सोऽहमेव च ॥ ६ ॥
स्तुवतो देवतां स्तुत्यानया तुष्टा प्रयच्छति ।
ऐश्वर्यमायुरारोग्यं विद्यां कीर्तिं श्रियं सुखम् ॥ ७ ॥
अपराधसहस्राणि क्रियन्तेऽहर्निशं मया ।
दासोऽहमिति मां मत्वा क्षमस्व परमेश्वरि ! ॥ ८ ॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि यन्मया क्रियते शिवे !
मम कृत्यमिदं सर्वमिति मातः क्षमस्व मे ॥ ९ ॥

इति बहुधा प्रणतिपूर्वकं क्षमाप्य विशेषार्घ्योदकं चुलुकेनादाय इतः पूर्वं प्राणबुद्धिदेहधर्माधिकारतो जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तितूर्यावस्थासु मनसा वाचा कर्मणा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना यत्स्मृतं यदुक्तं यत्कृतं तत्सर्वं गुरुदेवसमर्पितं तत्सर्वं ब्रह्मार्पणं भवतु इत्यनेन देव्याश्चरणारविन्दयोस्समर्पयेत् । 'ॐ ह्रीं भुवनेश्वरि क्षमस्व' इति तालत्रयेण देवीं प्रबोध्य तेजोरूपां तां संहारमुद्रया निर्माल्यपुष्पे तत्तेजः

समुद्धृत्याघ्राय पूरकप्रयोगेन सहस्रदलकमलं प्राप्य तत्र क्षणं ध्यात्वा सुषुम्णा-वर्त्मना 'ऐं हृदयाय नमः' इति हृदयकमलमानीय तत्र ध्यायन्–

ॐ ह्रीं तिष्ठ तिष्ठ परे स्थाने स्वस्थाने परमेश्वरि !
यत्र ब्रह्मादयः सर्वे सुरास्तिष्ठन्ति मे हृदि ॥

इति हृदयकमले स्थापयित्वा ततः शान्तिस्तवं पठेत् । तदुक्तं वामकेश्वरतन्त्रे–

ॐ नश्यन्तु प्रेतकूष्माण्डा नश्यन्तु दूषका नराः ।
साधकानां शिवाः सन्तु आम्नायपरिपालिनाम् ॥
जयन्तु मातरः सर्वा जयन्तु योगिनीगणाः ।
जयन्तु सिद्धडाकिन्यो जयन्तु गुरुपंक्तयः ॥
नन्दन्तु अणिमासिद्धयो नन्दन्तु भैरवादयः ।
नन्दन्तु देवताः सर्वाः सिद्धिविद्याधरादयः ॥
ये अम्नायाविशुद्धाश्च मंत्रिणः शुद्धबुद्धयः ।
सर्वानन्दानन्दहृदया नन्दन्तु कुलपालकाः ॥
इन्द्राद्यास्तर्पितास्सन्तु तृप्यन्तु वास्तुदेवताः ।
चन्द्रसूर्यादयो देवास्तृप्यन्तु मम भक्तितः ॥
नक्षत्राणि ग्रहा योगाः करणाद्यास्तथा परे ।
सर्वे ते सुखिनो यान्तु मासाश्च तिथयस्तथा ॥
तृप्यन्तु पितरः सर्वे ऋतवो वत्सरादयः ।
खेचरा भूचराश्चैव तृप्यन्तु मम भक्तितः ॥
अन्तरिक्षचरा ये च ये चान्यदेवयोनयः ।
सर्वे ते सुखिनो यान्तु सर्वा नद्यश्च पक्षिणः ॥
पशवस्तरवश्चैव पर्वताः कन्दरा गुहाः ।
ऋषयो ब्राह्मणाः सर्वे शान्तिं कुर्वन्तु मे सदा ॥
शिवं सर्वत्र मे चास्तु पुत्रदारधनादिषु ।
राजानः सुखिनः सन्तु क्षेमं मार्गं तु मे सदा ॥
तीर्थानि पशवो गावो ये चान्ये पुण्यभूमयः ।
वृद्धाः पतिव्रता नार्यः शिवं कुर्वन्तु मे सदा ॥
शुभा मे दिवसा यान्तु मित्राणि सन्तु मे शिवाः ।

साधका जापिनः सन्तु शिवं तिष्ठन्तु पूजकाः ॥

ये ये चापधियः स्वभूषणरता मन्निन्दकाः पूजने
देवाचारविरुद्धनष्टहृदया दुष्टाश्च ये बाधकाः ।
दृष्ट्वा चक्रमपूर्वमन्धहृदया ये कौलिकद्वेषका—
स्ते ते यान्तु विनाशमत्र समये श्रीभैरवस्याज्ञया ॥

द्वेष्टारः साधकानाञ्च सदैवाम्नायदूषकाः ।
डाकिनीनां मुखे यान्तु तृप्तास्तत्पिशितैस्तु ताः ॥
शत्रवो नाशमायान्तु मम निन्दाकराश्च ये ।
द्वेष्टारः साधकानाञ्च विनश्यन्तु शिवाज्ञया ॥

ये निन्दकास्ते विलयं प्रयान्तु ये साधकास्ते प्रभवन्तु सिद्धाः ।
सर्वत्र देवीकरुणावलोकाः पुरः परेशो मम सन्निधत्ताम् ॥

इति शान्तिपाठं पठित्वा सर्वान् सामयिकान् सामान्यार्घ्योदकेन अभिषिञ्चयेत् । ततो विशेषार्घ्यपात्रमुद्धृत्य शिरसि स्थिताय श्रीगुरवे समर्पयेत् । ततः सामयिकैः सार्धं कौलधर्मादिकं कृत्वा यथासुखं विहरेत् । ततः सर्वोच्छिष्टेन उच्छिष्टमातङ्गी-बलिं दद्यात् । तद्यथा—'क्लीं नमः उच्छिष्टचाण्डालि मातङ्गि सर्ववशङ्करि स्वाहा' इति मन्त्रेण स्ववामभागे त्रिकोणमण्डलं कृत्वा तत्र धारायुक्तबलिं निक्षिपेत् । ध्यानम्—

'ध्यायेदुच्छिष्टमातङ्गीं देवीं लोकैकमोहिनीम् ।

वीणावाद्यविनोदगीतनिरतां नीलांशुकोल्लासिनीं
बिम्बोष्ठीं नवयावकाद्र[र्द्रे]चरणामाकीर्णनीलालकाम् ।
हृद्याङ्गीं नवरत्नकुण्डलधरामारक्तभूषोज्ज्वलां
मातङ्गीं प्रणतोऽस्मि सुस्मितमुखीं देवीं शुकश्यामलाम् ॥'

इति ध्यात्वा पञ्चमुद्राभिर्नमस्कारं कुर्यात् । सर्वेभ्यस्ताम्बूलदक्षिणादिकं दत्त्वा विसर्जयेत् ।

इति पृथ्वीधराचार्यपद्धतिं शारदातिलकं नानातन्त्रमतमालम्ब्य श्रीदाईदेव-सम्प्रदायिना मातृपुरस्थितेन अनन्तदेवेन विरचितायां भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिकायां पूजाविवरणं नाम तृतीयः कल्पः ॥ ॐ ॥ श्रीगुरुदेवार्पणमस्तु ॥

श्रीपृथ्वीधराचार्यप्रणीतं

लघुसप्तशतीस्तोत्रम्

[ॐ अस्य श्रीलघुसप्तशतीस्तोत्रमन्त्रस्य भगवान् सदाशिव ऋषिः शिरसि, अनुष्टुपछन्दसे नमो मुखे, त्रिमूर्तिर्देवता हृदये, वाग्भवं ऐं बीजं, माया ह्रीं शक्तिः, श्रीलक्ष्मीः कीलकं, मम चतुर्विधपुरुषार्थे जपे विनियोगः सर्वाङ्गे ॥

नमो विरञ्चेर्वरवल्लभायै नमोस्तु ते शङ्करवल्लभायै ।
नमोस्तु नारायणवल्लभायै श्रीचण्डिकायै शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

ब्रह्मादयो देवि भजन्ति देवा वसिष्ठमुख्या ऋषयश्च सर्वे ।
सिन्दूरवर्णा तरुणार्ककान्ति श्रीचण्डिके ! त्वां सततं स्मरामि ॥ २ ॥

सहस्रचन्द्रार्कसमानकान्तिं बन्धूकपुष्पारुणपङ्कजाभाम् ।
देदीप्यमानाग्निसमानकान्तिं श्रीचण्डिके ! त्वां सततं स्मरामि ॥३॥

श्रीसिद्धिनाथ ! भवतो भुवनैकभर्तु-
र्भाषा परामृतमयी निगमान्तरस्था ।
एषा त्वनन्यशरणस्य ममाश्रुतस्य
वृत्ता निसर्गकरुणावरुणालयस्था ॥][1]

ॐ नमश्चण्डिकायै[2]

यत्कर्म धर्मनिलयं प्रवदन्ति[3] तज्ज्ञा
यज्ञादिकं तदखिलं सकलं त्वयैव ।
त्वं चेतना यत इति प्रविचार्य चित्तं
नित्ये ! त्वदीयचरणौ शरणं प्रपद्ये ॥ १ ॥

---

१. कोष्ठान्तर्वर्ती भागस्तु द्वितीयपुस्तके नोपलब्धः ।

२. ख, श्रीगणेशाय नमः । ३. ख, कलयन्ति ।

पाथोधिनाथतनयापतिरेष शेष-
पर्यङ्कलालितवपुः पुरुषः पुराणः ।
त्वन्मोहपाशविवशो जगदम्ब ! सोऽपि
व्याघूर्णमाननयनः शयनश्चकार ॥ २ ॥

त्वत्कौतुकं जननि ! यस्य जनार्दनस्य
कर्णप्रसूतमलजौ मधुकैटभाख्यौ ।
तस्यापि यौ न भवतः सुलभौ निहन्तुं
त्वन्मायया विकलितौ विलयं गतौ तौ ॥ ३ ॥

यन्माहिषं वपुरपूर्वबलोपपन्नं
यन्नाकनायकपराक्रमजित्वरञ्च ।
यल्लोकशोकजननव्रतबद्धहार्दं
तल्लीलयैव दलितं गिरिजे ! भवत्या ॥ ४ ॥

यो धूम्रलोचन इति प्रथितः पृथिव्यां[1]
भस्मीबभूव चरणे[2] तव हुङ्कृतेन ।
सर्वासुरक्षयकृते गिरिराजकन्ये !
मन्ये स्वमन्युदहने कृत एष होमः ॥ ५ ॥

केषामपि त्रिदशनायकपूर्वकाणां
जेतुं न जातु सुलभावपि चण्डमुण्डौ ।
तौ दुर्मदौ सपदि शम्बरतुल्यमूर्ती[3]
मातस्तवासिकुलिशात्पतितौ विशीर्षौ ॥ ६ ॥

दौत्येन[4] ते शिव इति प्रथितप्रभावो
देवोऽपि दानवपतेः सदनं जगाम ।

---

१. ख. प्रथितप्रभावो । २. ख. समरे । ३. ख. चाम्बरतुल्यमूर्ते ।
४. ख. दू [दौ] त्ये च ।

भूयोऽपि तस्य चरितं प्रथयाञ्चकार
सा त्वं प्रसीद शिवदूति विजृम्भितं ते ॥ ७ ॥

चित्रं तदेतदमरैरपि ये न जेयाः
शस्त्राभिघातपतिताद्रुधिरादपर्णे !
भूमौ बभूवुरमिताः प्रतिरक्तबीजा-
स्तेऽपि त्वयैव गिलिता गगने[1] समस्ताः ॥ ८ ॥

आश्चर्यमेतदखिलं यदमू[2] सुरारी
त्रैलोक्यवैभवविलुण्ठनपुष्टपाणी ।
शस्त्रैर्निहत्य भुवि शुम्भनिशुम्भसंज्ञौ[3]
नीतौ त्वया जननि ! तावपि नाकलोकम्[4] ॥ ९ ॥

त्वत्तेजसि प्रलयकालहुताशनेऽस्मिन्
यस्मिन् प्रयान्ति विलयं भुवनानि सद्यः ।
तस्मिन्निपत्य शलभा इव दानवेन्द्रा
भस्मीभवन्ति हि भवानि ! किमत्र चित्रम् ॥ १० ॥

तत् किं गृणामि[5] भवतीं भवतीव्रताप-
निर्वापणप्रणयिनीं[6] प्रणमज्जनेषु ।
तत् किं गृणामि भवतीं भवतीव्रताप-
संवर्द्धनप्रणयिनीं विमतस्थितेषु[7] ॥ ११ ॥

वामे करे तदितरे च यथोपरिष्टात्[8]
पात्रं सुधारसभृतं वरमातुलुङ्गम् ।
खेटं गदाञ्च दधतीं भवतीं भवानि !
ध्यायन्ति येऽरुणनिभां कृतिनस्त एव ॥ १२ ॥

---

१. ख. वदने । २. ख. यदिमौ । ३. ख. दैत्यौ । ४. ख. नाकिलोकम् ।
५. ख. रणामि । ६. ख. संछेदनप्रणयिनीं । ७. ख. विपदि स्थितेषु ।
८. ख. तथोपरिष्टात् ।

यद्वारुणात्परमिदं जगदम्ब ! यस्ते[1]
बीजं स्मरेदनुदिनं दहनाधिरूढम् ।
मायाङ्कितं तिलकितं तरुणेन्दुबिन्दु-
नादैरमन्दमिह राज्यमसौ भुनक्ति ॥ १३ ॥

अन्तः स्थिताप्यखिलजन्तुषु तन्तुरूपा
विद्योतसे बहिरिहाखिलविश्वरूपा ।
का भूरि शब्दरचना वचनातिगासि
दीनं जनं जननि ! मामव निःप्रपञ्चम् ॥ १४ ॥

आवाहनं यजनवर्णनमग्निहोत्रं
कर्मार्पणं त्वयि विसर्जनमत्र देवि !
मोहान्मया कृतमिदं सकलापराधं
मातः क्षमस्व वरदे ! बहिरन्तरस्थे ! ॥ १५ ॥

एतत्पठेदनुदिनं दनुजान्तकारि
चण्डीचरित्रमतुलं भुवि यस्त्रिकालम् ।
श्रीमान् सुखी[2] स विजयी सुभगः क्षमः[3] स्यात्
त्यागी चिरन्तनवपुः कविचक्रवर्ती ॥ १६ ॥

श्रीसिद्धनाथापरनामधेयः
श्रीशम्भुनाथो[4] भुवनैकनाथः ।
तस्य प्रसादात् सकलागमाच्च[5]
पृथ्वीधरः स्तोत्रमिदं चकार * ॥१७ ॥

---

१. ख. सोऽपि । २. ख. सदा । ३. ख. क्षमी ।
४. ख. यः शम्भुनाथो । ५. ख. सुलभागमश्रीः ।
* ख. पुस्तके एतावान् पाठस्त्वधिकः---
"प्रथमा विष्णुमाया च द्वितीया चेतना तथा ।
बुद्धिर्निद्रा क्षुधाच्छाया शक्तिस्तृष्णास्तथाष्टमी ॥ १८ ॥
क्षान्तिर्जातिस्तथा लज्जा शान्तिः श्रद्धा च कान्तिका ।
लक्ष्मीर्वृत्तिः स्मृतिश्चैव दया दीप्तिस्तथैव च ॥ १९ ॥

देव्याः स्तवं ज्ञानमयं कृतं यत्
पृथ्वीधराचार्यवरेण सम्यक् ।
यच्चोद्धृतं सप्तशतीस्थसारं
सर्वान्वितं तन्निगमस्य सारम्[1] ॥ १८ ॥

॥ इति पृथ्वीधराचार्यविरचितं लघुसप्तशतीस्तोत्रम् ॥

तुष्टिः पुष्टिस्तथा माता भ्रान्तिः सर्वात्मिका तथा ।
त्रयोविंशतिसंख्याता या देवी गणिता शुभा ॥ २० ॥
भुक्तिर्मुक्तिर्न दूरस्था शुद्धपाठवतां नृणाम् ॥ २१ ॥
सबीजपूरं सगदं सखेटं सपानपात्रं शयनं चकार ।
जयातटान्ते कृतये न लिङ्गी तन्नाथ ! नित्यं शरणं प्रपद्ये ॥ २२ ॥"

१. ख. पुस्तके नास्त्येष श्लोकः ।

अनुक्रमणिकाप्रयुक्तसंकेताक्षरविवरणम्

	संकेताक्षराणि	ग्रन्थनामानि
१.	पू० प०	पूजापद्धतिः (रुद्रयामलीया)
२	भु० अ०	भुवनेश्वर्यष्टकम्
३.	भु० अ० श०	भुवनेश्वर्यष्टोत्तरशतनामस्तोत्रम्
४.	भु० क्र०	भुवनेश्वरीक्रमचन्द्रिका
५.	भु० क०	भुवनेश्वरीकवचम्
६.	भु० प०	भुवनेश्वरीपटलः (रुद्रयामलीयः)
७.	भु० स०	भुवनेश्वरीसहस्रनाम
८.	भु० हृ०	भुवनेश्वरीहृदयस्तोत्रम्
९.	रु० भु० स्तो०	रुद्रयामलीयभुवनेश्वरीस्तोत्रम्
१०.	ल० स० स्तो०	लघुसप्तशतीस्तोत्रम्

श्लोकानुक्रमणिका

राजस्थान पुरातन ग्रन्थ-माला

प्रधान सम्पादक—पुरातत्त्वाचार्य मुनि श्री जिनविजयजी

प्रकाशित ग्रन्थ

१—संस्कृतग्रन्थाः

१. प्रमाणमञ्जरी, तार्किकचूड़ामणि सर्वदेवाचार्यकृता, सम्पादक-मीमांसा-न्यायकेसरी पं० पट्टाभिराम-शास्त्री, विद्यासागर। मूल्य-६'००

२. यन्त्रराजरचना, महाराजा-सवाई-जयसिंह-कारित; सम्पादक-स्व० पं० केदारनाथ ज्योतिर्वित्। मूल्य—१'७५

३. महर्षिकुलवैभवम्, स्व० पं० मधुसूदन ओझा प्रणीत, सम्पादक—म० म० पं० गिरिधर शर्मा चतुर्वेदी। मूल्य—१'७५

४. तर्कसंग्रह, अन्नम्भट्टकृत, सम्पादक-डॉ० जितेन्द्र जेटली, एम. ए., पी-एच. डी., मूल्य—३'००

५. कारकसंबंधोद्योत, पं० रभसनन्दिरचित सम्पादक—डा० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी, मूल्य—१'७५

६. वृत्तिदीपिका, मौनिकृष्णभट्ट, सम्पादक-स्व० पं० पुरुषोत्तमशर्मा चतुर्वेदी, साहित्याचार्य। मूल्य-२'००

७. शब्दरत्नप्रदीप, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक-डॉ० हरिप्रसाद शास्त्री, एम. ए., पी-एच. डी., । मूल्य—२'००

८. कृष्णगीति, कवि-सोमनाथकृत, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच डी., डी. लिट्। मूल्य—१.७५

९. नृत्तसंग्रह, अज्ञातकर्तृक, सम्पादिका—डॉ. प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.। मूल्य—१'७५

१०. शृङ्गारहारावली, श्री हर्षकवि-रचित, सम्पादिका—डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्.। मूल्य—२'७५

११. राजविनोद महाकाव्य, महाकवि-उदयराजरचित, सम्पादक-पं. श्री गोपालनारायण बहुरा, एम. ए., उप-सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—२'२५

१२. चक्रपाणिविजयमहाकाव्य, भट्ट लक्ष्मीधर विरचित, सम्पादक—केशवराम काशीराम शास्त्री। मूल्य-३'५०

१३. नृत्यरत्नकोष (प्रथम भाग), महाराणा कुम्भकर्ण-विरचित, सम्पादक—प्रो. रसिकलाल छोटालाल परिख तथा डॉ० प्रियबाला शाह, एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट्। मूल्य—३'७५

१४. उक्तिरत्नाकर, साधुसुन्दर-गणि-विरचित; सम्पादक—पुरातत्त्वाचार्य श्री जिनविजय मुनि। सम्मान्य सञ्चालक, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। मूल्य—४'७५

१५. दुर्गापुष्पाञ्जलि, म०म० पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदीकृत, सम्पादक-पं० गङ्गाधर द्विवेदी, साहित्याचार्य। मूल्य—४'२५

१६. कर्णकुतूहल, महाकवि भोलानाथविरचित, सम्पादक—०पं श्री गोपालनारायण बहुरा, एम.ए., उपसञ्चालक-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर। इसी ग्रन्थकार की अपर कृति श्रीकृष्णलीलामृत सहित। मूल्य—१'५०

१७. ईश्वरविलासमहाकाव्यम्, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट विरचित, सम्पादक-श्रीमथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर । मूल्य-११'५०

१८. रसदीर्घिका, कवि विद्याराम प्रणीत, सम्पादक-पं० श्रीगोपालनारायण बहुरा, उपसञ्चालक-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । मूल्य-२'००

१९. पद्यमुक्तावली, कविकलानिधि श्रीकृष्ण भट्ट विरचित, सम्पादक-पं० मथुरानाथ शास्त्री, साहित्याचार्य, जयपुर । मूल्य-४'००

२०. काव्यप्रकाश संकेत, भट्ट सोमेश्वरकृत; सम्पादक-श्री रसिकलाल छो. पारिख । भाग १. मूल्य-१२'००

२१ ,, ,, ,, ,, भाग २ मूल्य-८'२५

२२. वस्तुरत्नकोष, अज्ञातकर्तृक । सम्पादिका-डॉ० प्रियबाला शाह । मूल्य-४'००

२३. दशकण्ठवधम् पं० दुर्गाप्रसादद्विवेदी कृत; सम्पादक-पं० गङ्गाधर द्विवेदी मूल्य-४'००

२४. श्रीभुवनेश्वरीमहास्तोत्रम्, पृथ्वीधराचार्यविरचित, कवि पद्मनाभकृत भाष्य सहित स०-पं० श्री गोपालनारायण बहुरा, एम. ए. उपसञ्चालक-राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर । मूल्य-३'७५

राजस्थानी और हिन्दी

२५. कान्हड़दे प्रबन्ध, महाकवि पद्मनाभ विरचित, सम्पादक- प्रो० के० बी० व्यास, एम. ए. । मूल्य-१२'२५

२६. क्यामखां रासा, कविवर जानरचित, सम्पादक- डा. दशरथ शर्मा, श्री अगरचन्दजी श्री भंवरलालजी नाहटा । मूल्य-४'७५

२७. लावा रासा, चारण कविया गोपालदान विरचित, सम्पादक- श्री महताबचन्द खारैड । मूल्य-२'७५

२८. बांकीदासरी ख्यात, कविवर बांकीदासकृत, सम्पादक-श्री नरोत्तमदासकृत स्वामी, एम. ए. मूल्य-५ ५०

२९. राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग १, सम्पादक-श्री नरोत्तमदास स्वामी, एम. ए. । मूल्य-२'२५

३०. कवीन्द्र कल्पलता, कवीन्द्राचार्य सरस्वती विरचित, सम्पादिका-श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य-१'७५

३१. जुगलविलास, महाराज पृथ्वीसिंहकृत; सम्पादिका श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य-१'७५

३२. भगतमाल, ब्रह्मदासजी चारणकृत, सम्पादक-श्री उदैराज० उज्वल । मूल्य-१ ७५

३३. राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर के हस्तलिखित ग्रन्थों की सूची भाग १ । मूल्य-७'५०

३४. मुंहतानैणसीरी ख्यात, भाग१ । मुंहता नैणसीकृत; सम्पादक-श्री बदरीप्रसाद साकरिया । मूल्य-८'५०

३५. रघुवरजसप्रकास, किसनाजी आढा कृत, सम्पादक-श्री सीताराम लालस । मूल्य-८'२५

३६. राजस्थानी हस्तलिखित ग्रन्थ सूची भाग १, सम्पादक-श्री मुनि जिनविजयजी । मूल्य-४,५०

३७. वीरवांण, ढाढी बादर कृत, सम्पादिका-श्रीमती रानी लक्ष्मीकुमारी चूंडावत । मूल्य-४.५०

३८. राजस्थानी साहित्य संग्रह भाग २ । सम्पादक-श्री पुरुषोत्तमलाल मेनारिया, एम. ए, साहित्यरत्न । मूल्य-२'५०

प्रेसों में छप रहे ग्रन्थ

संस्कृत ग्रन्थ

१. शकुनप्रदीप, लावण्य शर्मरचित सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय।
२. त्रिपुराभारती लघुस्तव, धर्माचार्यप्रणीत सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय
३. करुणामृतप्रपा, ठक्कुर सोमेश्वरविनिर्मित सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय।
४. बालशिक्षाव्याकरण, ठक्कुर संग्रामसिंहरचित सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय
५. पदार्थरत्नमंजूषा, पं. कृष्णमिश्र विरचित सम्पादक–मुनि श्रीजिनविजय।
६. वसन्तविलास फागु, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक–श्री एम० सी० मोदी।
७. नन्दोपाख्यान, अज्ञातकर्तृक, सम्पादक–श्री बी. जे. सांडेसरा।
८. चान्द्रव्याकरण, आचार्य चन्द्रगोमिविरचित, सम्पादक–श्री. बी. डी. जोशी।
९. वृत्तजातिसमुच्चय, कवि विरहाङ्करचित, सम्पादक–श्री एच. डी. वेलणकर।
१०. कवि दर्पण, अज्ञातकर्तृक, ,, ,, ,, ,,
११. स्वयंभूछन्द, कवि स्वयंभूरचित ,, ,, ,, ,,
१२. प्राकृतानन्द, रघुनाथ कवि रचित, सम्पादक–मुनि श्री जिनविजय।
१३. कविकौस्तुभ, पं० रघुनाथ रचित, सम्पादक–श्री एम० एन० गोरी।
१४ नृत्यरत्नकोश भाग २, महाराणा कुम्भा प्रणीत सम्पादिका–डॉ० प्रियबाला शाह।
१५. इन्द्रप्रस्थप्रबन्ध, सम्पादक–डॉ० दशरथ शर्मा दिल्ली विश्वविद्यालय।
१६. हम्मीरमहाकाव्यम्, नयचन्द्रसूरिकृत, सम्पादक–मुनि श्री जिनविजय।
१७. रत्नपरीक्षादि, ठक्कुर फेरू रचित, ,, ,, ,, ,, ,,।
१७. स्थूलिभद्रकाकादि, सम्पादक–डॉ० आत्माराम जाजोदिया।
१९. वासवदत्ता, सुबन्धु कृता, सम्पादक–डॉ. जयदेव मोहनलाल शुक्ल
२०. घटखर्परादि, ,, पं० अमृतलाल मोहनलाल।
११. भुवनदीपक, यावनाचार्यकृत, सम्पादक–पं० पुरुषोत्तम भट्ट।

राजस्थानी और हिन्दी ग्रन्थ

२२. मुंहता नैणसीरी ख्यात, भाग २, मुंहता नैणसीकृत, सम्पादक–श्री बदरीप्रसादजी साकरिया।
२३. गोरा बादल पदमिणी चऊपई, कवि हेमरतन कृत, सम्पादक–श्री उदयसिंह भटनागर।
२४ राजस्थान में संस्कृत साहित्य की खोज, आर० एस० भण्डारकर, हिन्दी अनुवादक-श्री ब्रह्मदत्त त्रिवेदी एम. ए.।
२५ राठोड़ांरी वंशावली, सम्पादक–मुनि श्री जिनविजय।
२६. सचित्र राजस्थानी भाषासाहित्य ग्रन्थसूची, सम्पादक–मुनि श्री जिनविजय।
६७. मीरां बृहत् पदावली, स्व० पुरोहित हरिनारायणजी विद्याभूषण द्वारा संकलित, सम्पादक–मुनि श्री जिनविजयजी।
२८. राजस्थानी साहित्य संग्रह, भाग ३, सम्पादक–श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी।
२९. सूरजप्रकाश, कविया करणीदान कृत, सम्पादक–श्री सीताराम लालस।
३०. विद्याभूषणग्रन्थसूची, सम्पादक–श्री गोपालनारायणजी बहुरा और श्री लक्ष्मीनारायण गोस्वामी।
३१. नेहतरङ्ग, बुधसिंह हाड़ा कृत, सम्पादक–श्री रामप्रसाद दाधीच।

राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान

(Rajasthan Oriental Research Institute)

जोधपुर

उद्देश्य

१. राजस्थान में और अन्यत्र भारतीय संस्कृति के आधारभूत संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, हिन्दी व अन्य भाषाओं में लिखित प्राचीन ग्रन्थों की खोज करना तथा उन्हें प्रकाश में लाना ।

२. प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थों का संग्रह कर उनके संरक्षण की व्यवस्था करना और उपयोगी ग्रन्थों को सम्बन्धित विद्वानों से सम्पादित करा कर उनके प्रकाशन की व्यवस्था करना ।

३. साधारणतः भारतीय एवं मुख्यतः संस्कृत व प्राचीन राजस्थानी के अध्ययन, अन्वेषण, संशोधन हेतु अत्यावश्यक उत्तम प्रकार का सन्दर्भ पुस्तक भंडार (मुद्रित ग्रन्थालय) स्थापित करना और उसमें देश-विदेश में मुद्रित विविध विषयक अलभ्य-दुर्लभ्य सभी ग्रन्थों का यथासंभव संग्रह करना ।

४. संगृहीत सामग्री से शोधकर्त्ता अध्येता विद्वानों को उनके अध्ययन और अनुसंधान में सहायता पहुँचाना ।

५. राजस्थान के लोक-जीवन पर प्रकाश डालने वाले विविध विषयक लोक-गीत, सांप्रदायिक भजन, पदादिक भक्ति साहित्य एवं सामाजिक संस्कार-धार्मिक व्यवहार तथा लौकिक आचार-विचार आदि से सम्बन्धित सभी प्रकार की सामग्री की शोध, संग्रह, संरक्षण, एवं प्रकाशन करने की व्यवस्था करना ।

